Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MAHARISHI DAYANANDA NIRVANA SHATABDI VYAKHYAN MALA

G. K. V.
Hardwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

150769

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी व्याख्यानमाला

आर्यसमाज—उपलब्धियां, सीमाएं और अपेक्षाएं

दयानन्द सरस्वती के विचार—समय की कसौटी पर

व्याख्याता :

डॉ० भवानीलाल भारतीय

आचार्य एवं अध्यक्ष

दयानन्द चेयर

पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

प्ररोचना :

श्री बलभद्रकुमार हूजा

कुलपति

संयोजक :

डॉ० विष्णुदत्त राकेश

R15,BHA-M

150769

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

३०, ३१ अगस्त, १९८४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्ररोचना

यह बहुत ही सुखद बात है कि गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी व्यख्यानमाला का समारम्भ कर रहा है। अपने गुरु दण्डी स्वामी विरजानन्द सरस्वती से आलोक पाकर देश और समाज को अज्ञान की कंदराओं से निकालने के लिए स्वामी जी ने पाखंड-खण्डिनी पताका फहराई। संस्कृत के उद्भट विद्वान् होते हुए भी हिन्दी को लेखन का आधार बना कर वह सामान्य जनजीवन के साथ जुड़े। उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश से संसार में अभूतपूर्व वैचारिक क्रान्ति का सूत्रपात हुआ। सत्यार्थप्रकाश का प्रथम मुद्रण १८७५ तथा द्वितीय संस्करण १८८४ में हुआ। इस दूसरी आवृत्ति का महत्त्व इस बात से भी है कि इस संस्करण की भाषा अधिक प्रांजल और टकसाली है तथा आधुनिक हिंदी-लेखन का मार्ग इसने प्रशस्त किया है। पुरानी सधुक्कड़ी हिन्दी को नया वैचारिक क्षितिज देकर स्वामीजी ने यह सिद्ध कर दिया कि वैदिक साहित्य से लेकर आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की विविध वैचारिक सरणियों का उच्चतर अध्ययन-अध्यापन और चिंतन-मनन हिन्दी में हो सकता है। वह हिन्दी को आर्यभाषा कहते थे। मादाम ब्लावत्की को लिखे एक पत्र में स्वामीजी ने स्पष्ट संकेत दिया था कि वह जिस पत्र का उत्तर उनसे चाहें, उसको नागरी लिपि में लिखवाकर उनके पास भेजा करें।

भारतीयता और राष्ट्रीयता का पांचजन्य उन्होंने बजाया। वह भारतीय नवजागरण के अग्रदूत थे तथा समाजसुधारक, शिक्षा, औद्योगिक तथा वैज्ञानिक उन्नति और स्वतन्त्रता की उन्होंने सर्वप्रथम कल्पना की थी। यही कारण था कि उन्होंने धर्म व्यवस्था, आदर्श राज्य व्यवस्था स्वतन्त्रता तथा समानता, समाज व्यवस्था तथा सर्वांगीण शिक्षा व्यवस्था पर अपने मौलिक तथा उपादेय विचार व्यक्त किए। सत्यार्थप्रकाश एक खण्डन-मण्डनात्मक ग्रन्थ ही नहीं है, उसमें मनु आदि धर्मशास्त्रकारों का युगानुरूप नवीन भाष्य प्रस्तुत किया गया है। वह आधुनिक मनु की ऐसी विधि तथा आचार संहिता है जिसमें देश, काल, जाति, वर्ण, वर्ग तथा अलगाववाद से ऊपर उठे हुए मानवमात्र के लौकिक तथा पारलौकिक अभ्युदय और निःश्रेयस प्राप्ति का विधान बताया गया है। आत्मिक तथा भौतिक उन्नति का ऐसा संतुलित उपाय इतने विशद वैचारिक और व्यावहारिक स्तर पर महर्षि से पूर्व किसी समाजसुधारक तथा युगद्रष्टा ने नहीं दिया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामीजी का निर्वाण ३० अक्टूबर १८८३ को हुआ। उनके निर्वाण को सौ वर्ष हो गए। इस लम्बे अन्तराल में देश ने कई उतार चढ़ाव देखे और आज जिन विस्फोटक एवं विषम परिस्थितियों में देश खड़ा हुआ है, उनसे मानवधर्म, लोकतंत्र, सामाजिक समानता, सामूहिक अभ्युदय और लोकजीवन के उत्कर्ष से सम्बन्धित मूल्यों को खतरा पैदा हो गया है। अतः इन जटिल समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में स्वामीजी के कार्य का पुनर्मूल्याङ्कन होना चाहिए। आशा है, इस व्याख्यानमाला के प्रसंग से देश के अनुभवी-विशेषज्ञ विद्वान् ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज के अनुदान का अनेक विचार-बिन्दुओं से अध्ययन-मनन करेंगे तथा ऋषि के विचारसूत्रों के पल्लवन द्वारा वर्तमान समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करेंगे। मुझे विश्वास है कि इस भाषणमाला से ऋषि दयानन्द के बहुमुखी और विराट् व्यक्तित्व के विविध पहलू उजागर होंगे। आर्यसमाज के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् डॉ० भवानीलाल भारतीय का मैं हृदय से आभारी हूं, उन्होंने व्याख्यानमाला का अपने व्याख्यानों द्वारा शुभारम्भ कर महर्षि को अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि समर्पित की है। विश्वविद्यालय के यशस्वी विद्वान् डॉ० विष्णुदत्त राकेश को इस व्याख्यानमाला का संयोजन करने के लिए अनेक साधुवाद।

१-८-८४

बलभद्रकुमार हूजा
कुलपति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्यसमाज—उपलब्धियाँ, सीमाएं और अपेक्षाएं।

उन्नीसवीं शताब्दी का युग हमारे इतिहास में विशिष्ट महत्त्व का है। इस काल में यूरोपीय जातियों के भारत में आगमन के कारण उत्पन्न हुई परिस्थितियों का पूर्ण लेखा जोखा हमारे इतिहासकारों ने लिया है और बहुत विचार के पश्चात् इसे नवजागरण का युग कहा है। वस्तुतः मध्य कालीन परिस्थितियों ने हमारे धर्म, समाज तथा राष्ट्रीय जीवन धारा को इतना विकृत, दूषित तथा हीन बना दिया था कि एक बार तो उससे उबरना सर्वथा अशक्य नहीं तो कठिन अवश्य प्रतीत होने लगा। धर्म और उपासना के क्षेत्र में वैदिक एकेश्वरवाद तथा उपनिषद् प्रतिपादित ब्रह्मवाद की तो बात ही दूर रही, पुराणोक्त अवतारवाद तथा बहुदेववाद के सिद्धान्त भी केवल ग्रंथों में ही रह गये और उनके स्थान पर हनुमान और भैरव, शीतला और चामुण्डा, मकबरे और मजार, श्मशान और समाधिस्थल, नदी और वृक्ष, पशु और पक्षी पूजा और आराधना के पात्र बन गये। सामाजिक क्षेत्र में कट्टरता, अनुदारता तथा संकीर्ण भावों का प्रचलन हुआ जिसके परिणाम स्वरूप नारी को पर्दे में रखना, उनका बाल्यकाल में ही विवाह करना, विधवाओं का उत्पीड़न, मृत पति के साथ उसकी विधवा को जबरदस्ती चिता पर भस्म कर देना, जन्म के साथ ही कन्याओं का वध कर देना आदि अनेक कुप्रथाएं जन्म ले चुकी थीं। बंगाल में कुलीन प्रथा के कारण अपने आपको आभिजात्य वर्ग का ब्राह्मण मानने वाले लोग अनेक स्त्रियों से विवाह कर लेते थे, पुनः जीवन भर उन निर्दोष बालाओं के साथ दाम्पत्य सम्बन्ध रखना भी उनके लिये कठिन हो जाता था तथापि वे स्त्रियाँ अपने पति के जीवित रहते ही कौमार्य अथवा वैधव्य की सी स्थिति में रहने के लिये विवश हो जाती थीं।

श्रम के वर्गीकरण तथा मनुष्य की वैयक्तिक योग्यता एवं अभिरुचि के स्वस्थ आधार पर बनाई गई वर्ण व्यवस्था सर्वथा नष्ट हो चुकी थी। इसके स्थान पर भारत का बृहत् हिन्दू समाज नाना जातियों, उपजातियों, शाखा-प्रशाखाओं तथा वर्गों में विभक्त होकर हतवीर्य, नष्टप्राय तथा नामशेष हो रहा था। मध्यकालीन संकीर्ण चिन्तन ने हमारे समाज में अछूत, अन्त्यज तथा दलित कहलाने वाली उन अनेक जातियों को भी जन्म दिया था जिनसे भोजन अथवा वैवाहिक सम्बन्ध रखना तो दूर, उनके निकट सम्पर्क में आने, एक ही स्थान पर उनके पास बैठने, उनके हाथ की दी हुई वस्तु को खाने से भी पाप लिप्त होने की आशंका की जाती थी। इधर मुसलमानों के सम्पर्क ने हमारी कूपमण्डूकता की प्रवृत्ति को अधिकाधिक बढ़ाया क्योंकि हम यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानने लगे थे कि अन्य मतावलम्बियों के स्पर्श दोष से हमारा भोजन, निवास, यहां तक कि हमारा शरीर भी दूषित हो सकता है।

ईसाई जातियों के भारत आगमन ने हमारे देश में परिवर्तन की एक नवीन दिशा दिखलाई। इनके माध्यम से हमें समकालीन योरप की गतिविधियों की जानकारी मिली। औद्योगिक उन्नति के कारण यूरोप तथा अमेरिका आदि पश्चिम देशों में परिवर्तन की जो लहर उत्पन्न हुई थी, उसे मध्यकालीन परम्पराओं और रूढ़ियों को ढोने वाली यूरोपीय जातियां भी विस्मय विमुग्ध होकर देख रही थीं। नवीन ज्ञान एवं विज्ञान ने मानवी चिन्तन को अंधविश्वास, परम्परानुपालन तथा रूढ़िवाद से मुक्त किया और उसे सोचने विचारने तथा बुद्धि एवं तर्कप्रवण बनाने में नवीन आयाम प्रदान किये। रेल, तार, डाक आदि के आविष्कारों ने देशों की भौगोलिक सीमाओं को कम किया और प्राच्य तथा पाश्चात्य जातियों का परस्पर संवाद होने लगा।

नवजागरण के आन्दोलनों में आर्यसमाज का आन्दोलन सर्व प्रमुख है। यों तो नव जागृति की लहर राजा राममोहन राय के स्फूर्तिदायी व्यक्तित्व के कारण सर्वप्रथम बंगाल में उत्पन्न हो चुकी थी, किन्तु उसकी व्याप्ति केवल बंग देश तक ही सीमित रही। राममोहन राय ने अपने विशाल अध्ययन, उदार दृष्टि तथा लोकहित के व्यापक चिन्तन के कारण देश और समाज में परिवर्तन को गति प्रदान की। तथापि पश्चिमी आदर्शों के प्रति अत्यधिक प्रशंसा एवं संभ्रम के दृष्टिकोण के कारण वे अपने आन्दोलन को राष्ट्रीयता की उस सुदृढ़ भूमि पर प्रतिष्ठित नहीं कर पाये जो आगे चल कर स्वामी दयानन्द द्वारा प्रवर्तित आर्यसमाज को प्राप्त हो सकी। राम मोहन राय ने धर्म और समाज के क्षेत्र में सुधार, परिष्कार और परिवर्तन को पूर्णरूप से अपनाने पर भी राष्ट्र हित का कोई ऐसा व्यापक आधार ढूंढ़ने में सफलता प्राप्त नहीं की, जिसके कारण सम्पूर्ण जनमानस को चेतना सम्पन्न बनाना सम्भव होता। उनकी दृष्टि में भारत पर अंग्रेजों का राज्य एक दैवी वरदान ही था और वे आने वाले युगों तक इस राज्य की स्थिरता और दृढ़ता को देखने के इच्छुक थे।

श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर को सामाजिक परिवर्तन का साधन बनाने का वैसा अवसर भी नहीं मिला जो उनके पूर्ववर्ती राजा राममोहन राय को प्राप्त हुआ था। यह अवश्य है कि वैदिक एकेश्वरवाद तथा औपनिषदिक ब्रह्मवाद को ब्राह्म पूजा पद्धति में सर्वोपरि महत्त्व देकर उन्होंने हिन्दू धर्म में व्याप्त बहुदेवोपासना, जड़ पूजा तथा अपदेवताओं की अर्चना जैसे अन्धविश्वासों को धक्का दिया। परन्तु केशवचन्द्रसेन ने अपने पूर्ववर्ती ब्राह्म नेताओं के किये कराये पर पानी फेर दिया जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि उन्होंने ईसाई मान्यताओं, ईसाई विश्वासों तथा ईसाई ढ़ंग की पूजा पद्धति की श्रेष्ठता एवं वरेण्यता का प्रतिपादन कर भारतीय हिन्दू धर्म की अस्मिता को ही ठेस नहीं पहुंचाई, उस पादरी वर्ग में प्रसन्नता की एक लहर भी उत्पन्न कर दी जो हिन्दू धर्म की इस परोक्ष आलोचना को देख कर गद् गद् हो रहे थे।

यों तो विदेशी शक्तियों ने इस देश में प्ररम्भ में ही अपने वाणिज्य और व्यवसाय की स्थापना कर अपनी जड़ों को मजबूत किया था, किन्तु उनकी शक्ति में अधिक अभिवृद्धि उस समय हुई जब कि अपने उद्योग, व्यवसाय और व्यापार को सर्वथा सुरक्षित तथा स्थायी बनाने के लिये उन्होंने सैन्य शक्ति जोड़नी आरम्भ की। व्यापारिक प्रतिष्ठानों की रक्षा के लिये एकत्रित यह सेना कालान्तर में इस देश की सिक्ख, मराठा, राजपूत, मुसलमान, गोरखा जैसी जातियों को उनके शक्ति स्रोतों से पृथक कर किस प्रकार सम्पूर्ण देश को ही दास बना लेगी, यह इतिहास की एक स्मरणीय किन्तु शिक्षाप्रद घटना है जो हमें बताती है कि फिरंगियों पर विश्वास करके हमारे पूर्वजों ने कैसी भूल की थी।परन्तु बात केवल राजनैतिक पराधीनता की ही नहीं है। यदि अंग्रेज लोग केवल हमें पराजित करके ही सन्तोष कर लेते और अपनी ईसाइयत एवं तज्जन्य संस्कृति तथा जीवनपद्धति को हम पर थोपने का प्रयास नहीं करते तो सम्भवत: हम उन्हें यहां से निकालने में इतनी जल्दबाजी नहीं करते। परन्तु लार्ड मैकाले ने अपनी शिक्षा नीति का प्रचलन कर मानों हमें यह संकेत दे दिया कि उस पद्धति से शिक्षित लोग गोरे शासकों और उनके अधीन रहने वाले करोड़ों शासितों के बीच मध्यस्थ का कार्य करेंगे। यहां तक ही नहीं, इसी शिक्षा नीति को सफल बना कर वे काली चमड़ी वाले हिन्दुस्तानियों को आचार, विचार, खानपान तथा चिन्तन की दृष्टि से गोरा अंग्रेज बनाकर ही दम लेंगे।

इधर तो पश्चिमी शिक्षा तथा यूरोपीय भावधारा में दीक्षित भारत का नवयुवा वर्ग बेतहाशा पश्चिम का अंधानुकरण करने लगा, और उधर ईसाई प्रचारकों के कूट जाल में फंस कर हमारे देश का अबोध, अशिक्षित तथा अंधविश्वासों के पंक में आकण्ठ मग्न साधारण वर्ग अपनी आस्थाओं से मुंह मोड़ कर ईसाई बनने में ही अपना त्राण देखने लगा। सर्वश्री माईकेल मधुसूदनदत्त, नीलकण्ठ शास्त्री, रामचन्द्रबोस तथा पण्डिता रमाबाई आदि पठित वर्ग के भारतीय तो ईसाइयों द्वारा की गई हिन्दू धर्म की आलोचना का उत्तर देने में सर्वथा अक्षम ही थे, अत: उन्हें स्वधर्म का परित्याग कर ईसाइयत को स्वीकार करने में किञ्चित विलम्ब भी नहीं हुआ। दूसरी ओर, अपने धर्म के मौलिक तत्त्वों से अपरिचित साधारण वर्ग के लोगों के द्वारा ईसाई प्रचारकों के आक्रमणों का उत्तर देना तो और भी कठिन हो रहा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ इसी प्रकार की परिस्थितियों में गुजरात देशोत्पन्न एक चतुर्थाश्रमी दयानन्द सरस्वती ने सामान्यतः समस्त प्राणियों के हित और विशेषतः स्वदेशवासियों की अधोगति को दूर करने की दृष्टि से एक प्रबल आन्दोलन की आधारशिला बम्बई महानगर में १० अप्रैल १८७५ को रखी और उसे आर्यसमाज का नाम दिया। स्वामी दयानन्द के विचारानुसार संसार की सर्वाधिक प्राचीन, पूर्ण सभ्य तथा नाना प्रकार के आध्यात्मिक, दार्शनिक तथा भौतिक उपलब्धियों के सर्वोच्च सोपान पर प्रतिष्ठित आर्य जाति के आदर्शों की यदि पुनः स्थापना का प्रयास किया जाय और आर्य सभ्यता, संस्कृति एवं चिन्तन के आधारभूत वेदों की शिक्षाओं का पुनः प्रचलन किया जाय तो आर्यावर्त देश अपनी लुप्त परम्पराओं और गौरव को एक बार फिर प्राप्त कर सकेगा और आर्यावर्त की उन्नति ही अवशिष्ट संसार की उन्नति का कारण बनेगी। इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिये स्वामी दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना की थी। इस प्रबल आन्दोलन को जन्म देने के पश्चात् वे मात्र आठ वर्षों तक ही जीवित रहे थे, किन्तु इसी अल्पावधि में उन्होंने अपने महान् तेजस्वी, व्यक्तित्व, अपार संकल्पबल तथा अपरिमित प्रज्ञा के द्वारा इस समाज को ऐसी राह पर डाल दिया जिससे कि आगामी आधी शताब्दी तक वह इस देश की धार्मिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय प्रगति का पूर्ण पर्याय बन गया। यहां संक्षेप में आर्यसमाज की उन उपलब्धियों तथा सफलताओं की चर्चा आवश्यक है जो उसने अपने शताधिक जीवनकाल में अर्जित की हैं।

सर्वप्रथम हमें धार्मिक क्षेत्र में आर्यसमाज की उपलब्धियों का विवेचन करना है। हम देख चुके हैं कि स्वामी दयानन्द के आविर्भाव काल में हिन्दू समाज में प्रचलित पूजा उपासना की प्रणाली अत्यन्त विकृत हो चुकी थी। सच्चिदानन्दादि लक्षणों से युक्त परमात्मा के स्थान पर नाना देवी देवता, जड़ मूर्तियां, नदी, पर्वत, वृक्ष आदि हमारे आराध्य देवों का स्थान ले चुके थे। आर्यसमाज ने बताया कि चेतन एवं प्रज्ञावान् मनुष्य के लिये जड़ पदार्थों की पूजा श्रेयस्कर नहीं है। इसी प्रकार आर्यसमाज ने सच्चे धर्म का स्वरूप निरूपण करते हुए यह स्पष्ट किया कि वस्तु का स्वभाव ही उसका धर्म होता है और यह धर्म धर्मी से सर्वथा अपृथक् रहता है। आर्यसमाज ने धर्म की उसी परिभाषा को मान्यता प्रदान की जो प्राचीन ऋषि मुनियों द्वारा स्वीकृत एवं अनुमोदित है। वैशेषिक दर्शन के प्रणेता महर्षि कणाद के अनुसार धर्म वह तत्त्व है जिससे मनुष्य अपनी इहलौकिक और पारलौकिक उन्नति करता है। दूसरे शब्दों में मनुष्य की आध्यात्मिक भावनाओं के विकास के साथ-साथ उसका लौकिक उत्थान भी धर्म साधना का लक्ष्य है। महर्षि मनु ने धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य और अक्रोध को धर्म का लक्षण घोषित किया, किन्तु साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही यह भी कह दिया कि आचार ही मनुष्य का परम धर्म है। स्वामी दयानन्द के विचारानुसार सत्य, न्याय, पक्षपात रहित तथा वेदाज्ञा के अनुकूल आचरण ही धर्म है। इस प्रकार विभिन्न परिभाषाओं को प्रस्तुत करने के अनन्तर आर्यसमाज ने यह स्पष्ट कर दिया कि धर्म के जो मूलभूत तत्त्व हैं उन्हें स्वीकार करने में किसी भी देश, वर्ग या समाज के लोगों को आपत्ति नहीं होनी चाहिए। यह सार्वभौम, सार्वकालिक तथा सार्वजनीन धर्म ही मनुष्य मात्र के लिये आचरणीय है। सत्य, अहिंसा, करुणा, सर्वभूतहित विश्वबन्धुत्व आदि धर्म के वे मूल तत्त्व हैं जिन्हें स्वीकार करने में किसी भी व्यक्ति को कोई विप्रतिपत्ति नहीं है।

इसके साथ ही आर्यसमाज ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि आज संसार में धर्म के नाम पर जो नाना प्रकार के पाखण्ड, अनाचार, ढोंग तथा रूढिबद्ध कर्मकाण्ड आदि प्रचलित हैं, उन्हें धर्म कहना उचित नहीं है। यह अत्यन्त संतोष का विषय है कि आर्यसमाज द्वारा प्रदत्त धर्म की इस मौलिक किन्तु व्यापक परिभाषा को सभी विचारशील एवं प्रबुद्ध लोगों ने स्वीकार किया है। जिन मतों एवं सम्प्रदायों में धर्म के नाम पर नाना प्रकार के अंधविश्वास, मिथ्या कर्मकाण्ड तथा अनर्थक कर्म प्रचलित थे, उन मतों के अनुयायियों ने भी आर्यसमाज के धर्म विषयक मन्तव्य की गुरुता को अनुभव करते हुए अपने सम्प्रदाय तंत्र में पर्याप्त परिशोधन एवं सुधार कर लिये हैं। स्वर्ग, नरक, परलोक आदि के सम्बन्ध में जो अवैज्ञानिक धारणाएं प्रचलित हो चुकी थीं, आज उनका मूलोच्छेद भी हो चुका है। अतः यह कहने में हमें किसी प्रकार का संकोच नहीं होना चाहिए कि आर्यसमाज ने मनुष्य के मनुष्यत्व को धर्म का पर्याय बताते हुए उसके कर्त्तव्य कर्मों को ही धर्म कह कर एतद्विषयक सारे भ्रमों का परिहार कर दिया है।

आर्यसमाज ने धर्म का वास्तविक रूप निर्णीत करने के पश्चात् उस धर्म को जानने के लिये वेद रूपी प्रदीप का परिचय अखिल मानव जाति को कराया। जो लोग वेदों को प्रमाण मानते भी थे, उन्हें भी वेद के वास्तविक स्वरूप, उसकी उत्पत्ति, उसके प्रतिपाद्य विषयों आदि का सम्यक् ज्ञान नहीं था। यह विडम्बना ही थी कि वेदों को सारे शास्त्रों का मूलाधार एवं परम प्रमाण मानने वाले भारत के आचार्य और सम्प्रदाय भी वेदों की विषयवस्तु तथा वैदिक वाङ्मय की परिसीमा के वास्तविक ज्ञान से अनभिज्ञ थे। आर्यसमाज के प्रवर्त्तक ने इस सम्बन्ध में नाना युक्तियों एवं प्रमाण आदि देकर वैदिक ज्ञान की आवश्यकता, उपयोगिता, महत्ता तथा सार्वभौमता का प्रतिपादन किया। साथ ही उन्होंने यह भी बताया कि वेदों के वास्तविक अर्थ करने की प्रक्रिया कौन सी है? यह एक इतिहाससम्मत तथ्य है कि आर्यसमाज ने वैदिक ज्ञान के पुनरुद्धार तथा उसके प्रचार के लिये जो महत्वपूर्ण कार्य किया है उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महत्ता को निष्पक्ष व्यक्तियों ने स्वीकार भी किया है। वेदों के अध्ययन अध्यापन, प्रचार प्रसार तथा इन ग्रन्थों पर भाष्य, टीका, व्याख्या, विवेचना आदि के लेखन में आर्यसमाज के विद्वानों ने सार्थक श्रम किया है।

वेदों के प्रामाण्य के सिद्धान्त को शास्त्रीय तथा तर्कपूर्ण शैली में प्रस्तुत करने के साथ साथ आर्यसमाज का आर्षग्रन्थप्रमाणवाद का सिद्धान्त भी भारत के धार्मिक एवं दार्शनिक जगत् में एक क्रान्तिकारी उद्घोष है। इस मन्तव्य के प्रचार के द्वारा आर्यसमाज ने यह स्पष्ट कर दिया है कि किसी ग्रन्थ का केवल संस्कृत में लिखा जाना अथवा किसी मत सम्प्रदाय के मान्य ग्रन्थों की श्रेणी में आ जाना ही पर्याप्त नहीं है। देखना यह होगा कि क्या इस ग्रन्थ में निरूपित बातें बुद्धिवाद, तर्क तथा सृष्टिक्रम के अनुकूल हैं अथवा प्रतिकूल। यदि किसी धर्म ग्रन्थ कही जाने वाली पुस्तक में मानवी चिन्तन को कुण्ठित करने वाली, मानव समाज में विषमता, विरोध तथा वैमत्य का प्रचार करने वाली बातें लिखी हैं तो ऐसे ग्रन्थों को अनार्ष मान कर उनका बहिष्कार ही किया जाना चाहिए। इसी प्रसंग में आर्यसमाज के प्रवर्त्तक ने यह स्पष्ट किया कि विमल मेधा के धनी, पुरातन ऋषियों की लेखनी से निकला साहित्य ही आर्ष-संज्ञायुक्त है क्योंकि इन ग्रन्थों में विवेचित बातें बुद्धि तथा विज्ञान के सर्वथा अनुकूल हैं तथा इनसे मनुष्य अपने चिन्तन का विकास कर सकता है। इस प्रकार वेदों तथा परवर्ती आर्ष साहित्य को प्रमाण कोटि में रख कर आर्यसमाज ने हमारे शास्त्रीय वाङ्मय का जैसा विवेक पूर्ण विश्लेषण किया है, वह धार्मिक जगत् में एक अभूतपूर्व उपलब्धि ही मानी जायेगी।

आर्यसमाज ने धर्म में आचार पक्ष को महत्त्व दिया है। इस दृष्टि से पञ्च-महायज्ञों का नित्य करना, अष्टांग योग की विधि से साधनापूर्वक योगाभ्यास तथा आश्रममर्यादा को स्वीकार करते हुए जीवनयापन, यह आर्यसमाज द्वारा प्रतिपादित धर्म का क्रियात्मक पहलू है। पञ्चमहायज्ञों में ईश्वर, अग्नि आदि जड़ देवता, माता, पिता, पितामह आदि पितृगण, अतिथि तथा क्षुद्र जीवजंतुओं के सम्बन्ध में मनुष्य के कर्त्तव्यों का विधि विधान बताया गया है। प्रकारान्तर से यों तो सभी मतावलम्बी उपर्युक्त यज्ञों का पालन और आचरण करते हैं, किन्तु मन्वादि स्मृतिकारों द्वारा प्रतिपादित शास्त्रीय विधि से पञ्च यज्ञों की पद्धति का निर्धारण कर आर्यसमाज ने मानव जाति का असीम उपकार किया है। इसी प्रकार यम नियमादि योगांगों का सेवन करते हुए धारणा, ध्यान और समाधि रूपी संयम की साधना करने मे जिस योग की सिद्धि एवं कैवल्य ज्ञान की प्राप्ति होती है, वही मनुष्य का परम-पुरुषार्थ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्यसमाज ने आश्रम धर्म का जिस रूप में निरूपण किया वह शरीरशास्त्र मनोविज्ञान, समाजशास्त्र की दृष्टि से सर्वथा उपयुक्त, श्रेयस्कर तथा मानव जीवन के लिये अत्यन्त हितकारी है। यह बात नहीं है कि आर्यसमाज के पूर्व आश्रम प्रणाली का विधान था ही नहीं। आश्रम व्यवस्था के समस्त नियम स्मृतिकारों तथा धर्म-शास्त्रकारों ने विस्तार से वर्णित किये हैं, किन्तु उनकी वैज्ञानिक व्याख्या एवं स्वरूप-विवेचना अत्यन्त सतर्क ढ़ंग से आर्यसमाज ने की है। उसने ब्रह्मचर्य साधना के लिये प्राचीन गुरुकुल प्रणाली की शिक्षा जारी की, जहाँ रह कर छात्र अपने गुरुजनों के सान्निध्य में विद्योपार्जन करता है। इन गुरुकुलों में उसे केवल पुस्तकीय ज्ञान ही नहीं सिखलाया जाता, अपितु यहां शरीर, मन, आत्मा और बुद्धि का समुचित विकास करने के साधन भी प्रस्तुत किये जाते हैं। गृहस्थ के कर्त्तव्य कर्मों को भी सुव्यवस्थित एवं सुनियोजित प्रणाली से निभाने के लिये आर्यसमाज ने सदा ही प्रेरणा की है। उसका दृष्टिकोण मध्यकाल की श्रमण संस्कृति तथा जैन, बौद्ध विचारधारा से नितान्त भिन्न रहा है जिसमें गृहस्थ जीवन को हेय दृष्टि से देखा गया है तथा वैराग्य प्रधान भिक्षु जीवन को ही मानव का आदर्श बताया गया है। आर्यसमाज ने मनु के शब्दों में यह स्पष्ट घोषित किया कि जिस प्रकार नदियाँ और नाले सागर में जाकर स्थिरता एवं शान्ति प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार ब्रह्मचारी, वनस्थ एवं संन्यस्त जन भी स्वजीवन निर्वाह के लिये गृहस्थियों के ही नजदीक जाते हैं। इसी प्रकार वानप्रस्थ-व्यवस्था को पुनरुज्जीवित करने तथा संन्यासी वर्ग में प्रचलित पाखण्डों और रूढ़ कर्मकाण्ड के आचरणों को पृथक् कर लोकहित की दृष्टि से सर्वत्र भ्रमण करते हुए पारमार्थिक सिद्धि को प्राप्त करना ही संन्यासाश्रमी का लक्ष्य निर्धारित करना आर्य-समाज के एतद्विषयक स्वस्थ चिन्तन का परिचायक है।

आर्यसमाज वैयक्तिक हित की ही भांति सामाजिक हित को भी महत्त्व देता है। उसने अपने दसवें नियम में यह स्पष्ट कर दिया है कि सामाजिक तथा सर्व-हित के नियमों को पालने में हमें अपनी वैयक्तिक स्वतंत्रता का किंचित परित्याग तो करना ही होगा। वैदिक दृष्टिकोण को आधारबिन्दु बनाकर आर्यसमाज ने वर्ण-व्यवस्था को समाज के सन्तुलित विकास का महत्त्वपूर्ण साधन माना है। आज हम देखते हैं कि वर्णव्यवस्था पर नाना प्रकार के आरोप प्रत्यारोप लगाये जाते हैं। कभी उसे सामाजिक वैषम्य का प्रतीक कहा जाता है तो कभी ब्राह्मणों की अधिनायक मनोवृत्ति का सूचक। इन आरोपों में अधिक सत्यता नहीं है। पुराकालीन भारतीय ऋषियों ने समाज के सार्वत्रिक विकास के लिये श्रम विभाजन पूर्वक व्यक्ति के योग-दान की दृष्टि से ही वर्ण व्यवस्था की कल्पना की थी।

इस योजना में अज्ञान एवं अविद्या को निर्मूल कर मानव जाति को ज्ञानालोक से प्रकाशित करने का दायित्व ब्राह्मणों का माना गया है। अन्याय और अत्याचार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रतिरोध हेतु सन्नद्ध रहने की अपेक्षा क्षत्रिय से की गई है। समाज को भौतिक अभावों से मुक्त कर उसके जीवन को आवश्यक वस्तुओं से परिपूर्ण रखने का दायित्व वैश्यों को सौंपा गया है। किन्तु शूद्र समाज की लांछना एवं तिरस्कार का पात्र नहीं है। वह अपनी शारीरिक शक्ति के द्वारा अन्य वर्णस्थों की सेवा द्वारा ही स्वजीविका का उपार्जन करता है। इसप्रकार आर्यसमाज ने वर्ण-व्यवस्था को एक तर्कसंगत तथा बुद्धिग्राह्य आधार प्रदान किया है। तथापि जन्मगत जातियों के जटिल जाल से हिन्दू समाज को मुक्त कर उसे गुण, कर्म पर आधारित सुसंगत वर्ण व्यवस्था में ढाल देना एक कठिन कार्य है। इस क्षेत्र में बहुत कुछ करने पर भी हमें यह स्वीकार करना होगा कि अभी हमारी गति बहुत धीमी रही है। अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन देने पर भी यह ध्यान रखना होगा कि विवाह के लिये जिन जोड़ों का मिलान कराया जाय, वे गुण, कर्म, स्वभाव, अभिरुचि तथा शरीर, मन तथा बुद्धि के विकास की दृष्टि से एक दूसरे के सर्वथा अनुकूल हों।

आर्यसमाज ने नारी जागरण के क्षेत्र में बहुत मूल्यवान कार्य किया है। उस युग की कल्पना कीजिये जब कि नारी पुरुषसमाज द्वारा लांछना, प्रताड़ना, शोषण तथा अपमान का ही पात्र समझी जाती थी। समान अधिकार दिये जाने की बात तो दूर रही, घर में उसका रहना भी अशुभ एवं अमगल का सूचक माना जाता था। कन्याओं का जन्म होते ही उनका वध कर दिया जाता था और उधर विधवा नारी का दर्शन ही अकल्याण का प्रतीक बन गया था। ऐसी स्थिति में नारी के सर्वतो-मुखी कल्याण के लिये प्रयास करना तथा उसमें सफलता पा लेना आर्यसमाज की एक महती उपलब्धि ही कही जायगी। आर्यसमाज ने नारी के उत्थान के लिये जो कार्यक्रम बनाया उसमें वैदिक और उपनिषत्कालीन नारी के आदर्श को सामने रखा गया था। आर्यसमाज की यह मान्यता रही हैं कि अत्यन्त पुरातन काल में नारी को महत्त्वपूर्ण स्थिति प्राप्त रही और वह समाज के सभी वर्गों के आदर तथा सम्मान की पात्र थी। मनुस्मृति का वह श्लोक प्रायः इस संदर्भ में उद्धृत किया जाता है जिसमें यह कहा गया है कि जहाँ नारियों की पूजा-अर्थात् सम्मान होता है वहां देवता निवास करते हैं। यह सत्य है कि मध्यकालीन स्मृति ग्रन्थों तथा धर्म शास्त्र के निबंध-ग्रन्थों में नारी के पद की वह गुरुता और महत्ता सुरक्षित नहीं रह सकी जो उसे वैदिक काल में प्राप्त थी। तथापि आर्यसमाज का यह प्रयत्न रहा कि वह नारी को उसके गौरवपूर्ण पद पर पुनः प्रतिष्ठित करे और समाज में उसे आदर का स्थान दिलाये।

इसी संदर्भ में हमें आर्यसमाज द्वारा किये गये सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन के उस कार्य का भी जायजा लेना होगा जिसके कारण नारी का शोषण अपमान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा उत्पीडन बन्द हो सका है। इस प्रसंग में बालविवाह का उन्मूलन, वृद्ध एवं अनमेल विवाहों के विरोध में जनमानस को प्रबुद्ध करना, पर्दे की प्रथा का बहिष्कार, नारी शिक्षा को प्रोत्साहित करना ,विधवाओं के पुनर्विवाह को शास्त्रसम्मत ठहराना, दहेज तथा विवाहों में अपव्यय आदि पर रोक लगाने आदि कार्यों को लिया जा सकता है।

दलितोद्धार तथा अस्पृश्यता का निवारण आर्यसमाज की सामाजिक क्रान्ति के ध्वजवाहक रहे हैं। आर्यसमाज मानव समुदाय की एकता का पक्षपोषक रहा है। उसकी दृष्टि में जन्म, रंग, प्रान्त, देश, लिंग आदि के आधार पर भेदभाव की जो रेखायें उभर आई हैं, वे सर्वथा कृत्रिम हैं तथा मानव समाज की उन्नति में बाधक भी हैं। इसी दृष्टिबिन्दु को सामने रख कर आर्यसमाज ने अस्पृश्यता की भावना को दूर करने तथा दलित एवं अछूत समझी जाने वाली जातियों के उद्धार का कार्यक्रम बनाया। कालान्तर में देश के स्वतंत्रता प्राप्त करने तथा भारत के संविधान में देश के सभी नागरिकों को समान अधिकार दिये जाने परिणाम के स्वरूप पठित वर्ग में अस्पृश्यता तथा पारस्परिक भेदभाव की बुराई कुछ सीमा तक कम तो हुई किन्तु कट्टर एवं संकीर्ण विचारों के लोगों में से इस विकृति को सर्वथा दूर करना सम्भव नहीं हो सका। तथापि आर्यसमाज के एतद्विषयक प्रयत्नों का महत्व कम नहीं होता। आर्यसमाज ने आर्थिक अथवा राजनैतिक संरक्षण देकर दलित जातियों को यथास्थिति में रखने का कभी समर्थन नहीं किया। उसकी तो यह धारणा रही है प्रत्येक वर्ग को शिक्षा, संस्कार तथा सदाचार की दृष्टि से उन्नत बनने का अवसर मिलना ही चाहिए। इस शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में दलित जातियों में पाई जाने वाली अनेक कुरीतियों का उन्मूलन करने के लिये आर्यसमाज ने श्लाघनीय प्रयास किया था। इसी का यह परिणाम हुआ कि इस वर्ग के अनेक बालक आर्यसमाज द्वारा संचालित गुरुकुलों में अध्ययनार्थ प्रविष्ट हुए। वहां से अपना अध्ययन समाप्त करने के पश्चात् उन्होंने अपना जीवन जिस ढंग से व्यतीत किया उससे यह सिद्ध हो गया कि आर्यसमाज जात पांत का भेदभाव किये बिना प्रत्येक बालक को सदाचारी, सुशिक्षित तथा संस्कारशील बनाने के लिये कृतसंकल्प है। इस प्रकार भारतीय समाज को विषमता, पार्थक्य तथा भेदभाव के वात्याचक्र से मुक्त कर स्वतंत्रता, समता तथा बंधुत्व का स्वस्थ वातावरण प्रदान करना आर्यसमाज का प्रमुख लक्ष्य रहा है।

यहां तक हमने आर्यसमाज द्वारा धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्र में किये गये क्रान्तिकारी कार्यों का मूल्यांकन करने का प्रयास किया। परन्तु यह ध्यान रखना होगा कि आर्यसमाज का मानवजीवन के प्रति दृष्टिकोण समग्रता का है। उसने धर्म, दर्शन और अध्यात्म की ही भांति सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी स्वस्थ चिंतन प्रदान किया है। आर्यसमाज के प्रवर्त्तक स्वामी दयानन्द ने विदेशियों द्वारा किये जाने वाले देश के आर्थिक शोषण के विरुद्ध आवाज उठाई। उन्होंने पदे पदे यह अनुभव किया था कि जब तक परकीय शासन समाप्त नहीं हो जाता तब तक स्वदेशवासियों को न तो भर पेट खाने के लिये रोटी ही मिलेगी और न वे अपनी उन्नति ही कर पायेंगे। इसी दृष्टि से स्वामीजी ने सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण में शासकों द्वारा लागू किये गये उन कारणों की कठोर आलोचना की है जो इस देश के दरिद्र वर्ग का शोषण करते हैं। नमक उत्पादन पर लगाये गये कर, वनों में पैदा होने वाली घास, लकड़ी तथा अन्य वस्तुओं को वहां से लाकर बेचने वाले गरीब लकड़हारों पर लगाये गये कर, अदालतों में लागू की गई स्टाम्प ड्यूटी आदि के बारे में स्वामीजी ने अत्यन्त प्रभावोत्पादक ढ़ंग से अपने विचार व्यक्त किये हैं तथा शासक वर्ग से अपील की है कि वह दरिद्र वर्ग का शोषण बन्द करे। उन्होंने कृषि कर्म की प्रशंसा करते हुए किसान को राजाओं का भी अन्नदाता बताया और श्रमिक वर्ग के उत्थान को सर्वोपरि महत्त्व प्रदान किया।

गोरक्षा तथा अन्य उपयोगी पशुओं के संरक्षण, संवर्धन को वे देश की आर्थिक उन्नति का एक सुदृढ़ उपाय मानते थे। गोरक्षा के प्रश्न को उन्होंने विशुद्ध आर्थिक दृष्टिकोण से ही देखा था। भावुकता का किञ्चित मात्र भी आश्रय लिये बिना उन्होंने निर्विवाद रूप से सिद्ध कर दिया कि गाय की रक्षा तथा गोधन की वृद्धि देश की आर्थिक उन्नति की रीढ़ है। गोधन का विनाश राष्ट्र का विनाश है। गोरक्षा की दयानन्द प्रतिपादित नीति का अनुसरण करते हुए कालान्तर में आर्यसमाज ने गोसंवर्धन तथा गोसंरक्षण की अनेक महत्त्वाकांक्षी योजनाएं क्रियान्वित कीं। यह एक विडम्बना ही थी कि भारत के संविधान में गो आदि उपयोगी पशुओं की रक्षा को सुनिश्चित बनाने के लिये विभिन्न धाराओं का समावेश किये जाने पर भी कतिपय कारणों से गोवंश का उत्तरोत्तर ह्रास ही होता गया। परिवर्तित परिस्थितियों में इस समस्या का हल मात्र आन्दोलन चलाने से होने वाला नहीं है। विशुद्ध आर्थिक आधार पर गोरक्षा के महत्त्व को प्रतिपादित करने से ही इस समस्या में निहित साम्प्रदायिकता की मनोवृत्ति का उन्मूलन किया जा सकता है। स्वामी दयानन्द को भी गोरक्षा का आर्थिक पहलू ही वजनदार प्रतीत हुआ था।

प्राय: यह कहा जाता है कि आर्यसमाज ने धर्म एवं समाज के क्षेत्रों में तो यत्किञ्चित कार्य किया है परन्तु देश को द्रुत गति से समुन्नत बनाने तथा देशवासियों के समक्ष उत्पन्न आर्थिक कठिनाइयों का सन्तोषपूर्ण समाधान निकालना उसके वश के बाहर है। इस कथन में आंशिक सत्यता तो हो सकती है, किन्तु पूर्ण सत्यता नहीं। प्रथम तो आर्यसमाज का यह दृष्टिकोण रहा है कि भारत का प्रमुख हिन्दू-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज यदि अपनी धार्मिक विकृतियों को छोड़ कर धर्म के स्वस्थ और लोकोन्नति में सहायक रूप को समझ लेता है तथा तदनुकूल आचरण करने के लिये तत्पर हो जाता है तो उसकी लौकिक एवं आर्थिक उन्नति भी सुनिश्चित है। इसी प्रकार उसकी यह भी धारणा है कि सामाजिक दृष्टि से सुसंगठित हुए तथा सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन किये बिना समाज के आर्थिक विकास का आधार ही तैयार नहीं होता।

तथापि आर्यसमाज ने यह अनुभव किया कि देश को विविध कला-कौशल, उद्योग-धंधों तथा व्यापार-व्यवसाय की दृष्टि से भी समृद्ध बनाना आवश्यक है। स्वामी दयानन्द ने अपने जीवनकाल में ही जर्मनी के प्रो० वाइज से पत्रव्यवहार कर उनसे प्रार्थना की थी कि वे इस देश के नवयुवकों को वहाँ रह कर कला कौशल तथा नाना प्रकार के उद्योग व्यवसायों में प्रशिक्षित होने की सुविधा प्रदान करें। इसी प्रकार आर्यसमाज द्वारा संचालित शिक्षण संस्थाओं में भी छात्रों को नाना प्रकार के कुटीर उद्योगों तथा लघु उद्योगों की शिक्षा दी जाती रही। ये सब इस बात के प्रतीक हैं कि आर्यसमाज का मानवी समस्याओं के प्रति दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक, रचनात्मक तथा समग्र रहा है। आर्यसमाज की अतीत काल में प्राप्त, उपलब्धियों का एक महत्त्वपूर्ण कारण भी यही था कि उसने मानवी विकास के सभी पहलुओं को स्पर्श किया था।

भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में आर्यसमाज की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। आर्यसमाज के प्रवर्तक दयानन्द सरस्वती ने सर्वप्रथम स्वराज्य का नारा दिया तथा यह घोषित किया कि स्वदेशी राज्य सर्वोपरि उतम होता है, किन्तु विदेशियों का राज्य, चाहे माता पिता के समान हितकारी ही क्यों न हो हमारे लिये कभी काम्य नहीं हो सकता। आर्यसमाज ने राष्ट्रीयता का नारा उस समय बुलन्द किया जब कि राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) का जातकर्म भी नहीं हुआ था। जिस समय कांग्रेस के अधिवेशनों में महारानी विक्टोरिया की दीर्घायु कामना के प्रस्ताव स्वीकृत होते थे और विदेशी शासन से भारतीयों को प्रशासन सेवाओं में अधिक स्थान दिये जाने की प्रार्थनाएं की जाती थीं, उस समय आर्यसमाज के व्याख्यान मंचों से स्वराज्य, स्वाधीनता ओर स्वदेशी का गौरव गान किया जाता था। स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग के लिये स्वामी दयानन्द ने अपने सम्पर्क में आने वाले भक्तों और शिष्यों को सदा प्रेरणा दी थी। लाहौर आर्यसमाज के प्रथम प्रधान लाला मूलराज तथा मंत्री लाला सांईदास स्वदेशी वस्त्रों तथा स्वदेश में बनी वस्तुओं के प्रयोग के कट्टर समर्थक थे।

स्वामी दयानन्द प्रतिपादित राष्ट्रवाद का ही यह परिणाम था कि कालान्तर में मातृभूति को स्वतंत्र कराने के लिये श्यामजी कृष्ण वर्मा ने लंदन में इण्डिया हाउस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की स्थापना की तथा विनायक दामोदर सावरकर, लाला हरदयाल, मदनलाल धींगड़ा जैसे क्रान्तिकारियों को स्वाधीनता यज्ञ में आत्माहुति देने की प्रेरणा मिली। जब यही क्रान्तिकारी विचारधारा भारत में फैली तो सरदार भगतसिंह, रामप्रसाद बिस्मिल, सोहनलाल पाठक, गेंदालाल दीक्षित, ठाकुर रोशनसिंह आदि न जाने कितने आर्यसमाजियों ने उसमें दीक्षा ली और देश को स्वतंत्र कराने के लिये आत्मबलिदान किया। स्वाधीनता के इस संग्राम में आर्यसमाज का निर्णायक योगदान रहा है।

इसी प्रकार स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपतराय, भाई परमानन्द आदि देशभक्तों का प्रेरणा स्रोत भी आर्यसमाज ही रहा है। महात्मा गाँधी जिस समय दक्षिण अफ्रीका में अपने सत्याग्रह संग्राम को सफलतापूर्वक चलाने के पश्चात् भारत आये तो यहां आर्यसमाजों में व्याप्त राष्ट्रीय भावनाओं को देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई थी। १६२०, ३०, ३२ तथा ४२ के सभी आन्दोलनों में आर्यसमाजियों ने सहस्रों की संख्या में भाग लिया तथा असहयोग, सविनय अवज्ञा, नमक आन्दोलन तथा भारत छोड़ो आदि आन्दोलनों में कारागार की यात्रायें कीं। आर्यसमाज की राष्ट्रीय भावना के प्रति अंग्रेजी सरकार सदा से शंकाशील रही। ब्रिटिश सरकार का गुप्तचर विभाग आर्यसमाज की कार्यपद्धति तथा उसकी प्रचार प्रणाली को बहुत गहराई से देखता था। आगे चलकर पटियाला राज्य में आर्यसमाजियों पर सरकार के खिलाफ षड्यंत्र करने का आरोप लगा कर मुकद्दमा चलाया गया। महात्मा मुन्शीराम ने इस अभियोग में आर्यसमाज का पक्ष लेकर यह सिद्ध किया कि स्वामी दयानन्द के मन्तव्यों में राष्ट्र के प्रति त्याग एवं समर्पण का भाव तो सर्वत्र विद्यमान है, अतः आर्यसमाजियों का राष्ट्र धर्म में दीक्षित होना न तो अपराध ही है और न पाप। आज इतिहास इस तथ्य को पूर्णरूप से स्वीकार कर चुका है कि भारत के स्वतंत्रता संग्राम में आर्यसमाज का संस्थागत योगदान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और मूल्यवान रहा है।

स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित कराने में अपना उल्लेखनीय सहयोग दिया है। आर्यसमाज के प्रवर्त्तक ने अपनी सूक्ष्मदर्शिता से यह अनुभव कर लिया था कि जबतक भारतवासी हिन्दी को अपनी सामान्य सम्पर्क भाषा स्वीकार नहीं कर लेंगे और विचारों के आदान प्रदान के लिये विदेशी भाषा पर ही निर्भर रहेंगे तब तक उनमें सच्ची राष्ट्रीयता का विकास नहीं होगा। इसलिये स्वामीजी ने स्वयं तो अपने विचारों के आदानप्रदान के लिये हिन्दी का प्रयोग किया ही, अपने अनुयायियों को भी आदेश दिया कि वे अपने पारस्परिक विचार व्यवहार में आर्यभाषा का प्रयोग करें। इसका परिणाम यह निकला कि आर्यसमाज के माध्यम से जो साहित्य प्रणीत हुआ उससे हिन्दी के ज्ञानमूलक तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रसात्मक-दोनों प्रकार के वाङ्मय की अभूतपूर्व अभिवृद्धि हुई। हिन्दी पत्रकारिता को आर्यसमाज ने एक नवीन आयाम दिया। हिन्दी प्रचार का यह कार्य इस देश की सीमाओं तक ही आबद्ध नहीं रहा। अफ्रीका, मारिशस, फीजी, गायना, सुरीनाम आदि आदि विदेशी उपनिवेशों में बसने वाले भारतवासियों में हिन्दी का प्रचार करने का श्रेय भी आर्यसमाज को ही है। आर्यसमाज का हिन्दी से भी अधिक सम्बन्ध संस्कृत भाषा से है। स्वामी दयानन्द स्वयं संस्कृत के प्रौढ़ विद्वान थे। उपदेशक काल के प्रारम्भिक दिनों में वे संस्कृत को ही अपने विचार विनियम तथा शास्त्र चर्चा का माध्यम बनाते रहे। उनकी अधिकांश ग्रन्थ रचना भी संस्कृत में हुई है। इस प्रकार संस्कृत के महत्त्व को पुन: प्रतिपादित कर आर्यसमाज ने यह सिद्ध कर दिया कि नवजागरण की प्रेरणा के लिये संस्कृत भाषा और साहित्य का पुनरुद्धार अत्यन्त आवश्यक है।

आर्यसमाज ने शिक्षा के क्षेत्र में जो सफलता अर्जित की है वह तो भारतीय शिक्षा व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय ही बन चुका है। स्वामी दयानन्द स्वयं एक सफल शिक्षा शास्त्री थे। शिक्षा विषयक उन्होंने अपने सूत्रों को सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, व्यवहारभानु, संस्कृतवाक्यप्रबोध तथा वेद भाष्य में यत्र तत्र कहीं विस्तारपूर्वक, तो कहीं संक्षेप में संकलित किया है। आगे चलकर आर्यसमाज ने डी० ए० वी० शिक्षा संस्थाओं तथा गुरुकुल पद्धति के द्वारा भारत में राष्ट्रीय शिक्षा नीति का प्रवर्त्तन किया।

स्वामी दयानन्द अनुभव करते थे कि भारत की शिक्षा नीति में संस्कृत तथा हिन्दी जैसी भाषाओं को प्रमुख स्थान मिलना चाहिए। उन्होंने स्वयं अपने जीवनकाल में अनेक शिक्षण संस्थायें प्रारम्भ कीं परन्तु जब अनुभव किया कि इनसे यथेष्ठ लाभ नहीं हो रहा है तो उन्हें बंद करना ही उचित समझा। स्वामी दयानन्द प्रतिपादित शिक्षा प्रणाली में गुरु शिष्य के निकट के सम्बन्धों पर सर्वाधिक बल दिया गया है। साथ ही शिक्षा का आदर्श चरित्रनिर्माण को माना गया है। उनकी धारणा थी कि विदेशी माध्यम से दी गई शिक्षा अधिक लाभकारी नहीं हो सकती। स्वामी दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट इसी सूत्र को लेकर गुरुकुल कांगड़ी में स्नातक स्तर की विज्ञान की शिक्षा को मातृभाषा के माध्यम से देने की व्यवस्था तो आज से ६०-७० वर्ष पूर्व ही की जा चुकी थी। आर्यसमाज ने जिस शिक्षा प्रणाली को प्रवर्तित किया उसमें धनी एवं दरिद्र की सन्तान के साथ तुल्य व्यवहार करने तथा पठन पाठन में उन्हें एक सी सुविधायें देने की बात कही गई है। सर्वोपरि बात तो यह है कि इस शिक्षा-पद्धति में शिक्षित छात्र आगे चल कर राष्ट्र का एक प्रबुद्ध नागरिक तो बनता ही है उसमें राष्ट्रीय गौरव, स्वाभिमान तथा स्वदेश भक्ति के भावों का भी समुचित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकास होता है। इधर कन्या शिक्षा के क्षेत्र में नवीन क्रान्ति उपस्थित कर आर्यसमाज ने यह स्पष्ट घोषित कर दिया कि समाज के अर्द्धांग नारी को अपने सर्वांगीण विकास के सभी साधन प्राप्त करने के पूर्ण अधिकार हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि धर्म, समाज, संस्कृति, स्वदेश तथा स्वभाषा—इन सभी क्षेत्रों में नवमूल्यों की स्थापना कर आर्यसमाज ने मुख्यतः भारतवर्ष और गौणतः विश्व के प्रबुद्ध मानव वर्ग में एक नवीन वैचारिक क्रान्ति का आरम्भ किया और उसमें उसे पूर्ण सफलता भी मिली।

इस प्रकार आर्यसमाज की विगतकालीन उपलब्धियों का विवेचन करने के पश्चात् हमें यह देखना होगा कि आधी शताब्दी से भी अधिक समय तक पूर्ण सक्रिय रहने के पश्चात् आर्यसमाज के आन्दोलन में शैथिल्य, हताशा और दिग्मूढ़ता का समावेश क्यों और कैसे हुआ। सर्वप्रथम हम धार्मिक क्षेत्र को ही लें। स्वामी दयानन्द ने धर्म को बुद्धिवाद पर आश्रित रखने पर जोर दिया था। उनका आग्रह था कि धर्माधर्म, कर्तव्याकर्त्तव्य आदि का निर्धारण करते समय हमें अपनी बुद्धि को काम में लेना चाहिए। कोई वस्तु इसलिये श्रेष्ठ नहीं हो जाती क्योंकि वह परम्परा से हमें प्राप्त है और न कोई अन्य वस्तु इसीलिये अग्राहय होती है, क्योंकि वह नवीन है। विचारपूर्वक निर्णय करने के पश्चात् ही हमें धर्माधर्म का निश्चय करना होगा। स्वामी दयानन्द के इस बुद्धिवाद को स्वीकार करने में लोगों को कोई कठिनाई नहीं हुई। परन्तु आज हम देखते हैं कि धर्म के नाम पर पाखण्ड, अंध-विश्वास, मूढ़ धारणाएं तथा गुरुडम बढ़ रहा है। अब तक तो हम अपठित और अज्ञानी लोगों पर ही यह आक्षेप लगाते थे कि वे अंधविश्वासी होते हैं, किन्तु अब तो पठित एवं प्रबुद्ध लोग भी अंध विश्वासों के शिकार हो रहे हैं। नये नये बाबाओं, योगिराजों और भगवानों का प्रादुर्भाव यह सिद्ध कर रहा है कि आर्यसमाज का तर्काश्रित धर्म और बुद्धिवाद से प्रबोधित मतवाद लोगों को अस्वीकार्य है। यह सब देख कर ऐसा प्रतीत होता है कि आर्यसमाज के प्रभाव में दिन प्रतिदिन क्षीणता आ रही है अथवा इस आन्दोलन की सक्रियता, उग्रता तथा तेजस्विता में निश्चय ही न्यूनता आ गई है।

परन्तु हमें उन मनोविज्ञानिक कारणों को भी ढूंढना होगा जो धर्म के क्षेत्र में आयंसमाज की वर्तमानकालीन असफलता के हेतु हो सकते हैं। प्रथम तो यह कहा जा सकता है कि आर्यसमाज ने धर्म के नाम पर चलने वाले पाखण्डों, आडम्बरों तथा रूढ़िवाद का खण्डन करने में तो अपनी प्रबल शक्ति लगा दी परन्तु उसने यह चिन्ता नहीं की कि धर्म तथा उपासना के वास्तविक स्वरूप तथा उसको आचरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में लाने की विधि को भी जनता तक पहुंचाया जाये। आध्यात्मिक और पारलौकिक चिन्तन चाहे कितना ही महत्त्वपूर्ण और उपयोगी क्यों न हो, उसके साधनों में भी कुछ ऐसा आकर्षण होना चाहिए जिससे कि मनुष्य सहजभाव से उसकी ओर आकृष्ट हो सके। आर्यसमाज ने साकारोपासना, प्रतीक पूजा, पौत्तलिक उपासना आदि का खण्डन तो किया किन्तु भावप्रवण निराकारोपासना की किसी विधि को प्रचलित नहीं कर सका, जिसकी ओर आकृष्ट होकर उपासकों और साधकों का समूह दौड़ कर आये। आर्यसमाज की वैयक्तिक और सामूहिक उपासनाएं शुष्क, नीरस तथा दिखाऊ रह गईं।

एक और कठिनाई भी थी। आर्यसमाजों के उपासना स्थलों का रख रखाव, उनकी साजसज्जा तथा व्यवस्था में ऐसा कोई आकर्षण नहीं था, जिसके कि कारण बहु-संख्यक लोग उसकी ओर आकृष्ट होते। संगीत के माध्यम से मनुष्य की मनोवृत्तियों का निग्रह और परिष्कार तो होता ही है वह उसकी एकतानता का भी कारण बनता है। यही कारण है कि प्रत्येक धार्मिक उपासना प्रणाली में संगीत को समुचित स्थान दिया जाता है। पौराणिकों के भजन गान और आरती पाठ, ईसाइयों का भक्ति-संगीत, सूफी कव्वालों की वे कव्वालियां जो 'इश्क हकीकी' को भावप्रवण शैली से उजागर करती हैं तथा सिक्ख रागियों द्वारा गाई जाने वाली गुरुबानी-ये सभी धार्मिक संगीत के ही विभिन्न रूप हैं, जो भक्त समाज को अनायास ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। आर्यसमाज में संगीत पर आधारित कोई ऐसी उपासना प्रणाली विकसित नहीं हो सकी। आर्यसमाज के प्रारम्भिक दिनों में तो अमीचंद मेहता, वासुदेव, चन्द्र कवि तथा इसी कोटि के अन्य गायकों, कवियों तथा संगीतज्ञों ने अपनी रचनाओं के द्वारा आर्यसमाज में भक्ति संगीत की सरिता को प्रवाहित किया था, किन्तु कालान्तर में वह कई कारणों से अवरुद्ध हो गई।

आजकल योग साधना की ओर अधिकाधिक लोगों का आकर्षण बढ़ता जा रहा है। मांग के अनुसार ही पातञ्जल योग से भिन्न अनेक प्रकार के साम्प्रदायिक योग प्रशिक्षण केन्द्र भी खुलते जाते हैं। महेश योगी की अतीन्द्रिय ध्यानपद्धति, रजनीश का भोग मिश्रित योग, ब्रह्माकुमारियों का त्राटक आधारित राजयोग और न जाने कौन-कौन सी नवीन योग पद्धतियां प्रचलित हो चुकी हैं जो विशाल मानव समूह को निरन्तर अपनी ओर आकृष्ट कर रही हैं। आर्यसमाज तो महर्षि पतञ्जलि द्वारा उपदिष्ट उस राजयोग का समर्थक है जिसे ईश्वर प्रणिधान तथा अष्टांग साधना के द्वारा सिद्ध किया जाता है। यों विगतकाल में स्वामी लक्ष्मणानन्द, महात्मा नारायण स्वामी, स्वामी ओमानन्दतीर्थ आदि अनेक योगियों ने स्वसाधना के द्वारा आर्यसमाज में रहते हुए योगमार्ग का अनुशासन और उपदेश किया था, किन्तु आज आवश्यकता इस बात की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि योग के प्रति बढ़ते हुए आकर्षण को देखते हुए आर्यसमाज को योग साधना के वास्तविक स्वरूप तथा क्रियापद्धति से लोगों को परिचित कराना चाहिए।

परन्तु धार्मिक विचारों का ठोस तथा प्रभावशाली प्रचार तो साहित्य के द्वारा होता है। स्वामी दयानन्द ने स्वयं साहित्य के माध्यम से धार्मिक जगत् में जो वैचारिक क्रान्ति की, उसका दूसरा उदाहरण मिलना कठिन है। आर्यसमाज के प्रारम्भिक दिनों में भी अनेक उत्कृष्ट ग्रन्थों की ,रचना के द्वारा स्वामी दयानन्द के धर्म विषयक विचारों को प्रसारित किया गया। परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् आर्यसमाज के साहित्य प्रणयन के क्षेत्र में गतिरोध आ गया। साहित्य का लेखन और प्रकाशन भी पाठक समुदाय की योग्यता, क्षमता एवं रुचि को देखकर किया जाना चाहिए। सामान्य जनों के लिये जो साहित्य लिखा जाता है वह प्रबुद्ध लोगों के लिये उपयोगी नहीं होता। इसी प्रकार बालकों, स्त्रियों, कृषकों, मजदूरों श्रमजीवियों, छात्रों आदि विविध वर्गों के लिये विविध प्रकार का साहित्य लिखा जाना आवश्यक है।

हमें यह स्मरण रखना होगा कि आर्यसमाज का धर्मान्दोलन वेदों तथा तदनुवर्ती आर्ष शास्त्र ग्रन्थों में निर्दिष्ट शिक्षाओं, उपदेशों तथा प्रतिपाद्य विषयों को आधार वना कर चला था। आज वैदिक वाङ्मय की विविध विधाओं तथा उसके आनुषंगिक अंगों एवं उपांगों का विशद वैज्ञानिक अध्ययन विभिन्न भारतीय तथा विदेशी विश्वविद्यालयों में हो रहा है। अतः आर्यसमाज का भी यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह अपना एक स्वतंत्र शोध संस्थान स्थापित करे तथा उसके माध्यम से स्वामी दयानन्द के दृष्टिकोण को प्रमुखता देते हुए वेद, वेदाङ्ग, दर्शन, प्राचीन इतिहास आदि विषयों के ग्रन्थों का लेखन एवं सम्पादन कराये। सामाजिक तथा राष्ट्रीय प्रश्नों एवं समस्यायों में अत्यधिक उलझ जाने के कारण आर्यसमाज के विद्वानों का बैदुष्य तथा उनके चिन्तन की प्रमुखता अभी तक विद्वत्समाज तक पहुंच नहीं पाई है। यही कारण है कि बौद्धिक समाज आर्यसमाज के प्रति प्रायः उदासीन सा रहता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आर्यसमाज का धर्मान्दोलन आज अनेक प्रकार की युगीन चुनौतियों से जूझ रहा है। यदि समस्यायों का सम्यक् आकलन कर उनके निदान के लिये समयबद्ध कार्यक्रम अपनाये जायें तो कोई कारण नहीं कि आर्यसमाज पुनः वास्तविक धर्म का ध्वजवाहक बन सकता है।

आर्यसमाज ने विराट हिन्दू समाज के समक्ष उपस्थित तथा उसके विशाल ढांचे को जीर्णशीर्ण करने वाली विभिन्न सामाजिक कुप्रथाओं को दूर करने के लिये जो प्रयास किये उनका विहगावलोकन हम कर चुके हैं। यह सत्य है कि हमारा समाज आज उस मोड़ पर पहुंच चुका है जहां से वह उन्नति एवं प्रगति के मार्ग पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे तो बढ़ सकता है किन्तु पीछे हटकर १६ वीं शती के मध्यकाल में पहुंच जाना अब उसके बस का नहीं है। आर्यसमाज ने समाजसुधार के क्षेत्र में जो कार्य किये वे आज सर्व सम्मत हो चुके हैं। अब बालविवाह अतीत की वस्तु हो चुकी है, नारी शिक्षा विवाद का विषय नहीं रहा। पर्दा और अस्पृश्यता के विचार भी समाप्त हो गये। विधवाओं का उत्पीड़न तथा नारी का तिरस्कार एवं शोषण भी अतीत काल की वस्तु बन गये। तथापि अभी तक सामाजिक क्षेत्र में बहुत कुछ करणीय है।

सामाजिक कुप्रथाओं और वर्गगत संकीर्णताओं से चाहे हमें मुक्ति मिली हो, किन्तु समाज में नित नये पाखण्ड, अनाचार, फैशन की अंधी अनुकरण प्रवृत्ति, दहेज के नाम पर भीषण शोषण और अत्याचार आदि की दुष्प्रवृत्तियां बढ़ रही हैं। आज यही सब आर्यसमाज के समक्ष चुनौती के रूप में आ रहे हैं। नवयुवक वर्ग में बढ़ने वाली स्वेच्छाचारिता, उद्दण्डता, अनुशासनहीनता तथा फैशनपरस्ती को कैसे रोका जाय, यह एक बड़ी समस्या है। आज का जनजीवन राजनीति से प्रभाव ग्रहण करता है, किन्तु आज राजनैतिक व्यक्ति जितना आचार-शून्य, कर्त्तव्य विमुख तथा स्वार्थ परायण है, उसे देखते हुए उससे अधिक आशा करना व्यर्थ होगा। अतः आर्यसमाज का दायित्व और भी बढ़ जाता है क्योंकि सार्वजनिक जीवन का शुद्धिकरण आज की प्रमुख आवश्यकता है। जो बात सामाजिक जीवन में आचारगत मूल्यों की पुनः स्थापना को लेकर कही जा सकती है, वही राजनैतिक जीवन पर भी लागू होती है।

भारत की राष्ट्रीय जागृति में आर्यसमाज का जो शानदार योगदान रहा उसकी एक झलक हम देख चुके हैं। परन्तु यह देखकर अत्यन्त खेद होता है कि आज इतिहास लेखन के जो प्रयत्न हो रहे हैं, उनमें जानबूझ कर आर्यसमाज के एतद्विषयक अवदान को घटा कर दिखाया जाता है। राजनैतिक जीवन में जो भ्रष्टाचार, भाईभतीजावाद, कुनबापरस्ती, सिफारिश तथा रिश्वतखोरी का बोल-बाला आज दिखाई दे रहा है, उसके उन्मूलन में यदि आर्यसमाज किसी न किसी रूप में कारगर हो सके तो यह उसकी एक बड़ी उपलब्धि होगी। किन्तु उसके लिये उसे नैतिक मूल्यों की पुनः स्थापना का एक जोरदार अभियान चलाना होगा। यह भी सत्य है कि हमारी आज की सभी राजनैतिक संस्थाएं इतनी दूषित तथा भ्रष्ट हो चुकी हैं कि उनसे कोई आशा नहीं की जा सकती। आर्यसमाज ने अपने अतीत काल में नैतिक उच्चता के जो मानदण्ड स्थापित किये थे उन्हीं को स्मरण कर हम यह आशा कर सकते हैं कि यदि आज के दूषित, विकृत तथा भ्रष्ट सार्वजनिक जीवन को पुनः स्वच्छ बनाने का संकल्प आर्यसमाज के नेता यथा अनुयायी कर लें, तो इसमें उन्हें निश्चय ही सफलता मिलेगी। आर्यसमाज की राष्ट्र के वर्तमान जीवन में एक अन्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमिका यह भी हो सकती है कि साम्प्रदायिकता के विष ने जिस प्रकार हमारे प्रशासन तंत्र को विषाक्त बनाया है, उसे दूर किया जाय। हम नाम तो लेते हैं धर्म-निरपेक्षता का, किन्तु धर्म के नाम पर नाना पाखण्डों, मिथ्या कर्मकाण्डों तथा विद्वेषमूलक धारणाओं का प्रचार करते हमें किंचित मात्र भी लज्जा नहीं आती। आर्यसमाज की दृष्टि में कोई भी राज्य सम्प्रदाय अथवा मत निरपेक्ष तो हो सकता है, किन्तु धर्म के शाश्वत मूल्यों की उपेक्षा करने से कोई लाभ नहीं होगा। आर्य-समाज इस सम्बन्ध में राजा और प्रजा का सही मार्गदर्शन कर सकता है।

राष्ट्रभाषा के प्रचार प्रसार के लिये आर्यसमाज ने जो कार्य किया वह तो इतिहास का एक अमर पृष्ठ बन ही चुका है, किन्तु देश के स्वतंत्र हो जाने के पश्चात् भी हिन्दी को जो उसका वास्तविक स्थान नहीं मिल पाया, यही हमारे लिये चिन्ता का विषय है। राजभाषा के सम्बन्ध में जो आज सरकार की स्थिति तथा अन्य-मनस्कता है, उसे देखते हुए तो यह आशा नहीं की जा सकती कि निकट भविष्य में अखिल राष्ट्र की सम्पर्क भाषा तथा सरकारी कामकाज की अधिकृत भाषा के रूप में हिन्दी अपना स्थान ग्रहण कर लेगी। अतः आज राष्ट्रभाषा आन्दोलन को पुनः प्राणवान् बना कर गति देनी होगी। हमें अब प्रान्तीय भाषाओं के सम्बन्ध में भी अपना मत निश्चित करना होगा, क्योंकि हमारा विरोध विदेशी भाषा अंग्रेजी से तो है किन्तु अपने ही देशकी क्षेत्रीय भाषाओं से नहीं। यह एक सुनिश्चित बात है कि आज भारत के विभिन्न राज्यों का राजकाज तत् तत् प्रान्तों की भाषाओं में चलाए जाने के प्रयत्न हो रहे हैं। अतः समुचित यही होगा कि हम भी अपने साहित्य को प्रान्तीय भाषाओं के माध्यम से प्रकाशित करने के लिये सचेष्ट हों। सत्यार्थप्रकाश तथा ऋषि दयानन्द के अन्यान्य ग्रन्थों का अनुवाद यों तो अनेक स्वदेशी एवं विदेशी भाषाओं में हो चुका है, किन्तु अब प्रचारात्मक साहित्य भी क्षेत्रीय भाषाओं में लिखा जाना आवश्यक है। उधर संस्कृत के प्रचार प्रसार में आर्यसमाज को एक बार पुनः जुट जाना होगा क्योंकि इसीभाषा ने आर्य मनीषा को अभी तक जीवित रखा है और यही भाषा आर्यों के उत्कर्ष, गौरव तथा अस्मिता का प्रतीक रही है।

आर्यसमाज आन्दोलन की वर्तमान स्थिति तथा उसके मार्ग को अवरुद्ध करने वाली परिस्थितियों का सिंहावलोकन करने के पश्चात् हमें देखना होगा कि भविष्य के लिये हमारा दिशा बोध कैसा और किस प्रकार हो जिससे कि हम इस गौरवमय संस्था को सम्मान और आदर की उसी उच्च वेदी पर पुनः प्रतिष्ठित कर सकें जहां वह पहले थी। इस सम्बन्ध में हमारेकुछ रचनात्मक सुझाव हैं जिन्हें संक्षेप मे इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है।

आर्यसमाज मूलतः एक धार्मिक संस्था है जो विश्व मानव के समक्ष धर्म का वास्तविक स्वरूप तथा उस पर आचरण करने का संदेश देती है। वर्तमान परिस्थिति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में उचित होगा कि (१) वैदिक धर्म के मौलिक मन्तव्यों को सारगर्भित, सरल और बोधप्रद भाषा में जनता के सामने प्रस्तुत किया जाये। (२) अन्याय मत सम्प्रदायों की तिक्त एवं कटु शैली में आलोचना करने की अपेक्षा वैदिक धर्म के उदात्त स्वरूप को ही ओजस्विनी और गरिमा मंडित शैली में उपस्थित किया जाय। (३) प्रचलित अंधविश्वासों और हानिकर रुढ़ियों के व्यष्टिगत एवं समष्टिगत दुष्परिणामों को उजागर अवश्य किया जाय तथा उनकी अवैज्ञानिकता एवं उनसे उत्पन्न हानियों से लोगों को परिचित कराया जाय।

जहाँ तक सामाजिक समस्याओं का प्रश्न है इस सम्बन्ध में आर्यसमाज निम्न कार्य कर सकता है : –

(१) जन्माधारित जाति प्रथा के दोषों को प्रकट करते हुए गुण, कर्म पर आधारित वर्ण व्यवस्था के महत्त्व को प्रतिपादित किया जाना चाहिए। आर्य बिरादरी की चर्चा तो भूतकाल में भी हुई थी किन्तु वास्तविक 'आर्यसमाज' के निर्माण का कार्य नहीं हो सका। आज आर्यसमाज मन्दिर में तो हम आर्य हैं, किन्तु वहां से बाहर निकलते ही खत्री, कायस्थ, अग्रवाल, जाट और स्वर्णकार हो जाते हैं।

(२) अस्पृश्यता को समाप्त करने तथा दलित जातियों, बनवासी समाज तथा पिछडे वर्ग के उत्थान का रचनात्मक कार्यक्रम बनाना आवश्यक है। आज इन वर्गों के लोगों को संसद् तथा विधान सभाओं में आरक्षित स्थानों पर बिठाना तथा सरकारी सेवाओं में आरक्षित स्थान दिलाना ही आवश्यक नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि इस वर्ग में प्रचलित बुराइयों का समूल उत्सादन किया जाय। नशाखोरी, जुवा, अस्वच्छता, मांसभक्षण आदि की बुराइयों से इन्हें पृथक् कर सभ्य-समाज का अंग बनाने हेतु प्रयत्न किये जाने चाहिए।

(३) नारी समाज में सांस्कृतिक जागरण लाना आवश्यक है। यों तो भारतीय नारी शिक्षा, जीविकोपार्जन तथा अन्य क्षेत्रों में पुरुष वर्ग के समक्ष आ गई है, किन्तु इन्हीं कारणों से उनमें जो पश्चिम की अनुकरण वृत्ति, फैशनपरस्ती तथा आधुनिका (Ultra Modern) बनने की प्रवृत्ति पनपने लगी है, उसे दूर कर भारतीय नारी की गरिमा प्रदान की जानी चाहिए। इसके लिये नारी के समक्ष भारतीय संस्कृति का गरिमा पूर्ण चित्र उपस्थित किया जाना चाहिए।

(४) सामाजिक कुरीतियों के उच्छेदन के लिये अत्यन्त जागरूकता के साथ प्रयास किये जाने चाहिएं। विवाह तथा अन्य समारोहों में भारी अपव्यय, दहेज आदि का आग्रह, नवयुवा वर्ग में मदिरा तथा अन्य मादक पदार्थों का सेवन, धूम्रपान की बढ़ती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई प्रवृत्ति के निवारण के लिये सशक्त अभियान चलाने आवश्यक हैं। इन कार्यक्रमों में युवा पीढ़ी का सहयोग लेना भी आवश्यक है।

(५) सर्वोपरि बात तो चरित्र निर्माण की है। हमें यह स्मरण रखना होगा कि आर्यसमाज के प्रारम्भिक युग के आर्यपुरुषों को जो सफलता मिली, उसका प्रमुख कारण उनका उदात्त एवं आदर्श चरित्र ही था। एक आर्य की साक्षी से ही न्यायाधीश को अपना निर्णय देने में कोई कठिनाई नहीं होती थी। आज का नागरिक चरित्र-संकट से ग्रस्त है। इसे उबारना ही राष्ट्र की सबसे बड़ी सेवा है।

जहां तक राजनैतिक क्षेत्र में देश को मार्गदर्शन देने का प्रश्न है, आर्यसमाज को यह स्मरण रखना होगा कि भारत में प्रजातांत्रिक पद्धति की चर्चा का सूत्रपात सर्वप्रथम स्वामी दयानन्द ने ही किया था। उन्होंने आर्यसमाज के विधान को भी प्रजातन्त्र का आधार प्रदान किया तथा अपने राजनैतिक विचारों की मीमांसा करते समय यह स्पष्ट कर दिया कि एकतंत्री शासन की अपेक्षा जन भावनाओं का प्रतिनिधित्व करने वाला उत्तरदायी शासन कहीं अधिक श्रेष्ठ होता है। परन्तु आज की राजनीति में छल, कपट, धूर्तता तथा चरित्र हनन आदि की जो बुराइयां आ गई हैं उनके निवारण के लिये जन-मत को जगाना आवश्यक है। प्रजातंत्र की प्रणाली चाहे कितनी ही अच्छी तथा श्रेयस्कर क्यों न हों, वह कदापि सफल नहीं हो सकती, यदि हम उसका दुरुपयोग करने पर उतारू हो जायें। आर्यसमाज स्वयं भी प्रजातन्त्र के दुरुपयोग के परिणाम भोग रहा है। आज हमारी सभाओं में विद्वान्, बुद्धिमान् और विचारशील व्यक्ति की अपेक्षा उसी व्यक्ति का आदर होता है जो अपने पक्ष में अधिक से अधिक लोगों का समर्थन जुटा लेता है। यही कारण है कि आज आर्यसमाज में त्यागी, तपस्वी संन्यासियों की अपेक्षा गुटबंदी करने वाले नेताओं का ही प्राधान्य है।

दूसरी बात और भी महत्त्वपूर्ण है। हमें आर्यसमाज को शासक दल या अन्य किसी राजनैतिक दल का दुमछल्ला नहीं बनाना है। प्रायः देखा गया है कि हम अपने सम्मेलनों, उत्सवों तथा समारोहों में राजनीतिज्ञों, मंत्रियों तथा प्रशासकों की उपस्थिति से अधिक प्रसन्नता अनुभव करते हैं। मंत्रियों के स्वागत सत्कार में कभी कभी तो इतने मग्न हो जाते हैं कि हमें अपने ही विद्वानों और संन्यासियों को यथोचित आदर देने का भी ध्यान नहीं रहता। हमें स्मरण रखना होगा कि आर्यसमाज ने सच्चे ब्राह्मण-समाज के मार्गदर्शक का कर्त्तव्यभार ग्रहण किया है। वह उन राजनीतिज्ञों और स्वार्थी पार्टीबाज व्यक्तियों का पिछलग्गू नहीं हो सकता, जिनके लिये येन केन प्रकारेण सत्ता प्राप्त करना ही अन्तिम लक्ष्य होता है। इसलिये आर्यसमाज को चाहिए कि वह अपने आचरण एवं उपदेश के द्वारा राजनैतिक जीवन में उच्चतर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल्यों की स्थापना के लिये प्रयत्न करे। राजनैतिक भ्रष्टाचार, शोषण और अत्याचार को रोकने के लिये यदि उसे सत्याग्रह तथा बलिदान भी करने पड़ें, तो इसके लिये उसे तत्पर रहना चाहिए।

आज का युग अर्थप्रधान है। उन्नीसवीं शताब्दी के महान् तत्त्वचिंतक तथा स्वामी दयानन्द के समकालीन कार्ल मार्क्स ने अर्थ को ही मनुष्य की समस्त प्रवृत्तियों का मूल तथा उसकी गतिविधियों का केन्द्रबिंदु बताया था। प्राय: लोगों को आर्यसमाज से यह शिकायत रही है कि उसने अपनी आर्थिकनीतियों को कभी स्पष्टरूप से लोगों के समक्ष नहीं रखा। आज के युग में पूंजीपति तथा श्रमिक वर्ग का संघर्ष, आर्थिक दृष्टि से पीड़ित एवं शोषित वर्ग की हितरक्षा, वृहत्, उद्योगों का राष्ट्रीयकरण आदि ऐसी समस्याएं हैं जिनके बारे में आर्यसमाज को अपना स्पष्ट मत बनाना चाहिए। नीतिज्ञ विदुर ने आर्थिक समस्याओं के समाधान में एक सूत्र प्रस्तुत करते हुए कहा था कि जो व्यक्ति धनोपार्जन करके भी लोकहित में व्यय नहीं करता वह समाज में रहने का भी अधिकारी नहीं है। इसी प्रकार जो व्यक्ति अपनी दरिद्रता का तो ढोल पीटता है, किन्तु श्रमकणों से अपने शरीर को सिंचित नहीं करता, अर्थात परिश्रम नहीं करता, वह भी समाज में जीने का अधिकार नहीं रखता। इस प्रकार दान आर परिश्रम के समन्वय से ही आर्थिक स्थितियों को अनुकूल बनाया जा सकता है।

आर्यसमाज को समयानुसार अपनी प्रचारप्रणाली में भी परिवर्तन करना चाहिए। जो प्रचारक ग्रामीण जनता के हित की बात कह सकता है वह नागर जनों के लिये भी उपयोगी हो, यह आवश्यक नहीं है। अत: प्रचार प्रणाली में देश, काल, पात्र और परिस्थिति के अनुरूप परिवर्तन करना ही होगा। नगरों में जो व्याख्यान आयोजित किये जायें, उनमें वकील, डाक्टर, प्राध्यापक, छात्र, पत्रकार आदि विभिन्न व्यवसायों के प्रबुद्ध लोगों को आमंत्रित किया जाना चाहिए। व्याख्यानदाताओं को इस बात की हिदायत दी जानी चाहिए कि वे अपने विषय को पूर्ण तैयारी के साथ प्रस्तुत करें। व्याख्यानों में मण्डनात्मक शैली को स्वीकार करते हुए भी अंधविश्वासों, पाखण्डों तथा मिथ्याचारों पर चोट करने में संकोच नहीं करना चाहिए। वैदिक-राजनीति, वैदिक अर्थनीति और वैदिक समाजनीति की स्पष्ट व्याख्या प्रस्तुत किये जाने वाले व्याख्यानों को वरीयता देनी चाहिए। प्रचार में संगीत का महत्त्व निर्विवाद है। उच्चकोटि के शिक्षाप्रद भजनों को संगीत की विविध रागरागिनियों के माध्यम से प्रस्तुत कर श्रोताओं को रससिक्त एवं आनन्द विभोर किया जा सकता है। गान और व्याख्यान को एक साथ प्रस्तुत करना अधिक लाभप्रद नहीं होता, इसका ध्यान रक्खा जाना आवश्यक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपदेश प्रणाली में यथेच्छ सुधार एवं परिवर्तन तो तभी आ सकता है जब कि आर्यसमाज में उपदेशकों के प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था हो। यह स्मरणीय है कि आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब ने दयानन्द उपदेशक विद्यालय के द्वारा जिन उपदेशकों को प्रशिक्षित किया, अथवा उससे भी पूर्व पं० भोजदत्त आर्य मुसाफिर ने आगरे में आर्य मुसाफिर विद्यालय के संचालन के द्वारा शास्त्रार्थ विद्या निष्णात, तार्किक, वाग्मी तथा विभिन्न मत सम्प्रदायों के विशेषज्ञ उपदेशक तैयार किये, उसी प्रकार के उपदेशकों का शिक्षण होना आवश्यक है। इसमें हमें ईसाई प्रचारकों की कार्य पद्धति को भी देखना होगा।

आर्यसमाज ने अपने अतीत काल में जो लोकप्रियता अर्जित की थी, उसका एक प्रमुख कारण था जन सेवा। महामारी, भूकम्प, दुष्काल आदि आकस्मिक विपदा ग्रस्त लोगों को उबारने के लिये आर्यसमाज के दीवानों ने सेवाधर्म का जैसा प्रदर्शन किया, उसी के कारण जनता इसकी ओर आकृष्ट हुई थी। आज उसी सेवा-भावना को पुनः जागृत करना आवश्यक है। कतिपय अन्य सुझाव संकेत रूप में ही दिये जाते हैं :—

१ हमें अपने साप्ताहिक और वार्षिक अधिवेशनों को अधिक रोचक, उपयोगी तथा लोकप्रिय बनाना होगा।

२. आर्यसमाज मंदिरों को स्वच्छ, सुन्दर, आकर्षक तथा रम्य बनाना चाहिए ताकि वहाँ जाने मात्र से ही लोगों में धर्म एवं आध्यात्मिकता के उच्च भाव जागृत हो सकें।

३. आर्यसमाज के वानप्रस्थ एवं संन्यासी वर्ग को संगठित कर सेवा कार्य में नियोजित किया जाय।

४ वैचारिक क्रान्ति के लिये स्तरीय साहित्य का प्रकाशन हो तथा शोध संस्थानों के द्वारा दयानन्द के विचारों तथा उनके क्रान्तिकारी दर्शन पर अनुसंधान कार्य कराये जायें।

५. युवाशक्ति को आर्यसमाज की ओर आकृष्ट करने के लिये तदनुरूप कार्यक्रम आयोजित किये जायें। एतदर्थ आर्यकुमार सम्मेलन के आन्दोलन को पुनरुज्जीवित करना तथा उसी के माध्यम से धार्मिक परीक्षाओं का संचालन किया जाना चाहिए।

६. यज्ञों, संस्कारों और पर्वों को पूर्ण शालीनता तथा शास्त्रीय विधि के अनुसार सम्पन्न करना चाहिए ताकि उसका प्रभाव दर्शक वर्ग पर भी पड़े।

उपर्युक्त पंक्तियों में हमने आर्यसमाज के अतीत और वर्तमान की ओर देखने का प्रयास तो किया ही है, साथ ही उसके भविष्य के लिये कुछ समयोचित सुझाव भी दिये हैं। इन्हें समुचित विचार के पश्चात् क्रियान्वित किया जाना चाहिए।

—०००—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानन्द सरस्वती के सिद्धान्त—समय की कसौटी पर

किसी भी महापुरुष के विचारों का अध्ययन उसके जीवनयापन की प्रणाली, शिक्षा, संस्कार तथा उसके मानस पर पड़े प्रभावों की पृष्ठभूमि में किया जाना ही समीचीन होता है। इस दृष्टि से दयानन्द जैसे युगपुरुष एवं विश्वमानव की विचार-सम्पत्ति की विवेचना आरम्भ करने से पूर्व यह ध्यान रखना होगा कि उन्होंने अपने जीवन का बहुलांश एक संन्यासी के रूप में जो व्यतीत किया था सांसारिक मोहजालों से सर्वथा मुक्त होकर निर्द्वन्द्व भाव से विचरने में ही अपने जीवन की सार्थकता नहीं समझ बैठा है, किन्तु जो समष्टि हित तथा समस्त प्राणिवर्ग के मंगलविधान के लिये ही पदे-पदे चिन्तित रहता है, व्याकुलता प्रकट करता है तथा अशेष जन समाज की पीड़ा, दुःख एवं कष्टों के निवारण के लिये सतत प्रयत्नशील भी रहता है।

दयानन्द सरस्वती का जन्म भारत के एक ऐसे ब्राह्मण परिवार में हुआ था जो अपनी धार्मिक आस्थाओं एवं सामाजिक विधि-विधानों की परम्परानुमोदित व्यवस्थाओं के कठोरता पूर्वक पालन में ही अपने कर्त्तव्यों की इति श्री समझता था। उनका शैशवकालीन पालन पोषण तथा प्रारम्भिक शिक्षा भी परम्परागत ढंग से हुई जिसमें साम्प्रदायिक विश्वासों को यथावत् ग्रहण करने तथा पूजा उपासना के रूढ़ि-बद्ध इतिकर्त्तव्यों के कड़ाई से पालन पर ही निरन्तर जोर दिया जाता था। तथापि इसे चमत्कार ही कहा जायेगा कि मध्यकालीन धर्म एवं आस्थाओं के जटिल संकुल वातावरण में जन्म लेकर व पलकर भी दयानन्द सरस्वती इन्हीं क्षेत्रों में सर्वाधिक क्रान्तिकारी तथा प्रबुद्ध चिन्तन को उत्पन्न करने में सफल हो सके।

दयानन्द का जन्म उस युग में हुआ जबकि भारत का जन-मानस पश्चिम की विद्या, बुद्धि, विज्ञान एवं तर्कयुक्त चिन्तन के सम्पर्क में आकर यह समझ पाने में असमर्थ हो रहा था, कि इस नव-चेतना को वह किस रूप में व किस प्रकार ग्रहण करे ? क्या पश्चिमी जीवन पद्धति को समग्रतः अंगीकार कर लेना उसकी निजी अस्मिता एवं पहचान की समाप्ति की घोषणा तो नहीं होगा ? कुछ इसी प्रकार के संकल्प-विकल्प भारतीय मानस को झकझोर रहे थे, उद्वेलित कर रहे थे। भारतीय नव-जागरण का आरम्भ तो दयानन्द के जन्म की तिथि के आस-पास से ही माना जा सकता है, जबकि आधुनिक भारत के पिता तुल्य राममोहन राय धर्म, समाज तथा देश के व्यापक संदर्भों में विभिन्न सुधारवादी चेष्टाओं में संलग्न थे। इतिहासकारों ने दयानन्द के विचारों, कार्यों तथा उनकी उपलब्धियों को भी भारतीय नव-जागरण के इतिहास से जोड़ा है। आपाततः इसमें कोई आपत्ति जैसी बात नहीं है, किन्तु यह ध्यान रखना होगा कि पुनरुत्थान के अन्य ज्योतिर्धरों एवं उन्नायकों ने जहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्चिमी शिक्षा, यूरोपीय चिन्तन तथा विचारधाराओं से प्रेरणा ग्रहण की, वहाँ दयानन्द को पश्चिम का, किसी भी प्रकार से संस्पर्श तक प्राप्त नहीं था। वे जिस पारिवारिक वातावरण में पले, सामाजिक वातावरण में बढ़े तथा परम्परागत संस्कृत-शास्त्रों के अध्ययन करने का उन्हें जैसा अवसर मिला, उससे पश्चिमीकरण का लेश मात्र भी सम्पर्क नहीं था। अतः दयानन्द के उदाहरण से ही हमें पश्चिमी संस्कृति के रंग में रंगे उन लोगों द्वारा प्रचारित इस मिथ को तोड़ देना होगा कि भारत के जन-जागरण का एक मात्र श्रेय, अंग्रेजी शिक्षा एवं पश्चिमी विचारधारा के प्रचलन को ही है। यह भी एक संयोग ही था कि दयानन्द को छोड़ कर राममोहन राय से लेकर गांधी पर्यन्त नवोत्थान के नेता अंग्रेजी शिक्षा एवं रीति-नीति से सुपरिचित थे। अकेले दयानन्द ही एक ऐसे अपवाद हैं, जो सर्वप्रकारेण पुरातन संस्कृत शास्त्रों में निष्णात होकर भी सर्वथा प्रगतिशील, सामयिक तथा समाज को उन्नति के मार्ग पर ले चलने में समर्थ कार्यक्रम प्रस्तुत कर सके।

इसी संदर्भ में दयानन्द के वेद विषयक विचारों से परिचित होना सर्वथा उचित माना जायगा। दयानन्द वेद को ज्ञान का पर्याय मानते हैं और उनकी दृढ़ धारणा है कि सृष्टि के प्रारम्भ काल में ही मनुष्य को कोई ऐसा ज्ञान अवश्य प्राप्त हुआ था, जो देश, काल एवं व्यक्ति,निरपेक्ष होने के कारण निखिल मनुष्य समाज के लिये उपयोगी, लाभप्रद तथा उन्नति का हेतु था। इसी मूल धारणा को लेकर वे भारत के बृहत्तर आर्यसमाज में प्रचलित इस विचार की सोपपत्तिक मीमांसा प्रस्तुत करते हैं कि मनुष्य मात्र के हित की दृष्टि से प्रदत्त ऐसा ज्ञान वस्तुतः ईश्वरीय ज्ञान ही हो सकता है, उसे किसी पुरुष विशेष की कृति नहीं कहा जा सकता। यह दूसरी बात है कि सहस्राब्दियों प्राचीन इस ज्ञान की गरिमा को आज हम विस्मृत कर बैठे हों।

दयानन्द ने अपने वेद विषयक विचारों को स्वकीय ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर न केवल सूत्रित ही किया है, किन्तु अनेकत्र उनकी विशद व्याख्या एवं विवेचना भी की है उन्होंने वेदों की नित्यता, अपौरुषेयता तथा उनके सर्वज्ञानमयत्व की स्थापना उसी प्रकार की है, जो भारतीय परम्पराओं में सर्वथा अनुमोदित एवं स्वीकृत रही है। तथापि दयानन्द की वेद-विषयक व्याख्या एवं विवेचना को ही इस बात का श्रेय है कि वेदों पर किये जाने वाले आक्षेपों एवं आपत्तियों का सतर्क उत्तर भी इसी प्रकार की व्याख्या प्रणाली से दिया जाना सम्भव है। यहाँ किञ्चित् विस्तार में जाकर दयानन्द के वेद विषयक विचारों की आलोचना करना अनुपयुक्त न होगा।

दयानन्द ने वेद के नित्यत्व, अपौरुषेयत्व अथवा ईश्वर-कर्तृत्व आदि से सम्बन्धित जो विचार प्रस्तुत किये, उनसे मोटे तौर पर भारतीय परम्परा के किसी भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदार्थ चिन्तक अथवा वेदाभ्यासी विद्वान् की असहमति नहीं है। तथापि प्रायः यह आक्षेप किया जाता रहा है कि दयानन्द की वेदार्थ प्रणाली उन भाष्यकारों द्वारा मान्य पद्धति को स्वीकार कर नहीं चलती, जिसका अनुसरण करते हुए भाष्यकार सायण आदि ने वेद भाष्य लिखे हैं। परन्तु यहाँ भी दयानन्द के विचारों में किसी प्रकार का कोई दुराव, छिपाव या विप्रतिपत्ति नहीं हैं। वे यह स्पष्ट घोषणा करते हैं कि सायणादि के भाष्य तो उस युग में लिखे गये थे जबकि वेदार्थ-चिन्तन की सर्वाधिक प्राचीन-प्रणाली, जो स्वयं वेद के रचनाकाल के अत्यन्त निकट की रही होगी, प्रायः नष्ट ही हो गई थी तथा उस युग में भाष्यकार यह मान कर चलता था कि वेद मन्त्रों की रचना किसी न किसी कर्म विशेष की सिद्धि के लिये ही हुई है। यह भी कि कर्म विशेष का संकेत देने तथा उनकी कार्यविधि को बतलाने के अतिरिक्त उस मंत्र का कोई अन्य प्रयोजन नहीं है।

दयानन्द इस प्रकार के याज्ञिक अर्थों को पूरे तौर पर चुनौती भी नहीं देते। वेद मनुष्य के लिये हितकारक कर्मकाण्ड के प्रयोजक हैं, मन्त्रों का विनियोजन मानव-कल्याण के लिये किये जाने वाले क्रियाकाण्डों से होना चाहिए, इस धारणा से सिद्धान्ततः सहमत होते हुए भी वे यह स्वीकार नहीं करते कि मन्त्रों की रचना या उनका दर्शन, मात्र कर्मकाण्ड की सिद्धि के लिये ही हुआ था। उनकी धारणा है कि यदि वस्तुतः वेदों को ईश्वरीय ज्ञान के रूप में हम स्वीकार करते हैं तो उनमें प्रतिपादित विचार नितान्त उदार, व्यापक, प्राणिमात्र के लिये हितकारक तथा सन्मार्ग प्रेरक होने चाहिएं। इसी आधार पर वे वेद मन्त्रों के मुख्यतः पारमार्थिक तथा व्यावहारिक, अन्य शब्दों में आध्यात्मिक तथा वैज्ञानिक और विभिन्न विद्या तत्त्वों के प्रतिपादित अर्थों के पक्षपोषक हैं।

दयानन्द के वेदार्थ-चिन्तन में अनेक युगान्तरकारी विचार एवं धारणायें प्रतिफलित हुई हैं। उन्होंने वेदवादियों में प्रचलित इस धारणा का प्रबल खण्डन किया कि मन्त्र सहिताओं की ही भांति ब्राह्मण ग्रन्थों को भी वेद संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है। चाहे मध्यकाल के सूत्रकारों तथा वेदाभ्यासियों में यह विचार बद्ध मूल ही क्यों न रहा हो कि मन्त्रों के ही तुल्य ब्राह्मण भाग का भी प्रामाण्य स्वीकार किया जाना चाहिए, किन्तु दयानन्द अपनी सुचिन्तित विचारसरणि के आधार पर यह स्पष्ट कर देते हैं कि मन्त्र भाग और ब्राह्मण भाग को एक ही स्तर पर नहीं रखा जा सकता। निश्चय ही ब्राह्मण ग्रन्थ वेदों के व्याख्यान होने से वेदार्थ के मुख्य सहायक ग्रन्थों की कोटि में तो अग्रणी स्थान रखते हैं, किन्तु मनुष्य बुद्धि रचित होने से उनका महत्त्व वेदों से न्यून ही होगा। इस प्रकार वेद संज्ञा का पुनर्निधारण कर दयानन्द ने वैदिक अध्ययन को एक नवीन दिशा प्रदान की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब हम यह मान लेते हैं कि वेदों का प्रणयन या वेद-ज्ञान का प्रकाश मानव जाति के व्यापक हित की दृष्टि से किसी अद्वितीय सत्ता ने किया है, तो इस ज्ञान को प्राप्त करने का अधिकार भी मनुष्य मात्र को स्वतः ही मिल जाता है। यह एक विडम्बना ही थी कि जिस वेदज्ञान का दर्शन और प्रचार विभिन्न वर्गों, वर्णों, लिंगों तथा श्रेणियों के लोगों ने किया तथा मन्त्रों में निहित शिक्षाओं को मनुष्य मात्र के लिये हितकारी माना, उसी वेद के अध्ययन, चिन्तन तथा मनन पर मध्यकाल की प्रतिगामी शक्तियों ने नाना प्रकार के प्रतिबन्ध लगा दिये। इतिहास इस बात का साक्षी है कि वेदाध्यन पर इस प्रकार के प्रतिबन्ध मध्यकाल के उसी तमसाच्छन्न युग में लगाये गये थे, जबकि वेदों को वर्ग विशेष की सम्पत्ति समझा गया तथा अन्य वर्ग या वर्ण के लोगों को उससे वंचित कर दिया गया। दयानन्द जैसे उदारभावापन्न एवं मनुष्य मात्र की एकता में विश्वास रखने वाले महापुरुष के लिये तो यह स्वाभाविक ही था कि वे वेदाध्ययन पर लगे इन प्रतिबन्धों का डट कर विरोध करते तथा इस दैवप्रदत्त 'कल्याणी वाणी' के अवरुद्ध प्रवाह को लोक हित की दृष्टि से खोल देते।

दयानन्द से पूर्व का वैदिक चिन्तन कितना रूढ़िबद्ध, जड़ तथा विवेकबुद्धि रहित हो गया था, इसके विषय में तो इतना लिख देना ही पर्याप्त होगा कि यों तो मध्यकालीन सभी दार्शनिकों, मीमांसकों तथा धर्माचार्यों ने वेद के नित्यत्व, ईश्वर-कर्तृत्व तथा उसके सर्वोपरि प्रामाण्य की स्थापना में अपनी सूक्ष्मतम बौद्धिक शक्तियों को भी लगा दिया था, परन्तु जिन वेदों की प्रामाणिकता का वे इतनी दृढ़ता से समर्थन कर रहे हैं, स्वयं उन वेदों में क्या कुछ लिखा है, पाठक समुदाय के लिये उसका क्या उपयोग है, इससे वे नितान्त अनभिज्ञ ही रहे। दयानन्द के वेद विषयक मन्तव्यों की सर्वोपरि विशेषता यही है कि वे इन्हें न केवल सत्य विद्याओं का ग्रन्थ ही घोषित करते हैं, अपितु उनका अध्ययन, अध्यापन पठन-पाठन एवं मनन-चिन्तन मानव जाति के लिये नितान्त उपयोगी तथा आवश्यक है यह भी घोषित करते हैं। दयानन्द के काल में ही पश्चिमी विद्वानों का ध्यान भी वेदों की ओर आकृष्ट हो चुका था। अनेक यूरोपीय विद्वान् वेदों के अध्ययन, वेदविषयक ग्रन्थों के लेखन, वेदों के पाठ-सम्पादन आदि कार्यों में लगे हुए थे। यद्यपि दयानन्द किसी भी यूरोपीय भाषा की अभिज्ञता नहीं रखते थे, तथापि वे येन केन प्रकारेण वेदाभ्यास की इस पाश्चात्य प्रणाली से अपने को परिचित रख रहे थे। तुलनात्मक भाषा विज्ञान, नृतत्त्वविज्ञान, समाज शास्त्र तथा देवगाथावाद के आधार पर पश्चिमी वेदज्ञों का वेदाध्ययन विषयक यह प्रयास चाहे उनके विद्या व्यासंग को कितना ही सूचित करे, यह भी स्पष्ट है कि इन नवीन प्रणालियों से वेद के हार्द को समझना उनके लिये सम्भव न था। दयानन्द ने पाश्चात्य विद्वानों के वेदविषयक कार्यों का मूल्यांकन कर यह सुविचारित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्णय दिया कि इन वेदज्ञों का वेदाध्ययन तो अभी प्रारम्भिक स्थिति में ही है। प्राचीन ऋषि मुनियों ने अपने सहज ज्ञान तथा ऋतम्भरा प्रज्ञा के बल पर वेदमहोदधि का मन्थन कर जिन रत्नों को अनायास ही प्राप्त कर लिया था, उन्हें प्राप्त करने में तो इन्हें बहुत समय लगेगा।

यह तो सत्य है कि अनेक कारणों से दयानन्द द्वारा अन्वेषित वेदार्थ पद्धति को यथोचित मान्यता तथा आदर प्राप्त नहीं हुआ। इसमें जहाँ पश्चिमी वेद-विदों द्वारा आविष्कृत वेदार्थ की प्रणालियों का अंधानुकरण करने वाले भारतीय विद्वानों का पूर्वाग्रह युक्ति दृष्टिकोण एक बड़ा कारण रहा है, वहाँ यह भी स्वीकार करना होगा कि भारत के वेदाभ्यासियों का दल भी परम्परागत याज्ञिक शैली की मूढ़ कारा से अपने को मुक्त नहीं करा सका है। फलत: दयानन्द कृत वेदार्थ को अपेक्षित प्रशस्ति प्राप्त नहीं हुई। तथापि यह निश्चित है कि वेदार्थ को स्पष्ट करने में दयानन्द ने जिस दिशा का संकेत किया है, अन्ततः उस ओर आये बिना हम संसार के इस प्राचीनतम वाङ्मय के अभिप्राय को भलीभांति हृदयंगम नहीं कर सकेंगे।

धार्मिक विषयों के ऊहापोह में भारतीय परम्परा शास्त्रीय प्रामाण्य को सर्वाधिक महत्त्व देती है। इसका कारण प्राचीन ग्रन्थों में मात्र विश्वास भाव ही नहीं है, किन्तु हमारी यह मान्यता है कि जिन परावरज्ञ ऋषियों ने इन ग्रन्थों का निर्माण किया था, वे महामेधा सम्पन्न, विमल ज्ञान के भण्डार तथा लोकहित को दृष्टिपथ में रख कर शास्त्र रचना करने वाले व्यक्ति थे। कालान्तर में एक ऐसा युग भी आया, जबकि सामान्य बुद्धि के लोगों ने शास्त्र प्रणेता कहलाने की इच्छा से अनेक ग्रन्थों की रचना कर डाली। परवर्ती युग के इस ग्रन्थ समुदाय में कहीं भी वैचारिक निर्मलता. शैली की उदात्तता तथा दृष्टिकोण की विशदता के दर्शन नहीं होते। इसके विपरीत इन ग्रन्थों में मनुष्य के चिन्तन की जड़ता, उसकी गतानुगतिक दृष्टि तथा प्रगतिशील शक्तियों को अवरुद्ध करने का मनोभाव ही प्रकट होता है। शताब्दियों के पश्चात् शास्त्र नाम से अभिहित किये जाने वाले ग्रन्थों की प्रामाणिकता तथा उनकी गुणवत्ता का निर्धारण करने का अवसर उस समय आया जबकि मथुरा की संस्कृत पाठशाला में व्याकरण का शिक्षण करने वाले एक प्रज्ञाचक्षु संन्यासी दण्डी विरजानन्द ने यह स्पष्ट किया कि अब समय आ गया है जब कि हमें आर्ष एवं अनार्ष शास्त्रों में भेद करना होगा और अनार्ष ग्रन्थ जाल से मुक्ति पानी होगी। विरजानन्द ने आर्ष ग्रन्थों और अनार्ष ग्रन्थों में विवेक करने के अनेक सूत्र प्रस्तुत किये थे, परन्तु उनकी एतद् विषयक सर्वोपरि स्थापना यही थी कि आर्ष ग्रन्थों में जहाँ सार्वभौम भाव परिलक्षित होते हैं, वहाँ अनार्ष ग्रन्थ साम्प्रदायिक विद्वेष एवं मताग्रह की संकीर्णता से युक्त होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी विरजानन्द के आर्ष ग्रन्थ प्रमाणवाद के इसी सूत्र को लेकर दयानन्द ने अपना स्पष्ट मत व्यक्त किया कि धर्म, अध्यात्म, दर्शन, कर्मकाण्ड —प्रत्येक क्षेत्र में आर्ष ग्रन्थों को ही मान्यता देनी होगी, क्योंकि यही वे ग्रन्थ हैं जो सब प्रकार के साम्प्रदायिक भावों से सर्वथा असंपृक्त, मानव के व्यापक हित की दृष्टि से युक्त तथा मनुष्य के विवेक तथा बुद्धिवाद को जागृत करने वाले हैं, जबकि अनार्ष ग्रन्थों की रचना तो मनुष्य की चिन्तन शक्ति को कुण्ठित करती है तथा उसे मानसिक जड़ता, प्रतिगामिता तथा रूढ़िवादिता का शिकार बनाती है। देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय के शब्दों में "विगत पाँच हजार वर्षों की अवधि में इस आर्य भूमि में अनेक आचार्यों का प्रादुर्भाव हुआ परन्तु उनमें से कोई भी ऋषि महर्षि प्रवर्तित ज्ञान के पुनरुद्धार में अपना योगदान नहीं कर सका। शंकर, रामानुज एवं मध्व आदि जितना परिश्रम अपने अपने सम्प्रदायों के संगठन में किया उतना आर्ष ज्ञान के पुनरुद्धार में नहीं।" यह श्रेय दयानन्द को ही जाता है कि संस्कृत भाषा में निबद्ध तथा शास्त्र नाम से प्रसिद्ध विशाल ग्रन्थ समुदाय की सम्यक् परीक्षा के अनन्तर उन्होंने यह स्पष्ट घोषणा की—अब समय आ गया है जब कि 'बाबा वाक्यं प्रमाणम्' को छोड़ कर हमें आर्ष एवं अनार्ष का विवेक करना होगा तथा यह देखना होगा कि वे ग्रन्थ कौन से हैं जो हमें उन्नतिगामी बनाते हैं, जो हमारी बुद्धि एवं विचार शक्ति का विकास करते हैं, हमारी मनोवृत्तियों को निर्मल एवं पवित्र बनाते हैं तथा हमें अभ्युदय एवं निश्रेयस के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं। ऐसे ही ग्रन्थ हमारे लिये पठनीय एवं विचारणीय हैं। संस्कृत भाषा में लिखे होने मात्र से ही कोई ग्रन्थ प्रामाण्य कोटि में नही आ जाता।

वेद प्रामाण्य और आर्ष ग्रन्थों की वरीयता का सिद्धान्त स्वीकार कर लेने के पश्चात् दयानन्द के लिये यह अत्यन्त सहज हो गया था कि धर्म के नाम पर प्रचलित उन सहस्रों मिथ्या रूढ़ियों, जटिल कर्मकाण्डों, अन्धविश्वासों तथा मूढ़ धारणाओं का वे प्रबल प्रतिवाद करते, जो वैदिक धर्म में स्वीकृत उच्च आध्यात्मिक विश्वासों, उदात्त उपासना पद्धतियों तथा प्राणिमात्र के हित के लिये प्रवर्तित क्रियाकाण्डों के स्थान पर प्रचलित हो गये थे।

दयानन्द के द्वारा किये गये धर्म के नाम पर प्रचलित मिथ्या विश्वासों के प्रबल खण्डन को लक्ष्य में रखकर प्रायः लोग उन्हें संकुचित दृष्टि युक्त, अनुदार भावापन्न, अन्य सम्प्रदायों के प्रति द्वेषबुद्धि रखने जैसे लांछन भी लगा बैठते हैं। निश्चय ही दयानन्द ने जिसे असत्य समझा, जिसे अन्याय युक्त माना तथा जिसे अधर्म कहा, उसका तीव्र खण्डन करने में उन्होंने कभी संकोच नहीं किया। परन्तु उनका यह खण्डन-कुठार उसी वस्तु या विचार पर गिरता था, जो मानव जाति के लिये हानिकारक,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी एकता का विनाशक तथा उसे पतन की ओर ले जाने वाला होता था। (खेद है कि खण्डन मण्डन में प्रयुक्त दयानन्द की तथ्य पूर्ण, साथ ही बिना किसी लाग-लपेट वाली भाषा के अभिप्राय को न समझ कर उन्हें कटुभाषी, खण्डन-पटु आदि न जाने क्या क्या कह दिया जाता है) खण्डन-मण्डन की प्रयोजनीयता का उल्लेख करते हुये दयानन्द ने अपने विख्यात ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' की भूमिका तथा इसके उत्तरार्द्ध के प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में लिखी गई अनुभूमिकाओं में यह स्पष्ट कर दिया है कि उनका मुख्य प्रयोजन सत्य अर्थ का प्रकाश करना है। अर्थात् जो जो सब मतों में सत्य सत्य बातें हैं, वे-वे सब में अविरुद्ध होने से, उनका स्वीकार करके जो जो मत-मतान्तरों में मिथ्या बातें हैं, उनका खण्डन किया है। वस्तुतः दयानन्द की दृष्टि में धर्म तो एक ही है। ऐसा धर्म जो वस्तु का स्वभाव होने के कारण सर्वथा अखण्डनीय ही होता है। अतः सच्चे धर्म का तो खण्डन हो ही नहीं सकता। दयानन्द ने तो विभिन्न सम्प्रदायों में प्रचलित अंधविश्वासों, युक्ति, तर्क एवं विज्ञान से विरुद्ध उन मिथ्या धारणाओं का ही खण्डन किया है, जो मत-सम्प्रदायों के अनुयायियों में पारस्परिक द्वेष एवं फूट का संचार करती हैं। अतः दयानन्द को अन्य मतों के प्रति असहिष्णु कहना अन्याय पूर्ण है। दयानन्द ने यह स्पष्ट कर दिया है कि वे प्रथम दृष्टि में ही किसी सम्प्रदाय विशेष के ग्रन्थ को आलोचना की दृष्टि से नहीं देखते, अपितु उसके गुण-दोषों का सम्यक् विवेचन करने के पश्चात् ही उनके सम्बन्ध में अपनी धारणा बनाते हैं। सम्प्रदायों में पाये जाने वाले दोषों को प्रकाशित करने का उनका लक्ष्य भी यही होता था कि लोग सत्य एवं असत्य का निर्णय करें ताकि सच्चाई को ग्रहण करने तथा मिथ्या को त्यागने का वे सामर्थ्य प्राप्त कर सकें। इसी अभिप्राय को उन्होंने अन्यत्र भी व्यक्त किया है।

दयानन्द द्वारा किये गये खण्डन-मण्डन के पीछे उनके दृष्टिकोण की विवेचना के प्रसंग में डा० रघुवंश को पुनः उद्धृत करना अनुचित नहीं होगा। उनके शब्दों में, "स्वामी दयानन्द ने सत्य धर्म एक ही माना है और उनकी दृष्टि में वह धर्म वही हो सकता है जो श्रेष्ठ मानव मूल्यों की रचनात्मक प्रक्रिया को गतिशील रखने में सक्षम हो सके। बाद के समन्वयवादियों और अन्तर्राष्ट्रीयतावादियों ने दयानन्द को कट्टरपन्थी और खण्डन-मण्डन करने वाले सुधारक के रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि उनके जैसा उदार मानवतावादी नेता दूसरा नहीं रहा है।"

दयानन्द से एक शिकायत ईसाई तथा मुसलमान वर्ग के उन लोगों को भी रही, जो उनके खण्डन-मण्डन के पीछे निहित भाव को समझने में असमर्थ रहे थे। उन्होंने यह समझने का यत्न नहीं किया कि दयानन्द का सबसे अधिक विरोध तो धर्म के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम पर व्यवसाय करने वाले पण्डे पुजारियों, महन्तों और मठाधीशों से था। दयानन्द ने यदि इस्लाम और ईसाइयत की आलोचना की, तो इसलिये नहीं कि वे उन्हें भारत से इतर देशों में उत्पन्न सेमेटिक विचारधारा का वाहक समझते थे, अपितु उनकी अलोचना के लक्ष्य तो इन सम्प्रदायों में विद्यमान असत्य, अन्धविश्वास तथा मूढ़ धारणायें ही रहीं।

एक बात और भी थी। दयानन्द यह जानते थे कि इस्लाम और ईसाइयत के प्रचारकगण हिन्दू धर्म में प्रचलित रूढ़ियों, अन्धविश्वासों तथा अनेक मूर्खतापूर्ण विधि-विधानों की ओट में पिछड़े वर्ग के लोगों को मत परिवर्तन की प्रेरणा देते रहते हैं। उनका कहना था कि जो स्वयं कांच के घरों में निवास करते हैं, उन्हें दूसरों पर पत्थर फेंकने का क्या अधिकार है ? इसी तथ्य को लक्ष्य में रखकर उन्होंने ईसाई मत एवं इस्लाम की तथ्य पूर्ण आलोचना की, मानो उन्हें सचेत कर दिया कि उनकी स्थिति भी उन हिन्दू धर्म के अनुयायियों से किसी भी प्रकार भिन्न नहीं है जो अपनी कमजोरियों के कारण पादरियों और मौलवियों की आलोचना के शिकार बनते हैं। उदारभावापन्न लोग, चाहे वे ईसाई थे या मुसलमान, स्वामी दयानन्द के दृष्टिकोण की वास्तविकता को समझ कर सदा उनके प्रशंसक बने रहे। भारत में मुस्लिम नव-जागरण के अग्रदूत सैयद अहमद खां, अजमेर से प्रकाशित होने वाले राजपूताना गजट के सम्पादक मुन्शी मुरादअली जैसे व्यापक दृष्टिकोण के मुसलमान तथा बरेली के पादरी डा० स्कॉट जैसे विचारशील ईसाई धर्मयाजक, दयानन्द के मित्र, प्रशंसक तथा भक्त कहलाने में गर्व का अनुभव करते थे। यह दूसरी बात है, कि कालान्तर में भारत में ही कुछ ऐसी राजनैतिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गईं, जिनके कारण स्वामी दयानन्द द्वारा प्रवर्तित आर्यसमाज ईसाई तथा मुसलमानों से बहुत अधिक मधुर सम्बन्ध नहीं रख सका, किन्तु उनका यहां विचार करना अप्रासंगिक है।

दयानन्द के दार्शनिक विचार–

दयानन्द को समाज संशोधक, धर्माचार्य तथा राष्ट्रनिर्माता युगपुरुष के रूप में तो प्रायः स्मरण किया जाता रहा है, किन्तु उनके दार्शनिक विचारों का बहुत कम ऊहापोह हुआ है। एतद् विषयक भ्रम यहाँ तक फैल गया कि अनेक अहम्मन्य प्रकृति के लोगों ने तो दयानन्द में दार्शनिकता का नितान्त अभाव ही घोषित कर दिया तथा उनके द्वारा प्रकट किये गये दार्शनिक विचारों को भी अतिसामान्य, छिछला तथा अनतिगम्भीर कहने का प्रयास किया। तथ्य यह है कि दयानन्द के सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं कृतित्व के पीछे एक अत्यन्त स्पष्ट, सुविचारित तथा सतर्क चिन्ताधारा कार्य कर रही थी। यदि दयानन्द दर्शन में वैसी यथार्थवादिता, गहराई तथा स्पष्टता नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती, तो इसमें संदेह ही है कि वे अपने विचारों को जनसामान्य तक पहुंचा पाते तथा बहुसंख्यक समाज उनका अनुयायी बन जाता।

दयानन्द ने विश्व प्रपंच की व्याख्या यथार्थवादी दृष्टि से की है। उनका दर्शन जीवेश्वर के भेद तथा प्रकृति की अनादिता के सिद्धान्त पर आधारित है। इस दृष्टि से वे शांकर वेदान्त के प्रखर आलोचक भी हैं। उनकी दार्शनिक विचारधारा जहाँ वैदिक एवं औपनिषदिक दार्शनिक चिन्तन पर पूर्णतया आधारित है, वहाँ प्रबल युक्तियों एवं प्रमाणों से उसे परिपुष्ट भी किया गया है। इसका यह अर्थ नहीं कि वे उपनिषदों के उन वाक्यों की अनदेखी कर जाते हैं, जो एकाधिक बार अद्वैतवाद का समर्थन करते हैं। वे ऐसे वाक्यों की संगति स्वतंत्र रूप से लगाते हैं और उनका कहना है कि यदि प्रसंगानुसार ऐसे अभेदरक प्रतीत होते वाले उपनिषद् वचनों का सम्यक् विचार किया जाय, तो उनसे शांकर सिद्धान्त को पुष्ट करना असम्भव ही हो जायगा।

दयानन्द का शंकर पर स्पष्ट आरोप है कि उन्होंने न केवल उपनिषदों की, अपितु वेदान्त सूत्रों की भी व्याख्या स्वाभिमत के अनुकूल ही की है, और ऐसा करते समय वे यह विस्मृत कर जाते हैं कि सूत्रकार ऋषि का आशय निश्चय ही वह नहीं है जो उनकी व्याख्या में लिखा जा रहा है। आचार्य शंकर पर वैयासिक सूत्रों के अर्थों में खींचतान का आरोप दयानन्द ने ही लगाया था, ऐसी बात नहीं है। पुनर्जागरण के ही एक अन्य कर्णधार तथा अपने आप को महान् वेदान्ती कहने वाले स्वामी विवेकानन्द ने इस सम्बन्ध में लिखा था—"शंकर अद्वैतवादी थे, इसलिये उन्होंने सभी सूत्रों की केवल अद्वैत मत में व्याख्या करने की चेष्टा की है"। उन्होंने एक व्याख्यान में यहाँ तक कह दिया था कि "शंकराचार्य जैसे बड़े-बड़े भाष्यकारों ने अपने मत की पुष्टि के लिये जगह-जगह पर शास्त्रों का ऐसा अर्थ किया है जो मेरे विचार में समीचीन नहीं है"। दयानन्द ने भी लगभग ऐसा ही कहा है।

परन्तु बात केवल अद्वैतवाद के दार्शनिक पक्ष या सैद्धान्तिक पहलू की ही नहीं थी। दयानन्द तो व्यवहारवादी, यथार्थ दृष्टि सम्पन्न दार्शनिक थे। उन्होंने यह स्पष्ट अनुभव किया था कि शांकर अद्वैतवाद और मायावाद ने देशवासियों को कर्मशील जीवन से विरत कर उन्हें स्वप्नलोकवासी, परलोक चिन्तन करने वाले, मात्र मोक्षकामी ही बना दिया है। समाज और राष्ट्र के प्रति अपने दायित्वों को सर्वथा विस्मृत कर 'अहं ब्रह्मास्मि' और 'तत्त्वमसि' के तथाकथित महावाक्यों की मीमांसा करने वालों ने दर्शन जगत् में ख्याति के चाहे जैसे झण्डे गाड़ दिये हों, किन्तु उनसे देश तथा समाज का हित तो कदापि नहीं हुआ। जन सेवा, लोक-हित के लिये स्वार्थ त्याग, देश और जाति के व्यापक कल्याण की सिद्धि के लिये समर्पण भाव आदि के उदात्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्त्व उन वेदान्तवादियों में यदा कदा ही दिखाई पड़ते हैं। अतः यदि हमें अपने जीवन को जड़, निष्क्रिय तथा पलायनोन्मुख नहीं बनाना है, तो वेदान्त की मोहमयी मदिरा का त्याग करना ही होगा, यह दयानन्द की पक्की धारणा थी।

इस प्रकार शांकर मत का सर्वभावेन निरसन करने के पश्चात् दयानन्द ने जीवेश्वर भेदवाद के पोषक द्वैत सिद्धान्त (अथवा जीव, ईश्वर एवं प्रकृति की त्रिविध अनादि सत्ताओं को स्वीकार करने वाले त्रैतवाद) की स्थापना की। उन्होंने जीवेश्वर सम्बन्धों की विवेचना करते हुए इनमें परस्पर उपास्य-उपासक, राजा-प्रजा, गुरु-शिष्य, मित्र-मित्र तथा सेव्य-सेवक भावों को स्वीकार किया।

भारत के दार्शनिक चिन्तन को दयानन्द की एक अन्य महत्त्वपूर्ण देन, उनके आर्ष ग्रन्थ प्रामाण्य के सिद्धान्त से ही अनुस्यूत हुई है। वे यह मानते हैं कि न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग तथा वेदान्त एवं मीमांसा—छहों वैदिक दर्शन एक दूसरे के विरोधी न होकर एक दूसरे के पूरक हैं। उन्होंने 'सत्यार्थप्रकाश' के, तृतीय तथा अष्टम समुल्लास में षड्दर्शन समन्वय का उल्लेख किया है तथा एतद् विषयक चर्चा को सूत्र रूप में उठाया है। यदि उन्हें समय मिलता तो सम्भवतः वे सभी दर्शनों की समन्वयात्मक दृष्टि से व्याख्या भी करते। दर्शन-सूत्रों में सामञ्जस्य स्थापित करने का यह श्लाघनीय प्रयास उनके इसी मन्तव्य पर आधारित था कि सांख्यादि दर्शनों के प्रणेता कपिल आदि - साक्षात्कृतधर्मा, जीवन एवं जगत् के रहस्यों को हस्तामलकवत् जानने वाले, परावरज्ञ कोटि के ऋषि थे। अतः ऋषियों के कथन में कोई मौलिक मतभेद नहीं हो सकता, शैली भेद भले ही हो।

दयानन्द का दर्शन जीव एवं ईश्वर के परस्पर भेद के विचार पर आधारित है। अतः मूलतः दयानन्द ने जीव के लिये संसार के स्रष्टा एवं विधाता परमात्मा की प्रणतिपुरस्सर उपासना करने का ही विधान किया है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि वैदिक साहित्य तथा विचारधारा में ज्ञान, कर्म एवं भक्ति (उपासना) की त्रिपुटी को परस्पर विरोधी तत्त्वों के रूप में प्रस्तुत न कर एक दूसरे के पूरक के रूप में विवेचित किया गया है। यह एक विडम्बना ही थी कि कालान्तर में शंकराचार्य जैसे ज्ञानमार्गी दार्शनिकों ने ज्ञान और कर्म में छत्तीस का सम्बन्ध ठहराया और इन्हें परस्पर विरोधी घोषित किया। इसी की प्रतिक्रिया वैष्णव सम्प्रदाय के भक्त आचार्यों में हुई, जिन्होंने ज्ञान एवं कर्म का आत्यन्तिक बहिष्कार कर मात्र भक्ति को ही कलिकाल में परमात्मा की प्राप्ति का एकमेव साधन बताया। यह मध्यकालीन भक्ति भी कैसी थी ? जो सामाजिक दायित्वों तथा सामाजिक संदर्भों से व्यक्ति को सर्वथा विच्छिन्न कर एक ऐसी आवेश पूर्ण स्थिति में ले आती थी, जिसके वशवर्ती होकर मनुष्य अपने सभी सांसारिक इतिकर्तव्यों से मुँह मोड़ लेता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानन्द ने वैष्णवों की इस आवेशमयी भक्ति का डटकर विरोध किया जो केवल एक बार के नाम स्मरण मात्र से ही अथवा तुलसी दल समर्पित कर देने मात्र से ही जीव के लिये मोक्ष का द्वार खोल देने का दावा करती थी, चाहे भक्त का वैयक्तिक जीवन कैसा ही अपराध पूर्ण क्यों न हो तथा उसके कर्म कितने ही दोषों से भरे क्यों न हों ? देवता की प्रतिमा के समक्ष एक पुष्प समर्पित कर देने, गंगादि तीर्थों में एक बार गोता लगा लेने अथवा गलत सही-किसी भी तरीके से नारायण के नाम का एक बार उच्चारण कर लेने से ही मनुष्य भव पाशों से मुक्त होकर परमात्मा के परमधाम का अधिकारी हो जाता है। ऐसे भावों एवं आस्थाओं ने भारतवासियों की पुरुषार्थवृत्ति को कुण्ठित कर उन्हें दैववादी, प्रारब्धवादी, अकर्मण्य एवं पलायनवादी बना दिया है, यह दयानन्द का सुदृढ़ विश्वास था।

दयानन्द का भक्तिवाद—

तथापि इससे यह निष्कर्ष निकाल लेना अनुचित ही होगा कि दयानन्द एक शुष्क विचारक एवं तार्किक तथा 'वेदाभ्यासजडमति मीमांसक' का ही व्यक्तित्व लेकर देश के सार्वजनिक जीवन के मंच पर अवतरित हुए थे। स्वयं के अनुसार उन्होंने सार्वजनिक जीवन को सर्वतोमुखी उन्नत बनाने का जो महद् अनुष्ठान आरम्भ किया था, वह प्रबल ईश्वर विश्वास के बल पर ही किया गया था। दयानन्द परमात्मा के अनन्य उपासक हैं। वे समर्पणशील भावना लेकर जगन्नाटक सूत्रधार के सम्मुख आने वाले एक विनम्र सेवक हैं, जिन्होंने अत्यन्त भावप्रवण होकर अपने आराध्य देव से कहा, "आपका तो स्वभाव ही है कि अंगीकृत को कभी नहीं छोडते।" वेदों पर आधारित दयानन्द का यह भक्ति सिद्धान्त 'आर्याभिविनय' में संगृहीत विभिन्न मंत्रों की व्याख्याओं में पदे पदे प्रकट हो रहा हैं।

अपने ग्रन्थों में यत्र तत्र उपासना की चर्चा करते हुए दयानन्द ने योग-साधना पर अत्यधिक बल दिया है। चाहे हम 'सत्यार्थप्रकाश' वर्णित उपासना प्रकरण (सप्तम समुल्लास) को लें अथवा 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में विवेचित 'उपासना विषय, को देखें, हमें सर्वत्र योगांगों का विवेचन ही मिलेगा। दयानन्द ने स्वयं पातञ्जल योग पद्धति का अनुकरण कर समाधि अवस्था का साक्षात्कार किया था। यम, नियमादि की व्यवस्थित साधना के अनन्तर वे योग के विभिन्न सोपानों पर चढ़ते हुए निर्विकल्पक समाधि की स्थिति को प्राप्त कर पाये थे। परन्तु मध्य युग में योग के नाम पर जैसी अटपटी एवं भ्रष्ट साधनायें चल पड़ी थीं, दयानन्द का उनसे स्पष्ट वैमत्य था। वे न तो हठयोग की उन साधनाओं के पक्षपोषक थे, जो केवल शारीरिक क्रियाओं को ही महत्त्व देती है और न वे योग के नाम पर नाना गुह्य एवं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहस्यपूर्ण बातों को ही प्रश्रय देना चाहते थे। उपासना, धर्म, अध्यात्म एवं दर्शन के क्षेत्र में दयानन्द की सर्वोपरि देन तो यही है कि वे पुरातन विश्वासों, धारणाओं तथा पद्धतियों से केवल इसलिये चिपटे रहने का उपदेश नहीं देते कि ये प्राचीन हैं, अतः हमारे लिये आचरणीय तथा मान्य हैं। वे मनुष्य के विवेक को जागृत करना चाहते हैं। जिन वेदों को सर्वोपरि प्रमाण मानने के लिये उन्हें प्रायः दोषी ठहराया जाता है, उन वेदों के प्रति भी वे मानव जाति का विश्वास इसलिये जगाना चाहते हैं, कि वे वेदों को पूर्णतया बुद्धि संगत, तर्कयुक्त एवं सृष्टि रचना के शाश्वत नियमों के सर्वथा अनुकूल मानते हैं। दयानन्द की मानव जाति को यदि कोई एकमात्र महत्त्वपूर्ण देन है, तो वह यही है कि वे मनुष्य को अपनी बुद्धि, विवेक शक्ति तथा चिन्तन प्रणाली का प्रयोग करने के लिये कहते हैं, किसी बात को केवल इसलिये मान लेने के लिये नहीं कहते कि वह हमारे शास्त्रकारों का आदेश है, पूर्वजों की प्रणाली है, अथवा महाजनों से समर्थित आप्तवाक्य है।

दयानन्द का सामाजिक दर्शन—

दयानन्द जितने बड़े धर्मसंशोधक, धर्म व्याख्याता अथवा धर्माचार्य हैं, एक समाज-शास्त्री, समाजसंस्कारक तथा सामाजिक नेता के रूप में उनका व्यक्तित्व भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। यों तो वे उन्नीसवीं शती के उन समाज सुधारकों की ही परम्परा में आते हैं, जिन्होंने वृहत्तर हिन्दू समाज में व्याप्त नाना बुराइयों, मूर्खतापूर्ण रीति-रिवाजों तथा पुरातन सड़ी-गली प्रथाओं के विरोध में आवाज़ उठाई थी, किन्तु दयानन्द का यह सुधारक रूप भी एक उग्र क्रान्तिकारी, समाज को आमूल चूल बदलने वाले युग प्रवर्तक तथा क्रान्तद्रष्टा की प्रभा से परिवेष्टित है। भारतीय समाज में व्याप्त नाना बुराइयों, विषमताओं, शोषण की प्रवृत्तियों तथा अत्याचारमूलक प्रथाओं को नष्ट करने के लिये दयानन्द के प्रयासों का सर्वत्र सब कालों में अभिनन्दन हुआ है। वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन को खोखला बनाने वाली भीषण प्रथाओं का उन्होंने जिस प्रकार डटकर विरोध किया था, यह सब आज इतिहासकार की विवेचना में आ चुका है। अतः बाल-विवाह के उन्मूलन, विधवाओं की स्थिति को सुधारने, नारी को समाज में उच्चतर स्थिति प्रदान कराने, दलित एवं अस्पृश्य कही जाने वाली जातियों को उनका अधिकार दिलवाने, जन्मजात जाति प्रथा के दोषों की ओर जन-समाज का ध्यान आकृष्ट करने आदि से सम्बन्धित उनके कार्यों का पुनः विचार करना पिष्टपेषण ही होगा।

परन्तु हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि दयानन्द के तुरन्त पश्चात् ही हमारे देश में एक ऐसा चिन्तक वर्ग उत्पन्न हो गया था, जो न केवल सुधारवाद का विरोध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही था, अपितु जो प्रत्येक प्राचीन प्रथा के औचित्य को सिद्ध करने तथा सर्वथा जर्जर, मृतप्राय एवं हानिकर रूढ़ियों का शब्दाडम्बर युक्त एवं आलंकारिक व्याख्या प्रणाली का सहारा लेकर समर्थन भी करता था। इन लोगों ने सुधारक वर्ग के कार्यों का अवमूल्यन तो किया ही, उनपर अनेक प्रकार से छींटाकशी भी की। सम्भवतः वे सुधारकों द्वारा सामाजिक बुराइयों की कटु आलोचना से भी चिढ़ गये थे, परन्तु सुधारकों के इस प्रकार अग्नि जिह्व हो जाने के कारणों की उन्होंने कभी मीमांसा नहीं की। यदि वे ऐसा करते तो निश्चय ही इस निष्कर्ष पर पहुंच जाते कि रूढ़ियों और बुराइयों की समालोचना बिना किसी लागलपेट के ही करनी होती है, तभी उसका अभीष्ट फल भी प्राप्त होता है। कोमल शब्दावली का प्रयोग कर हम शताब्दियों से किये जाने वाले उन निर्मम अत्याचारों को समाप्त नहीं करा सकते, जिनके कारण दीर्घ काल तक हमारी प्रगति अवरुद्ध होती रही है।

—०००—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० भवानीलाल भारतीय

भारतीय पुनर्जागरण में आर्यसमाज एवं दयानन्द सरस्वती की भूमिका के अधिकृत व्याख्याता डॉ० भवानीलाल भारतीय का जन्म राजस्थान राज्य के नागौर जनपदान्तर्गत परबतसर ग्राम में आषाढ कृष्णा 3, 1985 वि० को हुआ। संस्कृत एवं हिन्दी में एम०ए०, राजस्थान विश्वविद्यालय से 1968 ई० में पी०एच०डी की उपाधि ग्रहण की।

स्वामी दयानन्द तथा आर्यसमाज के वैचारिक एवं ऐतिहासिक पक्षों से सम्बन्धित उनके अनेक शोधपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। आर्यसमाज के शास्त्रार्थ-महारथी, आर्यसमाज के वेद सेवक विद्वान, परोपकारिणी सभा का इतिहास तथा आर्यसमाज के पत्र और पत्रकार इसी श्रेणी की कृतियाँ हैं। "आर्यसमाज अतीत की उपलब्धियां और भविष्य के प्रश्न" ग्रन्थ पर आर्य-प्रतिनिधि सभा पंजाब से 1976 ई० में पं० लेखराम साहित्य पुरस्कार प्राप्त किया। उनके द्वारा रचित "महर्षि दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द" 1976 एवं "श्रीकृष्ण चरित" 1982 में पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय पुरस्कार से पुरस्कृत हो चुके हैं। गुरुकुलकांगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा 1982 ई० में पं० गोवर्धन शास्त्री पुरस्कार के सम्मानित। दो दशाब्द से भी अधिक समय तक राजस्थान की कॉलेज शिक्षा सेवा से सम्बन्धित रहने के पश्चात् विगत 4 वर्षों से वे पंजाब विश्वविद्यालय की दयानन्द अनुसंधान पीठ के प्रोफेसर तथा अध्यक्ष पद पर कार्यरत हैं। नवजागरण के पुरोधा : दयानन्द सरस्वती उनकी नवीनतम कृति है जिसमें स्वामी दयानन्द का जीवनचरित शोध की वैज्ञानिक प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए लिखा गया है।

—डॉ० विष्णुदत्त राकेश

प्रकाशक :—श्री वीरेन्द्र अरोड़ा, कुलसचिव, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

TEN PRINCIPALES OF

THE ARYA SAMAJ

1. God is the primary source of all true knowledge and of all that can be known through it.

2. God is existent, intelegent and blissful. He is formless, almighty, just, merciful, unborn, infinite, unchangable, beginningless, incomparable, the support and lord of all, omniscient, imperishable, immortal, fearless, eternal, holy and the maker of the universe. To him alone worship is due.

3. The Vedas are scriptures of true knowledge. It is the duty of all Aryas to read them, hear them being read and recite them to others.

4. We should always be ready to accept truth and give up untruth.

5. All actions should be performed in conformity with Dharma, i.e., after due consideration of right and wrong.

6. The primary aim of the Arya Samaj is to do good for all i.e., promote their physical, spiritual and social well being.

7. We should treat all people with love, fairness and due regard for their merit.

8. We should aim at dispelling ignorance and promoting knowledge.

9. One should not be content with one's own welfare, but should look for it in the welfare of others only.

10. One should regard one's self under restriction to follow altruistic rulings of society ; while in following rules of individual welfare, all should be free.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी व्याख्यानमाला

दयानन्द, गाँधी और मार्क्स

व्याख्याता
डा० प्रभाकर माचवे

निदेशक
भारतीय भाषा परिषद, कलकत्ता

प्ररोचना
श्री बलभद्र कुमार हूजा
कुलपति

संयोजक
डा० विष्णुदत्त राकेश

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

१, २ नवम्बर १९८४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्ररोचना

यह बहुत ही सुखद बात है कि गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी व्याख्यान-माला का समारम्भ कर रहा है। अपने गुरु दण्डी स्वामी विरजानन्द सरस्वती से आलोक पाकर देश और समाज को अज्ञान की कन्दराओं से निकालने के लिए स्वामी जी ने पाखण्ड-खण्डिनी पताका फहराई। संस्कृत के उद्‌भट विद्वान होते हुए भी हिन्दी को लेखन का आधार बनाकर वह सामान्य जन-जीवन के साथ जुड़े। उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश से संसार में अभूतपूर्व क्रान्ति का सूत्रपात हुआ। सत्यार्थ प्रकाश का प्रथम मुद्रण १८७५ तथा द्वितीय संस्करण १८८४ में हुआ। इस दूसरी आवृत्ति का महत्त्व इस बात से भी है कि इस संस्करण की भाषा अधिक प्रांजल और टकसाली है तथा आधुनिक हिन्दी लेखन का मार्ग इसने प्रशस्त किया है। पुरानी सधुक्कड़ी हिन्दी को नया वैचारिक क्षितिज देकर स्वामी जी ने यह सिद्ध कर दिया कि वैदिक साहित्य से लेकर आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की विविध वैचारिक सरणियों का उच्चतर अध्ययन-अध्यापन और चिंतन-मनन हिन्दी में हो सकता है। वह हिन्दी को आर्यभाषा कहते थे। मादाम ब्लावत्स्की को लिखे एक पत्र में स्वामी जी ने स्पष्ट संकेत किया था कि वह जिस पत्र का उत्तर उनसे चाहें, उसको नागरी लिपि में लिखवा कर उनके पास भेजा करें।

भारतीयता और राष्ट्रीयता का पांचजन्य उन्होंने बजाया। वह भारतीय नव-जागरण के अग्रदूत थे; तथा समाज सुधार, शिक्षा, औद्योगिक-वैज्ञानिक उन्नति तथा स्वतन्त्रता की उन्होंने सर्वप्रथम कल्पना की थी। यही कारण था कि उन्होंने धर्म-व्यवस्था आदर्श समाज व्यवस्था, स्वतन्त्रता, समानता, समाज-व्यवस्था तथा सर्वांगीण शिक्षा व्यवस्था पर अपने मौलिक तथा उपादेय विचार व्यक्त किये। सत्यार्थ प्रकाश एक खण्डन-मण्डनात्मक ग्रन्थ ही नहीं है, उसमें मनु आदि धर्मशास्त्रकारों का युगानुरूप नवीन भाष्य प्रस्तुत किया गया है। वह आधुनिक मनु की ऐसी विधि तथा आचार-संहिता है जिसमें देश, काल, जाति, वर्ण तथा अलगाववाद से ऊपर उठे हुए मानव मात्र के लौकिक तथा पारलौकिक अभ्युदय और निःश्रेयस् प्राप्ति का विधान बताया गया है। आत्मिक तथा भौतिक उन्नति का ऐसा सतुलित उपाय इतने विशद वैचारिक और व्यावहारिक स्तर पर महर्षि से पूर्व किसी समाज सुधारक तथा युगद्रष्टा ने नहीं दिया था।

स्वामी जी का निर्वाण ३० अक्टूबर १८८३ को हुआ। उनके निर्वाण को सौ वर्ष हो गए। इस लम्बे अन्तराल में देश ने कई उतार चढ़ाव देखे और आज जिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
विस्फोटक एवं विषम परिस्थितियों में देश खड़ा हुआ है, उनसे मानव धर्म, लोकतन्त्र, सामाजिक समानता, सामूहिक अभ्युदय और लोक जीवन के उत्कर्ष से सम्बन्धित मूल्यों को खतरा पैदा हो गया है। अतः इन जटिल समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में स्वामी जी के कार्य का पुनर्मूल्यांकन होना चाहिये। आशा है, इस व्याख्यान-माला के प्रसंग से देश के अनुभवी-विशेषज्ञ विद्वान, ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज के अवदान का अनेक विचार-बिन्दुओं से अध्ययन-मनन करेंगे तथा ऋषि के विचार सूत्रों के पल्लवन द्वारा वर्तमान समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करेंगे। मुझे विश्वास है कि इस भाषणमाला से ऋषि दयानन्द के बहुमुखी और विराट् व्यक्तित्व के विविध पहलू उजागर होंगे।

इस व्याख्यान-माला का शुभारम्भ ३०, ३१ अगस्त १९८४ को पंजाब विश्वविद्यालय दयानन्द चेम्बर के अध्यक्ष डा० भवानीलाल भारतीय ने 'आर्य समाज उपलब्धियाँ, सीमाएँ और अपेक्षाएँ' तथा 'दयानन्द सरस्वती के विचार—समाज की कसौटी पर' शीर्षक दो व्याख्यान देकर किया।

इस क्रम में द्वितीय व्याख्यान बहुभाषाविद्, सुप्रसिद्ध विचारक तथा साहित्यकार डा० प्रभाकर माचवे का 'दयानन्द, गाँधी और मार्क्स' विषय पर आयोजित किया जा रहा है। यह सर्वविदित है कि दयानन्द और कार्ल मार्क्स समकालीन थे। दयानन्द का प्रादुर्भाव १८२४ ई० तथा मार्क्स का जन्म १८१७ ई० में हुआ था। दोनों का देहावसान १८८३ में हुआ था। दोनों ने ही अपने समय में शोषित मानवता के उद्धार का प्रयत्न किया। दयानन्द की दयालु दृष्टि ह्रासोन्मुख सामन्ती समाज, पिछड़ी हुई तथा कथित जातियों तथा नारी परतन्त्रता की ओर गई। उन्होंने पानी, हवा, सूर्य के समान ही सब के लिये ज्ञान और शिक्षा की अनिवार्यता पर बल दिया। मानवमात्र वेद के ज्ञान से लाभ उठा सके, यह उनका विशेष प्रयत्न था। कर्म के आधार पर जाति की व्यवस्था देकर उन्होंने श्रम को प्रतिष्ठित किया। वर्णाश्रम मर्यादा और राज्य की उन्होंने जनोपयोगी व्याख्या की। मानववादी समाज-व्यवस्था का वैदिक आधार अत्यन्त प्रभावी और निर्दोष है। वैदिक व्यवस्था में सम्पति के स्वैच्छिक विनिमय की सद्भावनाश्रित व्यवस्था है। जहाँ दुरुपयोग होने पर सम्पत्ति के छीन लिये जाने का भी विधान है। सम्पत्ति के स्वामित्व का आधार यहाँ सदुपयोग है तथा श्रमाधिकार की सुरक्षा के साथ-साथ राष्ट्र और समाज के सार्वजनिक हित की रक्षा उसका मूल उद्देश्य है। इस प्रतिबन्ध के कारण ही सम्पत्ति के निजत्व का अधिकार भी व्यक्तिगत और सामाजिक बुराइयों को जन्म नहीं दे सकता। मनुष्यों की योग्यता, रुचि और प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर जीवन-यापन की सुविधाओं को सबके लिये समान रूप से जुटाने की व्यवस्था यहाँ है और इसके लिये नैतिकता तथा आध्यात्मिकता का अंकुश आवश्यक माना गया है। राष्ट्रहित में समर्पण और दान की वृत्ति वैदिक साम्यवाद का मूल आधार है। भारतीय समाज में सभी वर्ग समान महत्व के हैं, यह ठीक है कि वर्ग-वैषम्य के कारण अभी वह स्थिति नहीं आ पाई जिसकी कल्पना दयानन्द ने की थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानन्द के इस अध्यात्मप्रेरित साम्य सिद्धान्त को श्रद्धानन्द (१८५६-१९२६) तथा गाँधी (१८६९-१९४८) ने आगे बढ़ाया और कालान्तर में उदारतावादी सुधारकों को उनसे प्रेरणा मिली। सामाजिक-आर्थिक विषमता को दूर करने के लिये मार्क्स के अनुयायियों को बहुत दूर तक सफलता मिली है पर विचार-स्वातंत्र्य तथा व्यक्ति स्वातंत्र्य की ज्योति वहाँ निष्प्रभ हुई है। भारत में धार्मिक सामाजिक संगठन के लिए विचार तो हुआ है पर व्यावहारिक स्तर पर अभी ऊँच-नीच तथा छुआछूत की भावना पर पूर्ण विजय नहीं प्राप्त की जा सकी। दयानन्द और गाँधी की अध्यात्म-प्रेरित लोक-क्रांति अभी शेष है तथा बुद्धिजीवियों के लिये यह एक सामयिक चुनौती है।

डा० माचवे 'दयानन्द, गाँधी और कार्ल मार्क्स' के गहरे अध्येता हैं। अपने भाषण में उन्होंने तुलनात्मक दृष्टि से तीनों विचारकों के सिद्धान्तों का अधिकारपूर्वक विवेचन-विश्लेषण किया है। आशा है, युग के इन तीन ऋषियों को अपनी भिन्नताओं और समस्याओं के गुण-दोषों के साथ सच्चाई पूर्वक समझने और सोचने का अवसर हम को मिलेगा। मैं डा० माचवे को इस विद्वतापूर्ण विवेचनात्मक व्याख्यान के लिये हृदय से धन्यवाद देता हूं।

विश्वविद्यालय के यशस्वी विद्वान डा० विष्णुदत्त राकेश को इस व्याख्यान माला का सफलतापूर्वक संयोजन करने के लिए साधुवाद।

२२-९-८४

बलभद्र कुमार हूजा
कुलपति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुलपतिजी तथा आदरणीय मित्रों,

मैं सर्वप्रथम गुरुकुल (कांगड़ी) के कुलपति तथा प्राध्यापक डा० विष्णुदत्त 'राकेश' का बहुत आभारी हूँ कि उन्होंने मुझे आपके सम्मुख उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के तीन श्रेष्ठ विचारकों का शुभ-स्मरण और तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए यहाँ बुलाया। महापुरुष जीवन-मार्ग के दिशा-दर्शक दीपस्तम्भ हैं। उनके जीवन चिंतन के आलोक में ही हम आगे बढ़ते हैं। आदर्श के लिए संघर्ष की और कितनी भी गयी-गुज़री परिस्थिति में मानवता के लिए भावी आशा की प्रेरणा और प्रोत्साहन पाते हैं।

इन व्याख्यानों में मैं तीनों महान समाज-सुधारकों और नवीन वैचारिक आम्नाय और आयाम निर्माताओं के जीवन और विचारों का आलेख प्रस्तुत करूँगा। तत्पश्चात् कुछ तुलनात्मक प्रश्न उठाऊँगा, जिनका विश्लेषण आज के भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में आवश्यक और उपयोगी सिद्ध होगा, ऐसी मेरी मान्यता है। हर महान विचारक की एक ऐतिहासिक महत्ता होती है, और उसी के साथ-साथ दिक्काल की सीमा में ही हर विचार का यथोचित मूल्यांकन होना चाहिए। प्रत्येक विचार के मूल में युग होता है, परन्तु उसकी परिणति युग-युग के लिए प्रासंगिक और सार्थक होने में ही निहित हैं। इसी दृष्टि से, हम पहले तीनों नवीन मत-उन्नायकों का अलग-अलग विचार करेंगे, और उनके सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभावों का समग्रता में विचार करेंगे। आज के भारत को ध्यान में रखकर शास्त्र और शास्त्र-विरोध, धर्म और धर्म निरपेक्षता, रूढि और पाखंड-खण्डन, मत-वाद और समाज-विकास आदि पर पुर्नविचार आवश्यक है। अन्यथा सही अर्थ में न तो 'सत्य के अर्थ पर प्रकाश' पड़ेगा, न 'पूँजी' की गुलामी से मुक्ति मिलेगी, न 'हिंद स्वराज्य' और 'नवजीवन' के लाभ 'हरिजन' को भी मिल सकेंगे। संक्षेप में इस चर्चा में १८२४ से १९४८ यानी स्वामी दयानन्द सरस्वती के जन्म से महात्मा गाँधी के महा-निर्वाण की शती की भारतीय चेतना की चर्चा होगी, ओर युरोप में और विश्व में कार्लमार्क्स के वैचारिक प्रभाव की भी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि दयानन्द सरस्वती

महात्मा गांधी ने लिखा "महर्षि दयानन्द हिन्दुस्तान के आधुनिक ऋषियों में, सुधारकों में और श्रेष्ठ पुरुषों में एक थे। उनके जीवन का प्रभाव हिन्दुस्तान पर बहुत अधिक पड़ा है।" रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा—"मेरा सादर प्रणाम हो उस महान् गुरु दयानन्द को, जिसकी दृष्टि ने भारत के आध्यात्मिक इतिहास में सत्य और इतिहास को देखा और जिसके मन ने भारतीय जीवन के सब अंगों को प्रदीप्त कर दिया—जिसने देश की पतितावस्था में सीधे व सच्चे मार्ग का दिग्दर्शन कराया।" योगी अरविंद ने कहा है—"उनके ध्यान से मेरे समक्ष आध्यात्मिक क्रियात्मकता की एक शक्ति सम्पन्न मूर्ति उपस्थित होती है।—वे स्वयं दृढ़ चट्टान थे। उनमें वह शक्ति थी जो चट्टान पर घन चलाकर पदार्थों को सुदृढ़ व सुडौल बना सके। प्राचीन सभ्यता में विज्ञान के बहुत से गुप्त भेद विद्यमान हैं, जिनमें से कुछ को अर्वाचीन विद्याओं ने ढूंढ़ लिया है, उनका परिवर्तन किया है और उन्हें अधिक समृद्ध व स्पष्ट कर दिया है, किन्तु बहुत से दूसरे अभी तक निगूढ़ ही बने हुए हैं। इसलिए दयानन्द की इस धारणा में कोई अवास्तविकता नहीं है कि वेदों में विज्ञान-सम्मत तथा धार्मिक सत्य निहित है।" नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने कहा—"मैं स्वामी दयानन्द को एक धार्मिक और सामाजिक सुधारक तथा कर्मयोगी मानता हूं। संगठन कार्यों के सामर्थ्य और प्रसार की दृष्टि से आर्य समाज अनुपम संस्था है—रामकृष्ण मिशन ने बंगाल में जो कुछ किया, उससे कहीं अधिक आर्य समाज ने पंजाब और संयुक्त प्रांत में किया।" पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय उन्हें अपना गुरु और धर्म पिता मानते थे। "मुझे इस बात का गर्व है कि मेरे गुरु ने मुझे स्वतंत्रापूर्वक विचार करना, बोलना और कर्तव्य-पालन सिखाया। और मेरी माता आर्य समाज ने मुझे एक संस्था में बद्ध होकर नियमानुवर्तित्त्व का पाठ दिया।"

भारत के राष्ट्र नेता ही नहीं अन्य धर्मीय और अन्य क्षेत्रों के महापुरुषों ने दयानन्द का महत्त्व इन शब्दों में वर्णित किया है :

(१) साधु टी० एन० वास्वानी—"ऋषि के अप्रतिम ब्रह्मचर्य, सत्य संग्राम और घोर तपस्या के लिए अपने हृदय के पूज्य भावों से प्रेरित होकर मैं उनकी वंदना करता हूं। मैं ऋषि को शक्ति-सुत अर्थात कर्मवीर योद्धा समझकर आदर करता हूं।"

(२) प्रिंसिपल एस० के० रुद्र ईसाई थे। पर उन्होंने लिखा—"इसका श्रेय स्वामी दयानन्द को ही है कि हिन्दू लोग आधी शताब्दी में ही रूढ़िवाद और पौराणिक देवी-देवताओं की पूजा छोड़कर अत्यन्त शुद्ध ईश्वरवाद को मानने लगे।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) जी० एस० आरुंडेल थियोसाफिकल सोसायटी के भारतीय प्रणेता थे। वे मानते थे कि "महर्षि दयानन्द भारतवर्ष के सर्वोत्तम महापुरुषों में से एक थे। उन्होंने भारत में राष्ट्रीय शिक्षा का विचार पैदा किया।"

(४) श्री विजयराघवाचारियर ने कहा—"आपने न केवल उन लोगों को जिन्होंने आपको विष दे दिया था क्षमा कर दिया। प्रत्युत, वह अपूर्व काम किया कि उसे मुकद्दमे और दंड के चंगुल से छुड़ाया।"

विदेश के कई महामनीषियों ने दयानन्द के प्रति बहुत महत्त्वपूर्ण उद्गार व्यक्त किये हैं।

(१) "यह पुरुष-सिंह उनमें से एक था जिन्हें युरोप प्रायः उस समय भुला देता है जबकि वह भारत के सम्बन्ध में अपनी धारणा बनाता है, किन्तु एक दिन युरोप को अपनी भूल मानकर उसे याद करने के लिए बाधित होना पड़ेगा, क्योंकि उनमें कर्मयोगी, विचारक और नेता की प्रतिभा का दुर्लभ सम्मिश्रण था।

"दयानन्द ने अस्पृश्यता वा अछूतपन के अन्याय को सहन नहीं किया और उससे अधिक उनके अपहृत अधिकारों का उत्साही समर्थक दूसरा कोई नहीं हुआ। भारत में स्त्रियों की शोचनीय दशा को सुधारने में भी दयानन्द ने बड़ी उदारता व साहस से काम लिया। वास्तव में राष्ट्रीय भावना और जनजागृति के विचार को क्रियात्मक रूप देने में सबसे अधिक प्रबल शक्ति उसी की थी। वह पुनर्निर्माण और राष्ट्र संगठन के अत्यन्त उत्साही पैगम्बरों में से था।

—फ्रांसिसी लेखक रोम्यां रोला

(२) हमें वेदों के अध्ययन को प्रोत्साहन देने और यह सिद्ध करने में कि मूर्तिपूजा वेद सम्मत नहीं है, स्वामी दयानन्द के महान् उपकार को अवश्य स्वीकार करना चाहिये। आर्य समाज के प्रवर्तक वर्तमान जाति-भेद की मूर्खता और उसकी हानियों के विरुद्ध अपने अनुयायियों को तैयार करने के अतिरिक्त यदि और कुछ भी न करते तो भी वह वर्तमान भारत के बड़े नेता के रूप में अवश्य सम्मान पा जाते।

—जर्मन प्रोफेसर डा० विण्टरनीज

(३) स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हिन्दू धर्म के सुधार का बड़ा कार्य किया और जहाँ तक समाज सुधार का सम्बन्ध है, वह बड़े उदार हृदय थे। वे अपने विचारों को वेदों पर आधारित और उन्हें ऋषियों के ज्ञान पर अवलम्बित मानते थे। उन्होंने वेदों पर बड़े-बड़े भाष्य किये, जिससे मालूम होता है कि वे पूर्ण अधीन थे। उनका स्वाध्याय बड़ा व्यापक था।

—जर्मन विद्वान मैक्समूलर

(४) स्वामी दयानन्द के उच्च व्यक्तित्व और चरित्र के विषय में निस्संदेह सर्वत्र प्रशंसा की जा सकती है। वे सर्वथा पवित्र तथा अपने सिद्धांतों के अनुसार आचरण करने वाले महानुभाव थे। वह सत्य के अत्यधिक प्रेमी थे।

—रेवरेण्ड सी० एफ० एण्डरूज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri पर चार बड़े

अक्सर स्वामी दयानन्द को मुस्लिम-विरोधी कहा जाता है। मुस्लिम विचार नेताओं की श्रद्धांजलि कुछ दूसरी ही कथा कहती है :

(१) मैं देखता हूँ कि कोई भी हिन्दू जब आर्य समाज में आता है तो उसमें बहुत विशेषता आ जाती है। उसके अन्दर उत्साह, देशभक्ति, कर्मशीलता और एक तरह की अजीब स्प्रिट काम करने लगती है।

देश के कामों में ही लीजिए, जब तक और लोग स्वराज्य का स्वप्न देख रहे थे, स्वामी दयानन्द और आर्य समाज अपनी पुस्तकों द्वारा उसका प्रचार करने लगे थे।

मैं खुशी के साथ कहता हूँ कि असहयोग के जमाने से पहले करीब ३० फी सदी आर्यसमाजी स्वराज्य के कार्यों में हिस्सा लेने वाले और लीडर थे, जबकि और सुसाईटियों के मुश्किल से २-३ फी सदी आदमी ही स्वराज्य का काम करते थे।

—मौलाना हसरत मुहानी

(२) स्वामी दयानन्द महान् संस्कृतज्ञ और वेदज्ञाता थे। वे विद्वान् ही नहीं किन्तु एक अत्यन्त श्रेष्ठ पुरुष भी थे। वे परम हंस के गुणों से विभूषित थे। उन्होंने केवल एक ज्योतिर्मय निराकार परमेश्वर की आराधना करने की शिक्षा दी। हमारा स्वामी जी से घनिष्ठ सम्बन्ध था, और हम उनका आदर करते थे। वह ऐसे विद्वान और श्रेष्ठ पुरुष थे कि अन्य मतावलम्बी भी उनका मान करते थे।

—सर सैयद अहमद खां

(३) महर्षि दयानन्द भारत-माता के उन प्रसिद्ध और उच्च आत्माओं में से थे, जिनका नाम संसार के इतिहास में सदा चमकते हुए सितारों की तरह प्रकाशित रहेगा। वह भारत माता के उन सपूतों में से थे, जिनके व्यक्तित्व पर जितना भी अभिमान किया जाय थोड़ा है। नैपोलियन और सिकन्दर जैसे अनेक सम्राट एवं विजेता संसार में हो चुके हैं, परन्तु महर्षि उन सबसे बढ़ कर थे।

—खदीजा बेगम एम० ए०

(४) ईसाइयत और पश्चिमी सभ्यता के मुख्य हमले से भारतीयों को सावधान करने का सेहरा यदि किसी व्यक्ति के सिर बांधने का सौभाग्य प्राप्त हो तो स्वामी दयानन्द जी की ओर इशारा किया जा सकता है। १९ वीं सदी में स्वामी दयानन्द जी ने भारत के लिए जो अमूल्य काम किया है, उससे हिन्दू जाति के साथ-साथ मुसलमानों तथा दूसरे धर्मावलम्बियों को भी बहुत लाभ पहुंचा है।

—पीर मुहम्मद यूनिस

वस्तुतः इन श्रद्धांजलियों के बाद इस गुरुकुल में दयानन्द के जीवन और कार्य की विशेषताओं के बारे में और कुछ कहना मेरे लिए सूर्य को दीपक दिखाने और 'उलटे बाँस बरेली जाये' वाली लोकोक्ति का पुनरुच्चार होगा। परन्तु चूँकि यह तुलनात्मक अध्ययन की पुस्तिका उन अनेक पाठकों के पास भी जायेगी, जो आर्य समाज के अनुयायी नहीं होंगे या जो महर्षि के जीवन के प्रमुख तथ्यों से अपरिचित होंगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
इसलिए मैं जल्दी से उनके जीवन की रूपरेखा और उनकी उपलब्धियों पर कुछ कहकर मुख्य विषय की ओर मुड़ूँगा।

गुजरात में काठियावाड़ में मोरवी में एक शिवभक्त नैष्ठिक ब्राह्मण अम्बाशंकर की सन्तान मूलशंकर दयानन्द ने पाँच वर्ष में विद्यारंभ करके, चौदहवें वर्ष में सारा यजुर्वेद कंठस्थ कर लिया। चौदहवें वर्ष में शिवरात्रि के जागरण में शिव मंदिर में एक चुहिया को शिव-मूर्ति पर चढ़कर नैवेद्य खाते देखकर दयानन्द के मन में शंका जागी कि जो सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ शिव है क्या वह एक चुहिया को भी नहीं हटा सकता? मूर्तिपूजा से उनका विश्वास उठ गया। कालेरा में १८४१ में उनकी बहन की हैजे से मृत्यु ने उनके मनमें वैराग्य उत्पन्न कर दिया। पिता ने अंतर्मुखी पुत्र के विवाह की ठानी। पर वे घर छोड़कर भाग गये। समर्थ रामदास स्वामी भी विवाह-मंडप से भाग गये थे। और उन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत ले लिया। अब वे १४ वर्षों तक हिमालय में घूमते रहे। १८६० में जब वे मथुरा में पहुंचे तो उन्हें प्रज्ञाचक्षु बिरजानंद गुरु के रूप में मिले। उनके साथ ढाई वर्षों तक वे वेदाध्ययन करते रहे। नैष्ठिक संन्यासी बनकर उन्होंने हरद्वार के कुम्भ मेले में पाखण्ड खडिनी पताका फहराई। और मूर्तिपूजा विरोध का प्रचार आरम्भ किया। १८६९ में काशी में गये और पंडितों के साथ संस्कृत में शास्त्रार्थ किया। यहीं पर केशवचन्द्र सेन नामक ब्राह्म समाज के नेता ने कहा कि संस्कृत में शास्त्रार्थ न करके हिन्दी में कीजिये। गुरु विरजानन्द ने १८६३ में उन्हें जो संदेश दिया था कि "प्राचीन वैदिक धर्म का ज्ञान मातृभूमि में फैलाओ!" उसी को उन्होंने अपना जीवन-मंत्र बना लिया।

१८७२ में स्वामी दयानन्द कलकत्ता में पहुंचे। ब्राह्मसमाजियों को लगा कि दयानन्द उनके अनुयायी बन जायेंगे। पर ब्राह्मसमाजी न आत्मा के पुनर्जन्म को, न वेद की अन्तिम और प्रमाणातीत सत्ता को मानते थे। सो उन्होंने अपना धर्म चलाने का निश्चय किया। १८७४ में पहला आर्यसमाज स्थापित हुआ। १८७७ में वे पंजाब में गये। दो महीनों के भीतर लाहौर में उन्होंने आर्यसमाज का मुख्यालय बनाया। उनके उपदेश उन तरुणों के मन में बहुत अच्छा प्रभाव कर गये जो पश्चिमी शिक्षा से प्रभावित थे, और हिन्दू रूढ़िवादिता और अंधविश्वासों को छोड़ना चाहते थे; और साथ ही ईसाई नहीं बनना चाहते थे। १८७८ में दयानन्द मैडेम ब्लैवत्स्की और कर्नल आलकाट नामक थियोसोफिकल सोसायटी के नेताओं के संपर्क में आये। पहले वे चाहते थे कि दयानन्द थियोसोफिस्टों के साथ मिलकर उनके कार्य-क्रम का प्रचार करें, परन्तु वह नहीं हो सका।

दयानन्द अपना प्रचार कार्य ज्यों-ज्यों बढ़ाते गए, उनका विरोध भी बढ़ता गया। उन्हें नदियों में डुबाकर मारने का प्रयत्न किया गया। काशी, लाहौर, पूना में उनपर पत्थर फेंके गए। बाजारों में उन्हें अपमानित किया गया। पर उन्होंने किसी की परवाह नहीं की। उनका प्रभाव बढ़ता गया। वे अपने अमर ग्रन्थों का सत्यार्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
प्रकाश और संस्कार विधि ऋग्वेद भाष्य-भूमिका और सातवें मण्डल तक ऋग्वेद का भाष्य और बाद में यजुर्वेद भाष्य आदि अनेक छोटे-बड़े ग्रन्थों का प्रणयन करते गए। स्कूल, कालेज, गुरुकुल, संस्कृत पाठशालाओं की स्थापना की। उन्होंने विधवाश्रम भी स्थापित किये। १८८३ में उन्हें जोधपुर के महाराज ने बुलाया, जहाँ वे बीमार पड़ गए। एक मुस्लिम नर्तकी जो राजा की रखैल थी उसने अपने को अपमानित अनुभव कर एक रसोइये के हाथों कांच पीसकर भोजनार्थ देकर दयानन्द पर विषप्रयोग किया। महर्षि अक्टूबर १८८३ में दिवंगत हो गये।

उनके द्वारा प्रचारित दर्शन और समाज सुधार की निम्न दस विशेषताओं का लोहा जो आर्य समाजी नहीं भी हैं, वे भी मानते हैं।

(१) वेद ईश्वर प्रणीत हैं। उनके ज्ञान का सृष्टि प्रक्रिया से पूर्ण मेल हैं। वे स्वत: प्रमाण हैं। दूसरे किसी भी ग्रंथ के ज्ञान का सृष्टि की बातों से इतना मेल नहीं। वेद ही मानव समाज के वैज्ञानिक और पारमार्थिक विचारों के उद्गम हैं। वेदान्त ही श्रेष्ठतम दर्शन है।

(२) मूर्ति पूजा व्यर्थ है। पोरोहित अनुष्ठान झूठे हैं। अवतारवाद और तीर्थाटन की बातें केवल पौराणिक कपोल-कल्पना पर आधारित हैं। अट्ठारह पुराण मूल्यवान नहीं।

(३) जातिभेद एकदम गलत है। गुण कर्म विभाग ही जातियां हैं, जन्मना नहीं। अत: मनुष्य मनुष्य में ऊँच-नीच का भेद करना यह अत्यन्त अवैदिक धारणा है।

(४) अन्य धर्मों का अवलम्बन करने वाले वैदिक धर्म को अपना सकते हैं। जो हिन्दू धर्म-परिवर्तन से मुस्लिम, ईसाई या अन्य धर्मीय हुए हैं, वे पुन: हिन्दू हो सकते हैं।

(५) स्त्रियों की जागृति के पक्ष में, दयानन्द द्वारा माता को प्रथम स्थान दिया गया (पिता को द्वितीय, आचार्य को तृतीय)। उन्होंने बाल-विवाह विरोध; प्रीति विवाह प्रोत्साहन; विधवा-पुनर्विवाह का समर्थन; कुछ विशेष परिस्थितियों में नियोग को भी मान्यता दी। शिक्षा के क्षेत्र में स्त्री और पुरुष में वे भेद नहीं करते थे।

(६) दयानन्द ने परदेश-पर्यटन को निषिद्ध नहीं माना। पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान का अध्ययन और परीक्षित करके वहां की अच्छी बातों को अपनाने पर बल दिया।

(७) ब्रह्म यज्ञ—संध्या, नियमित वेद पठन
देव यज्ञ—अग्नि की उपासना
पितृ यज्ञ—बड़ों की सेवा
अतिथि यज्ञ—विद्वान, अतिथि, संन्यासी को भोजन देना
बलि यज्ञ—अंध, पंगु, अनाथ, पशु-पक्षी को अन्न दान

(८) शाकाहार और गो-रक्षा का महत्व। 'गो करुणानिधि' ग्रंथ में इस पर विशेष आग्रह किया गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(९) योग के चमत्कार निरे तमाशे हैं। दयानन्द की ऐसे झूठे प्रचारक योगियों से अनास्था थी। 'पायोनियर' के सम्पादक मि० सिनेट को उन्होंने लिखा।

(१०) छुआछूत न मानी जाये। अस्पृश्यता वेद सम्मत नहीं है।

महर्षि के विचार-रत्नों में से यहाँ नौ वाक्य उन्हीं के शब्दों में उद्धृत किए जा रहे हैं, जिनसे उनके सिद्धान्तों की सर्व व्यापकता में संदेह नहीं होगा।

(१) ईश्वर विश्वास—मैंने इस धर्म-कार्य का सर्व शक्तिमान् सत्य ग्राहक और न्याय सम्बन्धी परमात्मा के चरण में शीश धर उसी के सहाय के अवलम्ब से आरम्भ किया है। (भ्रांति निवारण भूमिका)

(२) जीवनोद्देश्य—सुनने और प्रश्नोत्तर होने के पश्चात सज्जनों को यही योग्य है कि सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करके स्वयं सदा आनन्दित होकर सबको आनन्दित किया करें। (ज्येष्ठ बदी १२ सं० १९४०, २ जून सन् १८८३ का विज्ञापन)

(३) अन्यायाचरण के साथ असहयोग—चाहे कोई हो, जब तक मैं न्यायाचरण देखता हूँ, मेल करता हूं, और जब अन्यायाचरण प्रकट होता है, फिर उससे मेल नहीं करता, इसमें कोई हरिश्चन्द्र हो व अन्य कोई हो (१९ मार्च १८७७ के कर्नल आल्काट के नाम लिखे पत्र से)

(४) आर्यावर्त देश की स्वाभाविक सनातन विद्या संस्कृत ही है··· "उसी से देश का कल्याण होगा। अन्य भाषा से नहीं (सत्यार्थ प्रकाश प्रथम संस्करण की लिखित प्रति में चौदहवें समुल्लास का लेख)

(५) स्वामी-सेवक का पारस्परिक वर्ताव—स्वामी सेवक के साथ ऐसा बरतें जैसा अपने हस्तपादादि अगों की रक्षा के लिये बर्तते हैं। सेवक स्वामियों के लिए ऐसे बरतें कि जैसे अन्न, जल, वस्त्र और घर आदि शरीर की रक्षा के लिए होते हैं (व्यवहार भानु)

(६) सार्वदेशिक भावना—यद्यपि मैं आर्यावर्त देश में उत्पन्न हुआ और बसता हूँ तथापि जैसे इस देश के मतमतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर यथातथ्य प्रकाश करता हूँ वैसे ही दूसरे देशस्थ वा मतोन्नति वालों के साथ भी वर्तता हूं। जैसा स्वदेश वालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में वर्तता हूँ वैसा विदेशियों के साथ भी, तथा सब सज्जनों को भी वर्त्तना योग्य है। (सत्यार्थप्रकाश भूमिका)

(७) मनुष्य—जो बलवान होकर निर्बलों की रक्षा करता है वही मनुष्य कहलाता है, और जो स्वार्थवश होकर परहानि मात्र करता रहता है, वह मानो पशुओं का भी बड़ा भाई है।

(८) राज्य—इस परम्परा की सृष्टि में अभिमानी, अत्याचारी, अविद्वान लोगों का राज्य बहुत दिन नहीं चलता। (सत्यार्थ प्रकाश ११)

(९) दुख सागर—विद्वानों के विरोध से अविद्वानों में विरोध बढ़कर अनेकविध दुख की वृद्धि और सुख की हानि होती है। इस हानि ने, जो कि स्वार्थी मनुष्यों को प्रिय है, सब मनुष्यों को दुःख सागर में डुबा दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानन्द के विचारों से जो सहमत नहीं थे, उन्होंने उनके विरोध में बहुत सी बातें बिना तथ्य या तर्क के आधार पर लिखी हैं। दयानन्द हर भारतवासी को शुद्ध और निर्मल चरित्र का संकल्पवान व्यक्ति बनाना चाहते थे। वे उसमें आत्मशक्ति का विस्तार करना चाहते थे। अतः उन्होंने ईसाई मत का खण्डन किया। ईसाई मत आत्मा के पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करता। यदि पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करेंगे तो मनुष्य मनुष्य में जो जन्मतः विषमता पाई जाती है, जो दुख मनुष्य को अकारण भोगने पड़ते हैं उनका अर्थ कैसे समझाया जाय? यदि पुनर्जन्म न हो तो ईश्वर को अन्यायी मानना होगा, जो मनुष्यों में विभेद पैदा करता है। यदि ईसाई मानते हैं; वैसे पाप को क्षमा कर देने वाला पामात्मा हो, तो वह दण्ड कभी देगा ही नहीं। मनुष्य बुरे कर्म करता है तो उसकी सजा उसे मिलनी ही चाहिये। अकेला क्राइस्ट मानव मात्र के पापों का भार अपने ऊपर कैसे ले सकेगा? ईसा का अपौरुषेय जन्म, ईसा का पानी पर चलना, पाँच रोटियों से पाँच हजार लोगों को खिलाना ऐसे चमत्कारों का भी महर्षि ने विरोध किया। वे मूर्तिपूजा मात्र के विरोधी थे। ईसा की प्रतिमा या सलीब या क्रास की पूजा को भी वे अंध श्रद्धा मानते थे। इस प्रकार से बुद्धिनिष्ठ, वैज्ञानिक दृष्टि अपनाकर दयानन्द ने अन्य धर्मों की कट्टरता का विरोध किया।

इस्लाम पर दयानन्द का आक्षेप यह था कि अल्लाह यदि सर्व-दयालु और प्राणी मात्र के प्रति कृपावंत है, तो फिर वह कुछ व्यक्ति विशेष या मिल्लत के बन्दों पर ही खास तौर से मिहरबान क्यों है? क्या ईश्वरीय करुणा या अल्लाह की रहम के यों हिस्से हो सकते हैं? यदि अल्लाह प्राणी मात्र के लिये दया रखता है, तो पशु बलि का विधान क्यों धर्मसम्मत हैं? काफिरों के प्रति जिहाद कैसे समर्थनीय है? चूंकि कुरआन में ऐसा पक्षपात है, तो वह ईश्वरीय वाणी कैसे हो सकती है, यह दयानन्द का प्रश्न है। बाइबल या कुरान को वे साक्षात्कार वाले ग्रन्थ नहीं मानते। दोनों ग्रन्थों में चमत्कारों का वे खण्डन करते हैं।

बौद्ध, जैन और चार्वाक आदि नास्तिक मतों की भी दयानन्द ने आलोचना की है। निरीश्वरवाद का वे विरोध करते हैं। चार्वाक मत के बाद तो उसके जो उपपन्थ हुए वे दयानन्द को मान्य नहीं हैं। धर्म में ऐसे केवल प्रत्यक्ष प्रामाण्य, केवल इस शरीर या संसार तक भौतिकवादी दृष्टि को सीमित रखना दयानन्द को स्वीकार नहीं। बौद्धों का 'सब्बा संखारा अनिच्चा' (सब संस्कार अनित्य हैं) यह जितना एकांगी और त्रुटिपूर्ण दयानन्द को लगा, वैसे ही चार्वाकवादियों का केवल इन्द्रिय-सुख का समर्थन भी एकांगी है। वस्तुतः सुख-दुख एक सापेक्ष और व्यामिश्र अनुभूति है।

उन्होंने वेद के सही अर्थ न जानने से हिन्दुओं में भी कितने पंथ-उपपंथ होते गये और हिन्दुओं की एकता कैसे निर्बल होती गयी, इसे भी अपनी स्पष्टोक्ति से अधोरेखित किया है। दयानन्द सब प्रकार के मन्त्र गढ़नेवाले, माला पूजने और तरह-तरह के वेष धारण करने वाले साधुओं की साधुता पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं। हिन्दू धर्म की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवनति का मुख्य कारण उसके ये स्वार्थी, अंधश्रद्धा फैलाने वाले ढोंगी तथाकथित धर्म प्रचारक हैं। हिन्दू धर्म में जो सुधारक पंथ हुए जैसे ब्राह्मो समाज या प्रार्थना समाज उनके विदेश के विचारों से आतंकित होने की आलोचना दयानन्द ने की है। दयानन्द के अनुसार ये लोग प्रच्छन्न ईसाई हैं और उनमें देशभक्ति की कमी है। वे खान-पान विवाह आदि में कोई नियम नहीं मानते, अतः उनकी नैतिकता सुविधाभोगी है, ऐसा दयानन्द का मत था।

महाभारत पूर्व वैदिक आर्य भारत को दयानन्द आदर्श समाज-व्यवस्था मानते थे। तब आर्य शांति, समृद्धि और आस्था से भरे हुए थे। महाभारत के बाद बहुत सी बुराइयाँ हिन्दू समाज में आ गईं। दयानन्द चार आश्रमों पर आधारित समाज व्यवस्था को आदर्श मानते थे। वे चार पुरुषार्थों में संयम और संतुलन पर बल देते थे। जाति प्रथा के आरम्भ में वर्ण आदि का महत्व रहा हो, अब यह कहना कि 'ब्राह्मण मुख से पैदा हुआ और शुद्र पैर से' अर्थशून्य है। मनुष्य का वर्ण आयु के २५ या २६ वें वर्ष में निश्चित करना चाहिये, गुण कर्म के अनुसार। मनुष्यों में कुछ भेद तो ईश्वर निर्मित हैं, कुछ मनुष्य-निर्मित। मनुष्य-निर्मित भेद एकदम बेमानी हैं।

दयानन्द के स्पष्ट विचार थे कि किसी भी समाज में आवश्यकता से अधिक धन जमा हो जाना सब तरह की ईर्ष्या, द्वेष, लोभ-मोह और घृणा भेद का मूल है। पूंजी ही विलासिता की जननी है। अतः उसका समाज के सत्कार्य के लिए विनियोग आवश्यक है। दयानन्द विदेशी भाषा और विदेशी सत्ता के प्रखर विरोधी थे। वे चाहते थे कि वेदकालीन भारत का पुनराविर्भाव कार्य हो तो सब समस्याओं का निदान पाया जाए।

दयानन्द के निर्वाण के बाद एक शताब्दि बीत गई १८९३ में ही अँग्लो-वैदिक कालेज, लाहौर के दो दलों में मतभेद आरम्भ हो गए। दयानन्द वैदिक शिक्षा और अनिवार्य संस्कृत के पक्ष में थे। १९०२ में हरिद्वार में गुरुकुल स्थापित हुआ। बाद में अंग्रेजी भी शिक्षा का विषय बन गया। कई आर्य समाजी कालेज अन्य कालेजों की तरह उपाधि वितरण के केन्द्र मात्र बन गये। १८७७ में फिरोजपुर में पहला अनाथालय खोला गया। अकाल के समय उसमें कई असहाय बालकों को सुरक्षा मिली। १९०५ में कांगड़ा पार्वत्य क्षेत्र में भूचाल आया। आर्य समाज ने बड़ा सेवा कार्य किया। आर्य समाज ने राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। ब्रिटिश शासन के दमन का उसे शिकार होना पड़ा। आर्य समाज प्राचीन परम्परा को रखकर उसके साथ साथ भविष्य की ओर भी देखता था। अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय करना चाहता था, जो बात पचास वर्ष बाद विनोबा भावे ने फिर से दुहराई। आर्य समाज ने देश में कर्मण्यता की चेतना फैलाई। आत्मावलम्बन पर आग्रह रखा। अध्यवसाय, मितव्यय, दूरदर्शिता, निर्व्यसनशीलता का जीवन में मूल्यों की तरह प्रचार-प्रसार किया। हिन्दू समाज के एक बड़े हिस्से को उत्तर भारत में आर्य समाज ने अनुशासनबद्ध किया। यह सारा श्रेय दयानन्द के विलक्षण व्यक्तित्व और नेतृत्व को जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाला लाजपतराय की 'आर्य समाज के इतिहास' नामक पुस्तक की १९१५ में सिडने वेब ने भूमिका लिखी। उसमें दयानन्द को मार्टिन लूथर जैसा सुधारक और योरपीय रिफार्मेशन के नेता की तरह इतिहास का शलाका-पुरुष माना गया है। पांडेय की पुस्तक 'दी आर्य समाज एण्ड इण्डियन नैशनैलिज्म' में दयानन्द की तुलना 'भारतीय एलिजाह या जौन दि बैप्टिस्ट' से की है, जो भारत को पुनः अपने प्राचीन गौरवशाली सुवर्णयुग में ले जाना चाहते हैं। वे वर्तमान को अतीत से अनुप्रेरित करना चाहते थे। दयानन्द की प्रेरणा से आर्य समाज ने अनेक श्रेष्ठ लेखक, इतिहासकार, देशभक्त, विद्वान शिक्षा शास्त्री और सामाजिक कार्यकर्त्ता देश को दिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मा गाँधी

(२ अक्टूबर १८ ९—३० जनवरी १९४८)

महर्षि दयानन्द और कार्ल मार्क्स के बाद हम महात्मा गाँधी की विचार-धारा पर आते हैं। गाँधी जी के जीवन और कार्य से हम सब इतने सुपरिचित हैं कि मैं उसके बारे में और कुछ नहीं कहूंगा। सीधे उनके विचार-दर्शन की विशिष्टताओं पर आना चाहता हूं। कहा जाता है कि मोहनदास गाँधी जब अफ्रीका से भारत में आए तो एक आर्य समाज की सभा में उन्हें 'महात्मा' उपाधि दी गई। गुजरात में सौराष्ट्र के पोरबन्दर के एक वैश्य परिवार में उनका जन्म हुआ था। जब वे हाई स्कूल में थे तब उनका एक तगड़ा और बहिर्मुखी मुस्लिम छात्र-बन्धु शेख महताब पहला मित्र बना। पिता की मृत्यु १८८७ में हुई तब उनका विवाह उनकी उम्र से थोड़ी बड़ी कस्तूरबा से हो चुका था। एक राजचन्द्र कवि नामक जैन आशु कवि का गाँधी के मन पर बड़ा प्रभाव पड़ा, जिनकी सन् १९३० में अकाल मृत्यु हो गई। गाँधी जी के बचपन में और कोई बड़े मित्र या ऐसी पुस्तकें जिनका उनके मन पर प्रभाव पड़ा हो, उल्लेख नहीं मिलता। हाँ, 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक उन्होंने जरूर लिखा। उनकी माँ और उनकी पत्नी कस्तूरबा यही दो बड़े प्रभाव इंगलैण्ड जाने से पहले के मिलते हैं।

१८८८ में गाँधी साउदंपटन, इंगलैंड में वकील बनने के लिये, पानी के जहाज से गये। अंग्रेजी भाषा उन्हें बहुत कठिन जान पड़ती थी। घरवाले भी 'विलायत में जाकर छोरा बिगड़ जायेगा' इसी मत के थे। इंगलैंड में उनका तीन वर्ष का निवास कई दृष्टियों से बहुत अर्थपूर्ण था। यहीं उन्होंने बाइबिल पढ़ी। गीता का एडविन आरनाल्ड का अंग्रेजी अनुवाद पढ़ा। उनकी आत्म कथा में वर्णन है कि उस समय के अंग्रेज-परस्त भारतीय छात्रों की तरह उन्होंने अपनी जीवन-पद्धति ढालने की कितनी कोशिश की—विलायती नाच सीखा, फ्रेंच सीखने की कोशिश की। पर सबसे विरक्ति होती गई। शाकाहारी सभा के मेम्बर बने, सबसे अधिक प्रभाव एकिन की 'अंटू दि लास्ट' का पड़ा। भारयीय नेताओं के इंगलैंड निवास और उस कार्य-काल में अंग्रेजी सभ्यता के स्पर्श में आने पर होनेवाला मन का द्वन्द्व और अधिकांश विरति के अनेक उदाहरण हैं। दयानन्द को छोड़कर प्रायः सभी भारतीय नेताओं ने, उन्नीसवीं बीसवीं सदी के नवजागरण काल में विलायत की यात्रा की। तिलक, गोखले, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अरविंद, राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, विवेकानन्द, सावरकर, एम० एन० राय, राधाकृष्णन, कृष्णमूर्ति, इकबाल, कुमारस्वामी, नेहरू किसी का भी नाम लें—उनपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विलायत का, या पश्चिम का अनुकूल, प्रतिकूल और अनुकूल-प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। यदि गांधी इंगलैंड न जाते और मैक्समूलर की पुस्तक 'हिन्दू धर्म से हमें क्या सीखना है?' न पढ़ते तो 'हिन्द स्वराज्य' कैसे लिखते। रस्किन की पुस्तक का अनुवाद 'सर्वोदय' कैसे करते। टालस्टाय से पत्र-व्यवहार और थोरो की 'पैसिव रेजिस्टेंट' से प्रभावित नया सत्याग्रह का मार्ग कैसे खोज निकालते।

गाँधी जी के बारे में और एक महत्वपूर्ण बात हमें भूलनी नहीं चाहिये। वे बचपन से मुस्लिम संस्कृति के सम्पर्क में आए। अप्रैल १८९३ को वे दक्षिण अफ्रीका में डरबन में एक मुस्लिम व्यापारी फर्म के वकील बनकर गए। वहाँ १९१४ की जुलाई तक वे रहे। सेठ अब्दुल्ला के विरोधियों से गाँधीजी ने समझौते के झगड़े निपटाने का मार्ग सुझाया। दक्षिण अफ्रीका में काले-गोरों का 'जातीय' (एथ्निक) विरोध—अहिनकुलवत् विरोध—वे प्रत्यक्षदर्शी बनकर देख सके। तामिल बँधुआ मजदूरों की हालत उन्होंने देखी। और शारीरिक दमन के वे शिकार बने। एक ओर जैन और ईसाई संस्कारों वाली अहिंसा, दूसरी ओर ईसाईयत और सभ्यता का नाम लेने वाली गोरी सरकार के साम्राज्यवादी और उपनिवेशवादी शोषण के पंजे। मुँह में राम नाम बगल में छुरी। कई आतंकवादी तो पश्चिम में जाकर और अधिक विप्लवी हो गए। गाँधीजी ने दूसरा और अधिक कठिन मार्ग अपनाया। अफ्रीका में काले लोग रेल में, घोड़ा गाड़ी में गोरों के साथ बैठ नहीं सकते थे। गाँधी ने सोचा भारत में हम अछूतों और दलितों के साथ कैसा व्यवहार करते हैं? क्या वह मानवीय है? जोहानेसबर्ग जाते 'स्टेज कोच' में और ट्रेन में उन्हें अपमानित होना पड़ा। गाँधी को गोखले और दादा भाई नौरोजी का आशीर्वाद मिला। आरम्भ से ही गांधी अनेक भाषा-भाषियों, अनेक प्रदेशों, अनेक धर्म पंथों के लोगों के सम्पर्क में आए। काश ऐसा संयोग और नेताओं के जीवन में आता।

गाँधी साप्ताहिक "इण्डियन ओपीनियन" पत्र निकालने लगे। पादरी हेनरी पोलक ने उन्हें रस्किन का 'अंटू दि लास्ट' पढ़ने को दिया। बोअर युद्ध में १८९९ से १९०२ तक गांधी ने धर्म युद्ध के अनुसार अपना दक्षिण अफ्रीका सत्याग्रह स्थगित किया। उन्होंने एम्बुलेन्स कोर में सहायता दी। जुलू विद्रोह (१९०६ से ७) में वालंटियर बने। गाँधी के जीवन में चार बार ऐसा आंशिक हिंसा का समर्थन मिलता है, जबकि वे कट्टर अहिंसा के पुजारी थे। अहिंसा को ही ईश्वर मानते थे। एक तो बोअर युद्ध के समय, दूसरी बार उन्होंने सेना का समर्थन कश्मीर पर हमलावरों के आक्रमण के समय किया। उससे पहले बछड़े को साबरमती आश्रम में गोली मार कर 'मर्सी किलिंग' का उन्होंने समर्थन किया। और एपेंडिसाइटिस के आपरेशन में शरीर पर शल्य-क्रिया उन्होंने होने दी, यद्यपि वे चेचक का टीका लेने के विरुद्ध थे।

१९१५ में गांधी भारत लौटे। शांतिनिकेतन में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के वे और सी० एफ० एण्ड्यूज अतिथि बने। बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी में उन्होंने महा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
राजाओं के गहने-कपड़ों का मज़ाक उड़ाते हुए एक तीव्र भाषण दिया। राजकुमार शुक्ल नामक किसान ने गाँधी को चम्पारण के निलहे मजदूरों की दुर्दशा देखने के लिए आग्रह किया। यहीं से 'सत्याग्रह' की शुरुआत भारत में हुई। पहले सत्याग्रह आन्दोलन की विशेषताएं थीं—पहले किसी भी अन्याय की पूरी जांच करना, किसानों के बच्चों के लिये स्कूल खोलना, जो अन्याय कर रहे थे उन लोगों को भी कानून से सजा दिलवाना, यानी दण्ड देने का अधिकार अपने हाथ में न लेना। १९१८ में गाँधी ने अहमदाबाद के तन्तु मिल-मजदूरों के मामले में मालिक और श्रमिकों में पंच फैसले वाली बात, समझौते से सुलह कराने की बात शुरू की। एरिक एरिकसन गाँधीजी के पिता की मृत्यु का प्रसंग और अहमदाबाद की हड़ताल को अपने 'गाँधीज ट्रूथ' में बड़ा मनोवैज्ञानिक महत्व देते हैं। १९१९ से गाँधी राजनैतिक प्रश्नों में पूरी तरह जुड़ गये। परन्तु रचनात्मक कार्यक्रम भी साथ-साथ चलता रहा।

'आभार जीवन का आमार बानी' गाँधी रवीन्द्र की इस उक्ति को अपने आटोग्राफ की तरह देते थे। उनका जीवन एक खुली पुस्तक थी। साबरमती और सेवाग्राम के आश्रमों में गाँधीजी ने ग्यारह व्रतों को अपने जीवन में अपनाया और अपने अनुयायियों को भी उन्हें अपनाने को कहा—

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, असंग्रह,
शरीरश्रम, अस्वाद, सर्वत्र भयवर्जन,
सर्वधर्मी समानत्व, स्वदेशी, स्पर्श-भावना,
ही एकादश सेवावी नम्रत्वे दृढ़निश्चये ।।

विनोबा भावे ने दो अनुष्टुपों में ये ग्यारह व्रत गूंथे हैं। ये अनुष्टुप आश्रम की सवेरे शाम की प्रार्थना के अंग थे। गाँधी अपने विचारों को बराबर विकासमान रखते गये। अपने आपको बदलते, सुधारते गये। जैसे उनका वेश। इंगलैंड में थ्री पीस सूट पहनते थे; बोअर युद्ध के समय सैनिक पोशाक स्वयंसेवक के नाते, फिर दक्षिण अफ्रीका में कोट और पतलून, फिर भारत में कठिवाडी पगड़ी-अँगरखा-धोती, टोपी-कुर्त्ता, अन्त में धोती और एक उत्तरीय [जाड़े में शाल]। एक एक करके वे अपनी आवश्यकताएं कम करते गए। अन्त में भी नमक सत्याग्रह के समय नमक छोड़ दिया सो छोड़ ही दिया। बंगाल में फूका पद्धति देखकर गाय का दूध छोड़ दिया, तो बाद में बकरी का दूध ही लेने लगे। गाँधी का भोजन में भी हाथ कुटे चावल, हाथ पिसे आटे का प्रयोग चलता रहा। मसाले उन्होंने छोड़ दिए। आजीवन उन्होंने कोई मिठाई नहीं खाई, चाय, काफी नहीं पी। और व्यसन तो दूर की बात है। एक साधा झोपड़ी में अपने हाथों से अपने वस्त्रों के लिए सूत कातते। और इतना बड़ा कार्य किया। उन्होंने भारतीय किसानों के साथ अपने को एकाकार कर लिया।

१९३१ में जब रोम्यां रोलां गाँधी से मिले तो उन्होंने अपने एक मित्र को लिखा। "उनका मन निरन्तर प्रयोग करता जाता है। उनकी कर्मण्यता में एक सीधी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेखा नहीं होती। दस साल पहले उन्होंने क्या कहा, उससे आज उन्हें जांचना ठीक नहीं होगा।" वे जब कहते थे कि "स्वराज्य की लड़ाई और पाखाना सफाई में सम्बन्ध है", तो वे सिर्फ चौंकाने वाले शब्द मात्र नहीं थे। वे जीवन को एक समग्र इकाई की तरह मानकर चलते थे। उनके लिए शरीर, मन और आत्मा 'दस्त, दिल और दिमाग' (हेड, हार्ट एण्ड हैंड) तीन अलग-अलग चीजें नहीं थी। ज्ञान-भक्ति-कर्मयोग का समन्वय ही उनका सच्चा जीवनयोग था।

गाँधी में पूर्व और पश्चिम की विचारधाराओं का विलक्षण मिश्रण मिलता है। दयानन्द पश्चिम-विरोधी थे, धार्मिक दष्टि से। वैदिक धर्म उनकी दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ था। इस्लाम और ईसाई धर्म का इसी कारण से खण्डन करते हैं। पर गाँधी सर्व-धर्म-समभाव लेकर चलते हैं। गाँधी की दृष्टि में मानव अपूर्ण है, उसके बनाये सब धर्म अपूर्ण हैं। यह 'हर्फे आखिर' मानने वाले कट्टरपन्थी धर्मों के 'फण्डामेंटालिज्म' का सीधा जवाब था। इस तरह का 'एकमात्र सत्य मेरे पास है' और सब विश्वास असत्य हैं, मानना अय्यातोला खोमेनी या हिटलर या तत्सम अविवेक पर आश्रित अनुदार विचारों को जन्म देता है।

यहाँ गाँधी जी के राजनैतिक दर्शन के कुछ सिद्धान्तों को जानना जरूरी है। पॉल पावर ने गाँधी की 'राष्ट्र' सम्बन्धी विचारधारा का विश्लेषण इन शब्दों में किया है: "कर्म या श्रम, पृथ्वी और जीवन का नारी-पक्ष गाँधी जी के समाज-दर्शन के तीन प्रधान प्रतीक हैं, (एस० एस० नेहरू के जर्मन लेख: डाई सोजियालिढी इन स्टाटे गाँधीज) यहाँ नारी तत्त्व से तात्पर्य है करुणा या समन्वय से। कभी कभी गाँधी 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग समाज-व्यवस्था के अर्थ में करते थे। वे कभी-कभी एक समान इतिहास और नियति वाली जनता की इकाई को राष्ट्र कहते थे। विन्स्टन चर्चिल जैसे ब्रिटिश भारत में अनेक भाषाओं, धर्मों, पन्थों के कारण कई राष्ट्र देखते थे, पर गाँधी सब भारतीयों को एक ही राष्ट्र का अंग मानते थे। उनके निकट राष्ट्रीयता केवल राजनैतिक विचारधारा नहीं, बल्कि भौगोलिक-सांस्कृतिक अभिव्यंजना थी।"

एक ओर उदारमतवादी यूरोपीय राजनीतिज्ञ हैं जो फ्रेंच राज्य-क्रांति के बाद जन-जन के 'स्वतन्त्रता, समता, बंधुता' के नारे को प्रधान मानते थे। दूसरी ओर इटली के ग्युसेपे मैज़िनी का अन्तर्राष्ट्रीयता पर आधारित उत्तरदायित्व का सिद्धान्त था। आयरलैंड के डी वैलेरा के या जापानी राज-भक्तिपूर्ण राष्ट्र-प्रेम से गाँधी का सिद्धान्त भिन्न था। एक ही देश में अनेक सांस्कृतिक इकाइयां होने पर भी उनका एक राष्ट्र बन सकता है, वह बीसवीं सदी की राष्ट्रीयता की कल्पना गाँधीजी को पसन्द थी। 'माडर्न रिव्यू' के अक्टूबर १९५३ के अंक में एण्टनी एलेनजिट्टम ने 'ग्युसेपे मैज़िनी और महात्मा गाँधी' के बीच में तुलना और समानता की चर्चा की है। गाँधी ने 'इण्डियन ओपीनियन' के जून २७, १९०८ के अंक में अमेरिका का उदाहरण देकर लिखा था कि वहाँ भी तो कई तरह के लोग, कई धर्म, वर्ण, भाषाएँ बोलने वाले हैं, जो संयुक्त राष्ट्र बन गए हैं। भारत के लिये वह क्यों सम्भव नहीं? जब लार्ड बर्कनहेड ने कहा कि भारत राष्ट्र नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
है, तब 'यंग इण्डिया' में जुलाई २३, १९२५ के अंक में गांधी जी ने साग्रह लिखा—
"हमारी दृढ़ धारणा है कि सारे व्यावहारिक मामलों में भारत एक राष्ट्र है।"

सच्ची बात यह थी कि गाँधी जी कभी भी केवल भौतिक जगत् और उसके सैन्य, शस्त्र, सत्ता पर आधारित शक्तिशाली राष्ट्र-तन्त्र में विश्वास नहीं करते थे। उनके विचार से ऐसे राष्ट्र का कोई अर्थ नहीं था, जिसका आधार आध्यात्मिक न हो, जिसके पीछे परमात्मा का अधिष्ठान न हो। अतः उनके विचार से आदर्श राज्य राम-राज्य ही हो सकता था। वे विकेन्द्रीकरण वाले ग्राम-राज्य में विश्वास करते थे। वे पूर्णतः अराजकवाद में विश्वास नहीं करते थे। टालस्टाय की तरह वे राष्ट्रहीन अवस्था दुनिया में हो जायगी, ऐसा नहीं मानते थे। कम्युनिस्टों की तरह वे जन-जातियों पर आधारित छोटे-छोटे राष्ट्रों की आत्म स्वतन्त्रता वाली बात भी सही नहीं मानते थे। पी० सी० जोशी से उनका इस सम्बन्ध में विचार-विनिमय प्यारे लाल की 'महात्मा गाँधी : पूर्णाहुति' ग्रन्थ में विस्तार से दिया गया है। वे प्राचीन धर्म-राज्य के बदले प्रजाराज्य चाहते थे। वे राजा जैसे किसी एक व्यक्ति-संस्था में विश्वास नहीं करते थे। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में १९१६ में उनका राजाओं की वेश-भूषा पर कड़ा भाषण इसका प्रमाण है कि वे उस तरह के ऐश्वर्य-प्रदर्शन और सामन्ती वैभव-विलास को गलत मानते थे।

गांधी धर्म-संस्था और राष्ट्र-संस्था के एकीकरण के विरोधी थे। पोप हो या दलाई लामा, गाँधी यह मानने से इन्कार करते थे कि राष्ट्र का सूत्र किसी धर्म-प्रचारक के हाथों में हो। यों गाँधी महाभारत के इस वचन में विश्वास करते थे—"असाधुश्चैव पुरुषो लभते शीलम् एकदा।" (१२-२५९-११) हर पापी को भविष्य में सन्त बनने की आशा है। इस कारण से वे ईसाईयों के इस मत के बहुत निकट थे कि "पाप से घृणा करो, न कि पापी से।" उनके लेखे राष्ट्र जैसी संस्था में अपने आप कोई सद्गुण या दुर्गुण नहीं छिपे हैं। परन्तु उसके उपयोग पर यह निर्भर करता है कि क्या परिणाम निकलता है। यों राष्ट्र भी एक उपकरण मात्र है। मैक्स वेबर के कथन के बहुत करीब गाँधी जी का यह मत-विश्वास था कि "राष्ट्र एक तांत्रिक साधन-मात्र है, वह अपने-आप में कोई मूल्य या साध्य नहीं।"

टी० एच० ग्रीन आदि पाश्चात्य नीतिशास्त्रज्ञ राष्ट्र की नैतिक जिम्मेदारी की बात करते हैं। पर गाँधी जी राष्ट्र संस्था को ऐसी कोई इयत्ता या महत्ता नहीं देते। गाँधी जी जन-साधारण में विश्वास करते हैं। और इस कारण से प्रत्येक व्यक्ति के अच्छे होने पर जोर देते हैं। वे नहीं मानते कि राष्ट्र जैसी कोई सत्ता दण्ड के सहारे मनुष्य मात्र को सुधार सकती है। वे इसी कारण से ग्राम-पंचायत से शुरू करना चाहते हैं। छोटी-छोटी इकाइयों से वे अपना आदर्श राज्य बनाते हैं। उनके लेखे सत्य और अहिंसा व्यक्तिमात्र का कर्त्तव्य और धर्म है। उसीमें से आगे चलकर राष्ट्र बनते हैं, जो अच्छे और बुरे मार्गों का और नीतियों का अनुसरण करते हैं। इसलिए राष्ट्र सुधर सकते हैं, अच्छे या बुरे हो सकते हैं। और यह सब व्यक्ति के सुधार पर निर्भर करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाँधी जी का साम्यवाद के सम्बन्ध में क्या रुख था और साम्यवादी उन्हें क्या क्या समझते रहे, यह दर्शनीय है। गाँधी जी ने गत महायुद्ध के समय जेल-यात्रा में कार्ल मार्क्स के 'डास कैपीटल' और एंगेल्स, लेनिन, स्तालिन आदि की कुछ किताबें पढ़ीं। परन्तु मार्क्सवादी पार्टियों के भारत में और भारत के बाहर के कारनामों से वे बिल्कुल अनभिज्ञ रहे हों, ऐसा नहीं माना जा सकता। भारत की कम्युनिस्ट पार्टी भी कभी उन्हें ग्रामीण प्रतिक्रियावादी, कभी पूँजीवादियों का एजेण्ट और बाद में महान राष्ट्रीय नेता कहती रही।

गाँधी जी १९१७ वाली रूस की अक्टूबर क्रांति के बाद कम्युनिस्ट विचार-धारा के प्रति दो-तीन तरह के रुख रखते रहे : एक तो उस साम्यवाद से भारत को कोई खतरा नहीं है। दूसरे, सोवियत कम्युनिज्म के बारे में हम बहुत कम जानते हैं, तीसरे, कम्युनिज्म में निहित हिंसा, नास्तिकता और वर्ग-युद्ध के सिद्धान्त का विरोध। १९१४ में गाँधी जी को सोवियत रूस से निमन्त्रण मिला था, वे यहाँ के स्वतन्त्रता आन्दोलन की सहायता करना चाहते थे। परन्तु गाँधी जी ने उसे अस्वीकार कर दिया। 'यंग इण्डिया' में उन्होंने लिखा, "मुझे किसी भी प्रकार के हिंसक उद्देश्य के लिए उप-योग में लाना असफल होगा।" १९२८ में गाँधी जी ने कहा, "मैं स्वीकार करता हूं कि मुझे बोल्शेविज्म का पूरा अर्थ समझने में नहीं आया है। मुझे बताया गया है कि यह वाद वैयक्तिक सम्पत्ति का नाश चाहता है। अपरिग्रह के नैतिक आदर्श का अर्थनीति के क्षेत्र में प्रयोग ही शायद यह विचारधारा थी। यदि यही काम शान्तिपूर्ण तरीकों से किया जाए तो यह आदर्श बात होगी, परन्तु जहाँ तक मैं जानता हूं बोल्शेविक विचार-धारा हिंसा-शक्ति से परहेज़ नहीं करती। उलटे वैयक्तिक-सम्पत्ति के विनाश की पूरी अनुमति देती है। यदि यह सच है तो ऐसा बोल्शेविक राज अधिक समय तक नहीं चल सकेगा। मेरा दृढ़ विश्वास है कि हिंसा पर आधारित कोई भी चीज चिरस्थायी नहीं हो सकती। परन्तु इस विचारधारा के पीछे लेनिन जैसी महान् आत्माओं और अनेक नर-नारियों का त्याग और बलिदान है और वह व्यर्थ नहीं जाता।"

एक वर्ष बाद गाँधी पर यह आरोप लगाया गया कि वे उस साम्राज्यवाद-विरोधी संघ के सदस्य हैं, जिसका कम्युनिस्टों ने नेतृत्व किया था। रोम्याँ रोलां, जार्ज लैन्सबेरी, अलबर्ट आइन्स्टाइन, मादाम सुन्यातसेन आदि इस संघ के विरोधी थे और उन्होंने गाँधी जी पर यह आरोप लगाया। गाँधी जी नहीं जानते थे कि इस संघ का मूल संचालन मास्को से चलता है। नेहरू भी इस संघ के सदस्य थे, १९३० तक। बाद में उन्हें इस 'लीग एगेन्स्ट इम्पीरियलिज्म' ने अपनी सदस्यता से वंचित कर दिया (नेहरू जी की 'बंच आफ ओल्ड लेटर्स' पृ० ११४ तथा ब्रेचेर की जीवनी के पृष्ठ ११३-११५)। १९३० के बाद तक गाँधी जी साम्यवाद की ओर एक अद्भुत-रम्य दृष्टि से देखते थे। अपने आप को वे अहिंसक साम्यवादी मानते थे।

दूसरे महायुद्ध के आरम्भ में गाँधी जी कम्युनिस्ट कूटनीतिज्ञता से आगाह हुए। १९३८ में हिटलर और पश्चिम के जनतन्त्रों के बीच म्युनिख समझौते पर लिखते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाँधी ने सोवियत रूस के बारे में लिखा कि "यहाँ का तानाशाह रक्त के समुद्र में चल-कर शांति का सपना देखता है।" युद्ध शुरू होने पर एक वर्ष बाद अगस्त २३, १९३९ की जर्मन-सोवियत सन्धि को और पोलैंड या दोनों राष्ट्रों के आक्रमणों को उन्होंने 'दुखद' बतलाया। फिर भी उन्हें कुछ आशा थी। जून १९४१ के बाद सोवियत-जर्मन सन्धि टूटने पर गाँधी को अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद उतना ही आक्षेपार्ह लगा जितना नाज़ीवाद। १९४४ में गाँधी जी ने भारतीय साम्यवादी दल के मन्त्री के साथ हुई चर्चा में रूस के अवसरवाद और ब्रिटिश साम्राज्यवाद विरोध-विस्मरण प्रश्न पर गाँधी जी को लगी ठेस उन्होंने व्यक्त की है। "भारत जब गुलाम है तब गुलाम जनता का कैसा युद्ध ?" गाँधी ने पूछा। गाँधी जी भारतीय साम्यवादी दल से, इस प्रकार से, दूर हटते गये। और अपने जीवन के अन्त तक वे उसे क्षमा न कर सके। १९४६ में उन्होंने यहाँ तक लिखा कि भारतीय साम्यवादी "अच्छे-बुरे, सत्य-असत्य के बीच में कोई भेद-भाव नहीं करते।" फिर भी व्यक्तिगत रूप से उन्होंने साम्यवादियों के हृदय-परिवर्तन में विश्वास नहीं छोड़ा। गाँधी जी ने इटली के फासिस्टवाद और जर्मनी के नाजीवाद की जिन कारणों से बुराई की, ठीक वही दोष उन्हें साम्यवाद में भी दिखाई दिये।

पंचगणी में जुलाई, १९४६ के अन्तिम सप्ताह में लुई फिशर की गाँधी जी से जो बातचीत हुई, जिसका ब्यौरा प्यारेलाल जी ने ४-८-१९४६ के 'हरिजन' में दिया था, उससे यह पता चलता है :

"गाँधी जी ने कहा—'हमारे समाजवादी भाइयों की त्याग और सेवा की भावना के लिए मेरे मन में बहुत प्रशंसा-भावना है, फिर भी मैंने उनके और मेरे तरीकों में जो तीखा अन्तर है उसे कभी नहीं छिपाया है। वे तो स्पष्टतः खुले आम हिंसा में विश्वास करते हैं और उसके साथ जो कुछ भी उसमें छिपा है उसमें भी। मैं अहिंसा में पूरी तरह विश्वास करता हूँ।"

"इससे चर्चा समाजवाद की ओर मुड़ी। फिशर ने बीच में बात काटते हुए कहा, 'तो वे भी समाजवादी हैं और आप भी हैं।"

"गाँधी जी ने उत्तर दिया, 'मैं हूँ, वे नहीं हैं। उनमें से बहुत-से नहीं जनमे थे तब का मैं समाजवादी हूँ। जोहान्सबर्ग में एक कट्टर समाजवादी की नजर में भी समाजवादी था। पर वह बात तो अब न यहाँ की है न वहाँ की। मेरी बात तो तब भी रहेगी जब समाजवाद भी नहीं रहेगा।"

"आपके समाजवाद का क्या मतलब है ?"

"मेरे समाजवाद का अर्थ है 'अन्तिम व्यक्ति तक भी' या सर्वोदय। मैं अन्धों, बहरों और गूंगों की राख पर नहीं खड़ा होना चाहता। उनके समाजवाद में, शायद इन लोगों के लिए कोई स्थान नहीं है। उनका एकमात्र उद्देश्य है भौतिक प्रगति। उदाहरणार्थ अमेरिका चाहता है कि हर नागरिक के पास एक कार हो जाये। मैं नहीं चाहता। मैं तो अपने व्यक्तित्व के पूरे विकास के साधन चाहता हूँ। यदि मैं चाँद तक सीढ़ियां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाना चाहूं तो उसको मुझे स्वतन्त्रता होनी चाहिये। इसका मतलब यह नहीं है कि मैं ऐसा कुछ करना चाहता हूं। उस तरह के समाजवाद में कोई व्यक्तिगत स्वतन्त्रता नहीं है। वहां तो तुम्हारे पास किसी चीज़ पर अधिकार नहीं। अपने शरीर पर भी नहीं।"

"मेरे और उनके समाजवाद में यह फर्क है। मेरे समाजवाद में यह होगा कि सरकार किसी चीज पर कोई अधिकार या सत्ता नहीं रखेगी। रूस में तो राज्य ही सर्व-सत्ताधारी है। वहां तो आप कोई गुनाह न करें तो भी सुनता हूँ, किसी भी समय आप गिरफ्तार हो जा सकते हो। वहाँ आपको चाहे जहां भेज दे सकते हैं।"

"क्या आपके आदर्श समाजवाद में, राज्य बच्चों को शिक्षित करने का यत्न नहीं करेगा?"

"सभी राज्य करते हैं। अमेरिका भी।"

"तो अमेरिका रूस से बहुत भिन्न नहीं है।'

"असल में आप तानाशाही के विरुद्ध हैं।'

"समाजवाद तो तानाशाही है या फिर आरामकुर्सी का दर्शनमात्र है।"

ऐसी यह बातचीत चलती रही जिसमें गाँधी जी ने समाजवाद और साम्यवाद के मिश्रण की भी बात की। लुई फिशर ने स्वीकार किया कि मार्क्स के मूल सिद्धान्तों को पहले लेनिन ने क्रांति द्वारा जमीन पर उतारा, और बाद में स्तालिन ने और भी उन्हें विकृत कर दिया। और इस प्रक्रिया में मूल उद्देश्य से समाजवाद दूर-दूर होता चला गया—ठीक जैसे धर्म अपने मूल स्थान से बदलकर रूढ़ियों से जकड़ जाता है।

मानव समता की बात सभी करते हैं। पर क्या वह संभव है? और संभव भी हो तो कहाँ तक?

गाँधी जी यन्त्रों के विरुद्ध थे, ऐसा भी एक प्रवाद फैलाया गया है, पर वे मोटर रेल, घड़ी, टेलीफोन, माइक्रोफोन, सीने की मशीन आदि का उपयोग करते थे। बाइ-सिकल के भी वे विरुद्ध नहीं थे। वस्तुत: वे मशीन के गलत उपयोग के विरुद्ध थे। वे यांत्रिकता के विरुद्ध थे। मैक्स वेबर ने अपने समाजशास्त्र के ग्रन्थों में लिखा है कि कार्ल मार्क्स अपने वर्ग-विग्रह मिटाने के लिए व्यापक औद्योगीकरण के सिद्धान्त के प्रचार के जोश में भूल गया कि यंत्रों के साथ जो फुरसत आयेगी, जो इफरात से उत्पादन होगा उसमें मनुष्य कैसे अकेला पड़ता चला जायेगा? यह आत्म-निर्वासन उसके लिए शाप की तरह सिद्ध होगा। और इसीलिए उन्होंने 'मनुष्य और मशीन' के सिलसिले में कहा था:

मैं तो बिना किसी हिचकिचाहट से दृढ़तापूर्वक कहूंगा कि दुनिया में मास प्रोडक्सन (विशाल परिमाण पर उत्पादन) का पागलपन ही आज की दुनिया के सारे संकटों का मूल है। यह भी मैं क्षण-भर मान लूं कि मशीन से सारी मानव-जाति की सब जरूरतें पूरी की जा सकेंगी, फिर भी उससे उत्पादन कुछ ही क्षेत्रों में केन्द्रित हो जायगा। और फिर वितरण को नियन्त्रित करने के लिये उलटे और व्यवस्था करनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ेगी। यदि उत्पादन और वितरण, अपने-अपने क्षेत्रों में आवश्यकतानुसार स्वयं नियंत्रित होते चलें तो फिर अप्रामाणिकता को और सट्टेबाजी को प्रश्रय नहीं मिल सकेगा।

वस्तुतः मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण न हो यह सिद्धान्त अस्तेय व्रत पर निर्भर है। वेदों में कहा गया है—

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः
सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य।
न अर्यमण पुष्यति नो सखायं
केवलाघो भवति केवलादी॥

(अर्थ—संकुचित दृष्टि वाले मनुष्य को मिली हुई धनराशि व्यर्थ है। उसके घर में यह राशि नहीं संचित है, बल्कि उसका मरण संचित है। जो भाई-बहन को नहीं देता, सुपात्र को नहीं देता और केवल अपने तक ही देख पाता है, ऐसा आदमी पाप रूप है।)

अर्थोत्पादन की प्रत्येक सीढ़ी के बारे में गाँधी जी के विचार उपयोगी हो सकते हैं। उत्पादन, वितरण, विनिमय, उपभोग—सभी क्षेत्रों में। खेतों में उपज की ही बात लें तो गाँधी जी जीवनोपयोगी आवश्यक वस्तुओं की कृषि के पक्ष में थे, केवल नगद मुनाफा दिलाने वाली पैदाइश या 'कैश क्रॉप' के पक्ष में नहीं थे। तमाखू या अफीम की खेती से ज्यादा मुनाफा होता है तो उसी को बो रहे हैं, चावल या गेहूँ के लिये विदेशों के आगे हाथ पसार रहे हैं, यह बात गाँधी जी पसन्द नहीं करते थे। गन्ने या कपास की उपज में भी ध्यान विदेशी मुद्रार्जन पर रखने की बात उनकी समझ में नहीं आती थी। कृषि में वे आत्म-निर्भरता को प्राथमिकता देना चाहते थे।

अन्न और वस्त्र में स्वावलम्बन पर जोर देने से गाँधी जी दस्तकारी या हस्तोद्योग को महत्व देते थे। वे तन्तु-मिल व्यवसाय में भी मालिक और मजदूर दोनों पक्षों में परस्पर-सहयोग और परस्पर-चर्चा से लाभ का वितरण चाहते थे। अहमदाबाद में किए हुए ऐतिहासिक उपवास में से विश्वस्त का सिद्धांत उन्हें सूझा। वे मोढ़ बनिया जाति के थे इसलिए नहीं, पर सचमुच उनका विश्वास था कि जैसे कोई कारीगर एक विशेष गुण या कला में निष्णात होता है, वैसे ही व्यापारी व्यवसाय कला में माहिर हो सकता है। और उसके लिए उसे भी कामगर को जैसे पारिश्रमिक मिलता है, वैसा पारिश्रमिक दिया जाना चाहिए।

'गाँधी और मार्क्स' नामक पुस्तिका (लेखक : किशोरीलाल घ० मश्रूवाला) की भूमिका में विनोबा भावे ने इस 'ट्रस्टी' या विश्वस्त वृत्ति की उत्पत्ति का मूल स्रोत गीता को माना है। गीता में बार-बार मनुष्य को ईश्वरार्पण बुद्धि से कर्म करने की प्रेरणा है। ऐसा कुशल कर्मयोग बन जाता है। इसी कर्म में फलाकांक्षा छोड़ने की बात है। और मनुष्य वहां अन्ततः ईश्वर के हाथों का एक उपकरण, एक 'निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्' हो जाता है। प्रश्न इतना ही है कि अध्यात्म के क्षेत्र में जैसी 'कृष्णार्पणमस्तु' बुद्धि होती है, क्या व्यवसाय के क्षेत्र में भी वैसा कुछ सम्भव है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
ऐसे अनेक उदाहरण द्रव्य के अर्जन करने वालों के मिलते हैं, जहाँ अर्जक को अर्जन के मार्ग, या अर्जन की प्रक्रिया छूती नहीं। ऐसे भी उदाहरण हैं कि विलास की वस्तुओं के उत्पादक एकदम अविलासी हैं, या व्यसन की वस्तुओं के उत्पादक स्वयं निर्व्यसनी हैं। अतः यह आवश्यक नहीं कि वस्तु की वस्तुमत्ता उसे बनाने वाले या उसे बेचने वाले के साथ चिपट कर ही चले।

भारत के धनिक वर्ग ने भी गाँधी को समर्थन दिया, जैसे दरिद्रनारायण ने। गाँधी जी के अनुयायी कई परस्पर-विरोधी विचारधाराओं वाले थे: क्रांतिकारी, आतंकवादी भी थे, और लिबरल-नरमदल वाले भी। अर्थ-व्यवसाय और साम्यवाद समाजवाद के मामले में भी उनके शिष्य एकमत नहीं रखते थे। मैं जब सन् ४० में सेवाग्राम में था तब आचार्य नरेन्द्रदेव भी वहाँ स्वास्थ्य-लाभ करने आये थे, सरदार पृथ्वीसिंह जैसे क्रांतिकारी भी वहाँ थे। और सनातनी और आर्य समाजी, शिया और सुन्नी, दिगम्बर और श्वेताम्बर, शेन बौद्ध और ज़ेन बौद्ध, महायानी और हीनयानी कैथोलिक और प्रोटस्टेण्ट, रूढ़िवादी और आधुनिकतावादी—सब तरह के शिष्य गांधीजी के आसपास आन जुटे थे।

गाँधी ने अपने मन को मुक्त रखा था। चाहे अर्थशास्त्र हो या राजनीति, धर्म-अध्यात्म हो या नास्तिकता-धर्म-विरोध, गाँधीजी ने इन सब प्रश्नों पर बहुत गहराई से विचार और मनन किया था, एक निपुण भारतीय किसान या मजदूर की दृष्टि को अपना कर। कितना कुछ विदेशी विचारधाराओं में हमें ग्राह्य है, कितना हमारे अनुकूल है, इन सब बातों पर उन्होंने काफी ध्यान दिया था, ऐसा लगता है। इसलिये उनकी बातें न केवल भारत में कई वर्षों तक सही रहेंगी, पर दुनिया के अन्य देशों को भी उनसे बहुत कुछ सीखने और ग्रहण करने योग्य मिलेगा, ऐसा भी कहा जा सकता है—अर्थात् उतनी ही मात्रा में जितना भारत के और अन्य देशों के बीच मानवी परम्परा और प्रगति के बीच समानताएँ हैं।

साम्य या समता शब्द एकरूपता का पर्यायवाची नहीं मान लेना चाहिए। जो बात अमेरिका के लिये उचित होगी, वह ज्यों-की-त्यों हर भारतीय के लिए भी होगी, यह मानना उतना ही भ्रमपूर्ण है जितना कि जो बात हर रूसी के लिये उचित होगी, वह ज्यों-की-त्यों हर भारतीय के लिये भी उचित होगी, यह मानना। यह दोनों मान्यताएं मनुष्य-स्वभाव के यांत्रिक और जड़ मनोविज्ञान पर आधारित हैं। मनुष्य अपने स्थान-काल परिवेश की भौतिक उपज होता है उतना ही उसका चिन्तन-भावना संस्कारों की उपज के साथ-साथ, उसके अपने परिवेश से जुड़े सम्बन्धों और उसे बदल सकने की क्षमताओं पर निर्भर रहता है। एक आदिवासी या दुनिया की वैज्ञानिक प्रगति से कटा हुआ एक तिब्बती या अफ्रीकी कहीं अधिक भलामानुस या सत्प्रवृत्त इन्सान हो सकता है, और एक सारी सुखसुविधाओं में पलने वाला आधुनिकतम व्यक्ति भी अत्यन्त स्वार्थी और असत् प्रयोजनों से कर्म करने वाला हो सकता है। मनुष्य की अच्छाई-बुराई या मानदण्ड केवल उसके आस-पास के भौतिक साधनों की संख्या या गुण मान लेना, मनुष्य के साथ अन्याय करना है। गाँधी जी ने इस बात को अपने जीवन में घटित किया और प्रत्येक कर्म और वचन में उसे सिद्ध किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनीषी मार्क्स

कार्ल मार्क्स का जन्म मई, ५,१८१८ को प्रशिया में राइन प्रदेश के त्रियेर नगर में हुआ। अब यह पश्चिम जर्मनी में है। उसके पिता हाइनरिश वकील थे, कांट और वाल्तेयर की पुस्तकों के प्रेमी। प्रशिया में संविधान बनाने के आंदोलन में उन्होंने भाग लिया। उसकी माँ हेनरिट्टा प्रेसबर्ग होलैंड से थी, और आजीवन एक अक्षर जर्मन का ठीक से बोल न सकी। कार्ल छह बरस का था तब उसका बाप्तिस्मा हुआ। वे यहूदी थे। जब वे त्रियेर के हाईस्कूल में कार्ल १८३० से ३५ तक पढ़े। ग्रीक भाषा, रोमन पुराण, कलाओं का इतिहास उनके विषय थे। जब वे बौन युनिवर्सिटी में पढ़ने गये, अन्य छात्रों की तरह वे ऊधमी थे, उन्होंने एक द्वन्द्वयुद्ध लड़ा, एक दिन की जेल भी उन्हें काटनी पड़ी, अधिक शराब पीकर अनुशासनहीनता के लिये। आजीवन उन्होंने केवल एक दिन जेल में काटा।

अक्टूबर १८३६ में मार्क्स बर्लिन चले गये, कानून और दर्शन के विद्यार्थी बने। यहाँ वे हेगेल के दर्शन के सम्पर्क में आये। 'यंग हेगेलियन्स' के सदस्य बने। ब्रूनो बाउएर के व्याख्यानों के वे मुरीद बने, जिसमें यह सिद्ध किया जाता था कि जीसस क्राइस्ट कोई सचमुच का ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं था, केवल एक काल्पनिक पुरुष था। ब्रूनो को नास्तिकता प्रचार करने के कारण नौकरी से हाथ धोना पड़ा। एडालफ रूटेनबेर्ग नामक एक पत्रकार मार्क्स का मित्र बना। वह समाजवादी विचारों के कारण जेल भुगत चुका था। अप्रैल १८४१ में मार्क्स ने जेना-विश्वविद्यालय में 'दिमाक्रुतस और एपीकूरस के दर्शनों में अन्तर' विषय पर 'डाक्टरल डेसर्टेशन' लिखा। उपाधि प्राप्त की। इसी समय लुडविग फ्वारबाख के पुस्तक 'डास बेस्सेन डेस क्रिस्टेनडुम' (१८४१, 'ईसाइयत का सार') से बहुत प्रभावित हुआ। कोलोन से निकलने वाले 'राईनीशे ज़ाइटुंग' पत्रिका में मार्क्स लेख लिखने लगे। फ्वारबाख के भौतिकवाद का हेगेल के द्वन्द्ववादी तर्क से समर्थन मार्क्स करने लगे। इस समय मार्क्स ने प्रेस की स्वतंत्रता पर एक लेख लिखा। मार्क्स १८४२ में इस पत्रिका के सम्पादक बने। कई विषयों पर उन्होंने सम्पादकीय लिखे प्रशिया की सरकार ने पत्रिका बन्द करवा दी, रूसी सरकार के दवाव में, मार्क्स पैरिस चले गये फ्रेंच कम्युनिज्म का अध्ययन करने।

पच्चीस वर्ष की आयु में मार्क्स का विवाह जेनी फॉं वेस्टफालेन के साथ हुआ वह उनसे चार बरस बड़ी थी। वह फौजी और प्रशासनिक कुल से आती थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जेनी के पिता फ्रेंच समाजवादी संत सिमां के अनुयायी थे और कार्ल को चाहते थे। १८४४ में उसने अपनी पहली पुस्तक 'ओकोनोमीश फिलासाफिशे मानुस्क्रिप्टे हाउस डेम जाहरे' लिखी, हेगेलवादी अर्नाल्डि रूज के साथ वह प्रतिवर्ष साम्यवादी चिंतन प्रकाशित करने जा रहा था। इन लेखों में उसने अपना प्रसिद्ध वाक्य लिखा—"धर्म जनता की अफीम है"। फ्रांस से निर्वासित होकर मार्क्स ब्रुसेल्स गया। बेल्जियम में उसने अपनी प्रशिया की नागरिकता छोड़ दी। यहाँ साम्यवादी यहूदी धर्मप्रचारक (रवाई) मोजेस हेस्स के प्रभाव में आया। और हेगेल के विरोध में पुस्तक लिखी 'डी हाईलिगे फ़ामिली' (पवित्र परिवार)। इसके बाद १८४५-४६ में लिखी 'डी डॉइश्शईडियोलोजी' में अपने भौतिकवादी विचारों की, इतिहास की आर्थिक सम्बंधों से व्याख्या की नींव रखी। फरांसीसी समाजवादी प्रूधों ने 'दरिद्रता का दर्शन' मिजेरदला फिलासोफी १८४६ में लिखी; उसका जवाब अगले साल मार्क्स ने 'दर्शन की दरिद्रता' (फिलोसोफी दला मिजेर) लिख डाला। इसके बाद आया वह प्रसिद्ध ग्रंथ जिसने विश्व के इतिहास में बहुत बड़ी क्रांति निर्मित की—'दि कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो' १८४७ में एंगेल्स के साथ लिखा। मार्क्स अब लंदन पहुंच गये। और वहीं बड़े कष्ट में जीवन बिताया। मार्क्स पुनः पैरिस और राइनलैंड बुलाये गये। पर वहाँ जर्मन शरणार्थियों के बीच वे बहुत अलोकप्रिय हुए, चूँकि उन्होंने श्रमिकों को जनतांत्रिक बूर्जुवाजी के साथ मिलकर राजनैतिक कार्यक्रम बनाने का निर्देश दिया। जून १८४९ में वे संसदीय जनतंत्र के पक्ष में और रूस पर आक्रमण करने के लिये लेख लिखते रहे। मजदूर युनियन के क्रांतिकारी नेता आंद्रेस गौटचाक जब पकड़े गये, तो उनके स्थान पर मार्क्स ने पहली राइनलैंड डेमोक्रेटिक कॉंग्रेस १८४८ में बुलाई। जीवन भर मार्क्स केवल लेख और पुस्तकें लिखते रहे। सार्वजनिक सभा में या भीड़ में व्याख्यान उन्होंने केवल एक बार दिया, मजदूरों के सामने, कोलोन की सड़कों पर। उन पर मुकद्दमा चला और उन्होंने आत्मसमर्थन किया। छोड़ दिये गये, धन्यवाद सहित।

अगस्त १८४९ के बाद मार्क्स बड़े दैन्य में लंदन में सोहो स्क्वेअर में दो कमरों के मकान में रहने लगे। चार बच्चे हो गये थे। सदा कर्जे में रहता। एक बेटा गिउडो बिना दवादारू के मर गया। बेटी फ्रांजिस्का की मौत पर उसके कफन के लिये माँ दर-दर भीख माँगती रही। कर्जदार आते तो बेटियों को झूठ बोलकर बताने के लिये कहा जाता—"मार्क्स घर में नहीं है।" मार्क्स की पत्नी बीच-बीच में बेहोश हो जाने लगी। इस समय मार्क्स को आर्थिक आधार मिला 'न्यूयार्क ट्रिब्यून' नामक अमरीका की पत्रिका के सम्पादक होरेस ग्रीले और चार्ल्स दाना से। १८५१ से १८६२ तक पाँच सौ लेख और सम्पादकीय मार्क्स ने इस पत्रिका में लिखे—दुनिया भर के विषयों पर, भारत, चीन, ब्रिटेन, स्पेन सब पर। १८५९ में मार्क्स ने अर्थ शास्त्र पर अपनी पहली पुस्तक लिखी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रिटिश म्यूज़ीयम में बैठकर बराबर सामाजिक, आर्थिक, ऐतिहासिक प्रश्नों पर मार्क्स शोध करते रहते। १८६४ में लंदन में अंग्रेज़ी ट्रेड युनियन नेताओं ने एक सभा बुलाई। मार्क्स मंच पर चुपचाप बैठे रहे। पर उन्होंने फर्स्ट इन्टरनैशनल की इस आधार-सभा के बाद संविधान और नियमावलि बनाई। १८६९ तक इसके आठ लाख सदस्य बन गये। १८७० तक मार्क्स को युरोप में कोई नहीं जानता था। पैरिस कम्यून के बाद वे एकदम 'लंदन के सबसे निंदित और आतंक-प्रचारक व्यक्ति' बन गये। पैरिस कम्यून को मई ३०, १८७१ में दमन का शिकार होना पड़ा। मार्क्स ने लिखा कि यह 'विश्व की पहली मज़दूरों की तानशाही' (डिक्टेटर-शिप आफ दि प्रालितारियेत) है। १८६७ में लंदन में मज़दूरों को मताधिकार मिला। मिखाइल अलैक्सैंद्रोविच बाकुनिन को १८४८ में मार्क्स ने 'रूसी एजेंट' कहा था। इस कारण से क्रांतिकारी बाकुनिन मार्क्स को 'जर्मन तानाशाही वृत्ति का यहूदी' मानता था। बाकुनिन ने इटली, स्विटरलैंड, फ्रांस में युवकों का एक गुप्त दल संगठित किया—इंटरनेशनल अलायेंस आफ सोशल डेमोक्रेसी। मार्क्स ने उसे अपने इंटरनेशनल में प्रवेश नहीं दिया। बाकुनिन मार्क्स की डिक्टेटरी नीति के विरोध में दल जमा करने लगा। मार्क्स ने बाकुनिन का चरित्रहनन किया कि नेचायेक नामक विद्यार्थी नेता जो हत्यारा और ब्लैकमेलर था उसके साथ बाकुनिन की साठ-गाँठ है। १८७२ की हेग की इंटरनेशनल कांग्रेस में मार्क्स ने बाकुनिन को हराया। यही एकमात्र इंटरनेशनल थी जिसमें मार्क्स उपस्थित थे।

अगले दशक में मार्क्स 'डास कापिटाल' (पूँजी) ग्रंथ लिखने में डूब गये। इस बीच वे रूसी भाषा भी सीखे। पर मन कहीं जम नहीं रहा था। एक भी काम पूरा नहीं कर पाते थे। वे रूसी ज़ारशाही का तख्ता पलटने के लिए युरोप में युद्ध की प्रतीक्षा करने लगे। ज़ार अलैक्ज़ांद्र द्वितीय की १८८१ में रूस में हत्या मार्क्स के अनुसार "एक ऐतिहासिक अनिवार्य घटना" थी। १८७५ में गोथा प्रोग्राम की मार्क्स ने कटु आलोचना की। जर्मन डेमोक्रेटिक सोशलिस्ट बच्चों को बँधुआ मज़दूर बनाने के विरोध में थे। मार्क्स ने उसका भी विरोध किया। १८७९ में जब फ्रांस में सोशलिस्ट वर्कर्स फेडरेशन बनी तो उसके नेता जूल ग्विस्दे मार्क्स की सलाह लेने लंदन गये। अन्तिम दिनों में मार्क्स कई स्वास्थ्य केन्द्रों में घूमते रहे। एलजीयर्स पहुंचे। पत्नी की मृत्यु दिसम्बर २, १८८१ को हुई, बड़ी बेटी जेनी लांगुएत की जनवरी ११, १८८३ को। फेफड़े के फोड़े से मार्क्स की मृत्यु लंदन में मार्च १४, १८८३ को हुई।

मार्क्स का चरित्र विचित्र विरोधाभासों से भरा था। लगते थे वे बड़े उग्र सर्वनिषेधक विद्रोही, पर भीतर से थे वे एक विवश बौद्धिक। पावेल अन्नेनकोव नामक एक रूसी लेखक ने १८४६ में मार्क्स को वाद-विवाद करते हुये देखा था। उसने लिखा है कि "मार्क्स तानाशाही ढंग से बोलता था, विरोध उसे बिल्कुल पसंद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
नहीं था।" भीड़ के सामने मार्क्स बहुत घबड़ा जाता था, झगड़े-टंटे से दूर रहता था। कभी किसी जुलूस में वह नहीं गया। उसकी पत्नी ने लिखा है कि वह सभाओं को भी टालता था। वह साथियों के छोटे-छोटे संगठनों में बहुत मुखर और यशस्वी रहता था। पिता के नाते वह वत्सल था, जीसस क्राइस्ट का 'बच्चों से प्रेम' उसे पसंद था। हर चीज में वह 'संघर्ष' देखता था। एक और भाषा सीखना एक और हथियार पाने के बराबर मानता था। उपन्यास बहुत पढ़ता था, विशेषतः वाल्टर स्काट और बाल्ज़ाक के। शेक्सपीअर तो पूरे मार्क्स-परिवार के देवता थे। मार्क्स की नौकरानी हेलेन डेमुथ को एक अवैध बेटा हुआ फ्रेडरिख। एंगेल्स जब मर रहा था तो उसने यह रहस्य बताया कि यह पुत्र मार्क्स से ही था।

मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद, इतिहास की वर्ग-संघर्षवाली आर्थिक व्याख्या पूँजीवाद में मनुष्य का अलगाव (एलियेनेशन), पूँजीवाद में निहित उसके नाश के बीज, क्रांति की दो व्याख्याएं एक सामयिक, और दूसरी चिरन्तन आदि सब सुपरिचित हैं। परंतु मार्क्सवाद की युरोप और भारत में कैसी परिणति हुई यह दर्शनीय है।

जर्मनी में एंगेल्स के बाद कार्ल काउट्स्की (१८५४-३८)-'डी न्यूई ज़ाईट' के सम्पादक ने मार्क्स को आर्थिक चिंतक के नाते प्रस्तुत किया है। काउट्स्की किसान और मज़दूरों की एकता का समर्थन नहीं करता। मज़दूर ही अन्यायी राज्य को उलटाने में सक्षम होंगे ऐसा, उसका मानना है। वह शांति के मार्ग से सत्ता-परिवर्तन सम्भव मानता है। जर्मनी में ही बेर्नस्टाइन (१८५०-१९३२) ने १८९६ में लिखना आरम्भ किया कि मार्क्सवाद का 'संशोधन' आवश्यक है। पोलैंड के राज़ा लक्सेम्बुर्ग ने भी काउट्स्की के साथ साथ बेर्नस्टाइन का विरोध किया। मज़दूरों के मूल्य—सिद्धांत को लेकर यह विरोध बढ़ा। बेर्नस्टाइन ने जर्मन, डच, अंग्रेजी सांख्यिकों के आधार पर मार्क्स के 'पूँजी' सिद्धांत को झुठलाने का यत्न किया। उसके अनुसार मार्क्स का विश्लेषण वैज्ञानिक नहीं था, चूँकि वह हेगेल और रिकार्डो के सिद्धांतों पर आधारित था। आर्थिक स्थिति निरन्तर परिवर्तनशील थी। काउट्स्की का तर्क यह था कि ज्यों-ज्यों उद्योग बढ़ते जाते हैं, कृषि भी उनपर निर्भर होती जाती है। कृषि भी यांत्रिक और उद्योग प्रधान होती जाती है। रोजा लक्सेम्बुर्ग का कहना था कि पूंजीवाद के अन्तर्विरोध वित्त के आंतर्राष्ट्रीय विनियोग और उपनिवेशवाद से बढ़ते जाते हैं, जिनसे युद्ध की अनिवार्यता बढ़ती हैं, और ऐसे समय जनशक्ति सत्ता हथिया सकती है, क्रांतिकारी ढंग से।

युद्ध और शांति के प्रश्न पर मतभेद बढ़ते गये। जर्मन राइश्टाग के सोशल डैमाक्रेटोंने प्रथम विश्वयुद्ध के पहले, युद्ध को वित्तीय सहायता देने का समर्थन किया। युद्ध-विरोधी जर्मन मार्क्सवादी थे लीब्कनेख्ट और लुक्सेम्बुर्ग। लुक्सेम्बुर्ग ने १९१३ में 'डी आकुमुलेशन डेस कापितालस' में तर्क दिया कि मार्क्स ने पूंजी खण्ड-२ में जो बात कही है उसमें परस्पर विरोध हैं। इस विदुषी के अनुसार पूँजी का संग्रहण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अनिश्चित और अनन्तकाल तक चलेगा यह भी मार्क्स का मत है; और मार्क्स यह भी कहता है कि पूँजी के भीतर अन्तर्विरोध होकर वह मजदूरवर्ग द्वारा उस पर अधिकार प्राप्त होता जायेगा। लुक्सेम्बुर्ग का कहना है कि मार्क्स अतिसरलीकरण कर रहे हैं, और मानकर चलते हैं कि दुनिया में पूँजीपति और श्रमिक ये दो वर्ग सदा ही रहेंगे। पूंजी अपने देश में से उठकर अन्य देशों में उपनिवेश बनायेगी। उसका अन्त तो उसी दिन होगा कि जब पूँजीवादी देशों के बाहर भी उसका प्रभुत्त्व समाप्त हो जायेगा यानी वह एक अन्तिम सीमा तक पहुंच जायेगा। इस पर बहुत बहस होती रही है।

आस्ट्रिया के समाजवादियों में ओटो बाउएर (१८८१-१९३८) ने अपने 'डी नात्सनालिटाहेनफ्रागे उण्ड डी सोज़ियाल डीमोक्राटी" (१९०६ 'राष्ट्रकों का प्रश्न और सामाजिक जनतन्त्र') में जो आत्मनिर्णय के प्रश्न उठाये उनका विचार लेलिन ने भी किया है। हिल्फ़रडिंग ने बैंकों तथा औद्योगिक मोनोपोलियों (एकाधिकारों) के प्रभाव और अधिकार में पूँजी कैसे आती जाती है इससे लेनिन भी प्रभावित हुआ और १९१६ में लेनिन ने लेख लिखा 'साम्राज्यवाद, पूँजीवाद की सर्वोच्च स्थिति'।

सोवियत रूस में मार्क्स के विचारों की परिणति का अध्ययन महत्त्वपूर्ण विषय है। 'डास कापिटाल' १८७२ में रूसी में अनुवादित हुआ। गिओर्गी प्लेखोनोव (१८५६-१९१८) ने मार्क्सवाद को रूसियों से परिचित कराया। पर लेनिन उसे व्यवहार में लाया। १८९४ में लेनिन ने अपने 'जनता के मित्र' लेख में मार्क्स के 'भौतिकवादी सामाजिक सम्बन्ध' और 'आदर्शवादी सामाजिक सम्बंधों के बीच अन्तर पर बल दिया। रूसी पूँजीवाद पर मार्क्स के विचारों को उन्होंने १८९७-९९ में घटित करते हुए किसानों की भूमिका पर लिखते हुए 'दि डेवेलपमेंट आफ एशियन कम्युनिज़्म' में लेनिन लिखते हैं—

"हम मार्क्स के विचारों को सम्पूर्ण और अपरिवर्तनीय या अखण्डनीय नहीं मानते। हम इससे उलटे इतना ही मानते हैं कि विज्ञान की एक कोनशिला मार्क्स के सिद्धांतों ने स्थापित की। समाजवादियों को इस विज्ञान को आगे बढ़ाना चाहिए। रूसी समाजवादियों को तो इस सिद्धांत का एक स्वतंत्र स्पष्टीकरण आवश्यक है।"

लेनिन ने 'व्यावसायिक क्रांतिकारियों' के प्रशिक्षण पर अपनी दृष्टि जमाई। १९२१ के वसन्त में पार्टी की दसवीं कांग्रेस में क्रांसटाड में नाविक विद्रोह हुआ और देहातों में किसान असन्तुष्ट हो रहे थे, तब लेनिन ने सब तरह के विरोध को निर्मम भाव से दबाने और उस पर रोक लगाने का आग्रह किया। इसी में से स्तालिनवाद का आगे उदय हुआ जिसने अपने विरोधियों के सम्पूर्ण विनाश का कदम उठाया।

स्तालिन ने 'मार्क्सवाद-लेनिनवाद' शब्द दिया। लेनिन की १९२४ में मृत्यु के बाद सोवियत संघ के विकास कार्य उसने बड़े उत्साह से उठाया। मार्क्सवाद का मूल द्वंद्ववाद की मान्यता थी कि वाद का प्रतिवाद होता है; परन्तु वाद में से ही प्रतिवाद जन्म लेता है। अतः वाद पूर्णतयः नष्ट नहीं होता। उसमें कुछ रह जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
है जो प्रतिवाद में परिणत हो जाता है। दोनों अंततः सम्वाद की स्थिति में पहुंचते है। मार्क्सवाद की यह भी मान्यता थी कि विकास धीमे धीमे न होकर, छलांग से, सहसा, एकदम होता है। इसके लिए भीतर के अन्तर्विरोधों को प्रकट होना चाहिए। स्तालिन के शब्दों में "प्रत्येक वस्तु और प्राकृतिक घटना के भीतर सकारात्मक और नकारात्मक दो तत्व होते हैं; इसलिए उसमें अंतर्निहित परस्पर-विरोध होता है। यह अन्तस्संघर्ष ही विकास की प्रक्रिया है।"

स्तालिन और कार्ल मार्क्स में बहुत अन्तर आ गया। कार्ल मार्क्स ने शोषित जनता की बढ़ती हुई क्रांति-चेतना, बौद्धिकता और वर्ग-हित के ज्ञान पर जोर दिया। स्तालिन अधिक अधीर थे; उन्होंने 'प्रालितारियेत' (जनता) के बदले 'डिक्टेटरशिप' (तानाशाही) पर ज़ोर दिया। वह आत्मनिष्ठता के बदले वस्तुनिष्ठ अधिक थे। इसलिए वह प्रसिद्ध कथा स्तालिन के बारे में हैं कि एक बार पुश्किन की प्रतिमा, बनाने के लिए शिल्पीजनों से कहा गया। कई माडेल आये। जो पसन्द किया गया उसमें स्तालिन की प्रतिमा बनी थी, और उसके हाथ में एक ग्रन्थ दिखाया गया था जिस पर 'पुश्किन-ग्रन्थावली' लिखा था। और एक कहानी है स्तालिन के पास दो कम्युनिस्ट पार्टी के प्रमुख अधिकारी पहुंचे। एक स्थानीय था, जो स्तालिन से एकनिष्ठ था। दूसरा दूसरे देश का था और विरोधी था। स्तालिन ने कहा—"दूसरे को पहले भेजो"। इसी का परिणाम यह हुआ कि त्रात्स्की से स्तालिन की नहीं बनी। स्तालिन के ही शिष्य ख्रूशोव बाद में उनके विरोधी हो गये। स्तालिन के ताबूत में से उनका मृत शरीर निकालकर अन्यत्र दफनाया गया। एक दशक तक स्तालिन का नाम वहाँ नहीं लिया जाता था। अब क्रेमलिन के पास की दीवार पर मार्सल झुकोव आदि के साथ स्तालिन की भी अर्द्ध प्रतिमा है।

भाषा और आत्म-निर्णय के अधिकार के बारे में स्तालिन के वक्तव्य इस बात के साक्षी हैं कि वह मार्क्सवाद को आगे बढ़ाता रहा, या आज जो रूस और चीन में मतभेद उभरे उनके बीज उसी काल में बो दिये गये। स्तालिन दूर-दृष्टा नहीं था। उसकी द्रुत-गामी और निकट की सफलताओं में दिलचस्पी थी। परिणाम यह हुआ कि उसकी पुत्री ही उसकी सबसे बड़ी आलोचक हो गई, देश से बाहर निकल गई।

लिआँ त्रात्स्की (१८७९-१९४०) की मृत्यु पर मैंने पटना से प्रफुलचंद्र ओझा 'मुक्त' 'आरती' पत्रिका निकालते थे, उसमें 'इस्क्रा' नामक एक लेख छद्मनाम से लिखा था। रूसी क्रांति के १९०५ और १९१७ के दोनों बड़े पर्वों में त्रात्स्की की बड़ी भूमिका थी। लेनिन की मृत्यु के बाद त्रात्स्की और स्तालिन में शत्रुता बढ़ गई। त्रात्स्की की मान्यता थी कि पिछड़े हुए कृषि-प्रधान देशों में क्रांति किसानों को लेकर चलेगी। वहाँ खेती में सुधार और समाजवादी विकास की गति भिन्न होगी। औद्योगिक, पूंजीवादी देशों में मज़दूर क्रांति लायेंगे। इस तरह से 'क्रांति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
एक चिरंतन प्रक्रिया है' यह त्रात्स्की का विश्वास था। स्तालिन मानता था कि क्रांति एक ही वर्ग से, किसान या मज़दूर या बौद्धिक कार्यकर्ता के सहारे अलग-अलग घटित हो सकती है। त्रात्स्की चाहता था कि क्रांति का शिक्षण विभिन्न स्तरों में विभिन्न प्रकारों से देना चाहिए। क्राँति का 'निर्यात' हो सकता है। वह कम्युनिस्ट पार्टी में नौकरशाही ढंग की संरचना के विरुद्ध था। वह अन्तिम क्रांतिकारी विद्रोह को भी, वैज्ञानिक प्रयोग के ढंग पर हर ब्यौरे और विवरण को ध्यान में रखकर, सफल बनाना चाहता था। स्तालिन में अधिनायकवाद, विभूति-तत्व और प्रधान नेता के व्यक्तित्व के जादू पर अधिक आस्था थी। परिणाम स्पष्ट है—अमेरिकामें एक हथौड़े से स्तालिन के पुराने शत्रु त्रात्स्की की हत्या कर दी गई। किसने की यह पता नहीं चला।

चीन में मार्क्सवाद को माओ-त्से-तुंग लाये। १९३० के बाद वे मार्क्सवाद में चीनी परम्परित विचारों और संस्कृति का मिश्रण करते रहे। समाजवादी समाज के अन्तविरोध के बारे में माओ का विचार यह है कि वह दो प्रकार का है—एक तो "हम और हमारे शत्रु"—इसका इलाज क्रांति ही है। दूसरा विरोध ऐसे परस्पर-विच्छेदक ढंग का नहीं है, जैसे समाजवादी राज्य में शासन और शासित के बीच विरोध, या दो प्रकार की कम्युनिस्ट पार्टियों का आपसी विरोध, या एक ही कम्युनिस्ट राज्य में एक प्रदेश और दूसरे प्रदेश में विरोध—इनका इलाज बन्धुत्वपूर्ण आलोचना और आत्म-विश्लेषण है। माओ के अनुसार यह विरोध सामान्य और विशिष्ट दोनों हो सकते हैं। एक ही समय में दोनों का सह-अस्तित्त्व सम्भव है, क्षम्य है। इन विरोधों में कभी बहुत स्पष्ट और कभी बहुत अस्पष्ट हो सकते हैं। कुछ प्राथमिक, कुछ द्वैतीयिक प्रकार के हो सकते हैं। यह स्तालिनवादी अनमनीय सिद्धांतनिष्ठ मार्क्सवाद-लेनिनवाद से बहुत भिन्न है।

चीनी साम्यवाद ने कन्फ्यूशियस (कांग-फू) के दर्शन के प्रति जैसा रुख अपनाया, और जैसे वह बदलता गया, उससे मार्क्स की इतिहास विश्लेषण की द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी और आर्थिक उत्पादन-सम्बन्धों पर आधारित दृष्टि से वह बहुत दूर की चीज़ है। चीन की विशाल लोक संख्या और प्राचीन सभ्यता का भी इस प्रकार के परिवर्तनवादी विचारों में हाथ में। १९५८ में "बड़ी लम्बी छलांग" और १९६६ में "सांस्कृतिक क्रांति" के अध्ययन से यह पता चलता है कि शायद माओ अन्तिम दिनों में अधिनायकवादी होते जा रहे थे। और अपनी पत्नी और 'चाँडाल चौकड़ी' (गैंग आफ फोर) की गिरफ्त में अधिक थे। चीन के कम्युनिस्ट मानते हैं कि सोवियत रूस की तरह उनके नेता या शासक बूर्ज्वा या "मैनेजरीयल" नहीं हो गये हैं। माओ किसान नेता था और येनान की लाल मुक्तिवाहिनी का नेता अतः वह सारी प्रजा को साथ ले चलने में विश्वास करता था। चीनी ताओवाद का प्रभाव माओ के चिंतन पर है, विशेषतः मनुष्य और प्रकृति के सम्बन्धों के मामले में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
वह मार्क्स-एंगेल्स की स्थापनाओं का अन्ध अनुयायी नहीं। संक्षेप में चीनी साम्यवाद कम कट्टर है, अधिक उदारवादी है।

युगोस्लाविया में जोसिप ब्राज़ टीटो के सोवियत रूस और स्तालिन से १६४८ में अलग होने पर एक अलग तरह का साम्यवाद पनपा। वह नौकरशाही और राष्ट्रीयता के अन्ध आग्रह का विरोधी है। टीटो मानता था कि कारखानों पर श्रमिकों का पूर्ण हक़ हो। अन्य बातों में वह वैसा ही पूँजीवाद-विरोधी है, जैसे स्तालिनवादी हैं।

फिदेल कास्त्रो का क्यबा में मार्क्सवाद सब प्रकार के अन्यायों के विरोध में तीसरी दुनिया का प्रतिनिधि है। वह फ्रांसीसी क्रांति से अधिक प्रेरणा लेता है। मार्क्सवाद के कट्टरपन, नौकरशाही, पंथ बनाने के पक्ष के विरोध में कास्त्रो अपनी आवाज बार बार उठाते हैं। एक तरह से कास्त्रों मार्क्सवाद का 'विद्रोही' रूप है, जैसे वैदिक धर्म का बुद्ध या अन्य नास्तिक धर्म विकल्प चाहते थे। कास्त्रो का कहना है कि वही शुद्ध मार्क्सवादी है। कास्त्रो पहले राष्ट्रवादी है, मार्क्सवादी बाद में।

युरोकम्यूनिज्म में आस्तित्त्ववाद (नीत्शे कीर्केगार्द, फ्रायड़) को मिलाकर चलने वाले कई चिंतक हैं। अब मार्क्सवादी मक्का एक ही किताब, एक ही हर्फ़े आखिर, एक ही मुल्ला और एक ही मिल्लत की तरह 'फण्डामेंटलिस्ट' नहीं रहा। वहाँ भी कई पन्थ-उपपंथ, शाखा-प्रशाखाएँ हो गई हैं। यह डेढ़ सौ वर्षों की विश्व में मार्क्सवाद की विचार-यात्रा है।

अब हम भारत की ओर मुड़ें और विशेषतः हिन्दी प्रदेशों की ओर वहाँ मार्क्सवाद का प्रभाव बहुत देर से आया। बंगाल और महाराष्ट्र में यह प्रभाव अधिक ज़ोरों से फैला—१९२७ में कम्युनिस्ट पार्टी की भारत में स्थापना के बाद। कई कांग्रेस समाजवादी बाद में कम्युनिस्ट पार्टी में गये। बाद में कई कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सिस्ट) में गये। इस सारी आतंकवादी क्रांतिवादी विप्लवी आंदोलन की मार्क्सवाद को अपनाने की प्रक्रिया में, और उससे बाद में 'स्वप्नभंग' की स्थिति में आने में राहुल सांकृत्यायन के 'नये भारत के नये नेता' पुस्तक में कई उत्तम उदाहरण हैं। लेखक राहुलजी स्वयम् बाद में कम्युनिस्ट पार्टी से १९४८ से १९५७ तक बाहर रहे। आत्मनिर्वासित या निष्कासित, जो भी कह लें।

इस सिलसिले में एक महत्त्वपूर्ण मत मानवेन्द्रनाथ राय का है (मूल नाम नरेंद्रनाथ भट्टाचार्य जन्म : फरवरी २२,१८८७ कलकत्ता के पास एक गाँव, मृत्यु जनवरी १९५४, देहरादून)। वे लेनिन के अत्यन्त निकट पहुंचे। कई नाम बदलकर बटाविया से जापान, चीन होते हुए सान फ्रांसिस्को १९१६ में पहुंचे। न्यूयार्क में पकड़े गये। मेक्सिको में १९१७ में पहुंचे, १९१९ में पहली कम्युनिस्ट पार्टी मेक्सिको में स्थापित की। बोरोदिन के निमंत्रण पर १९२० में दूसरी विश्व कामिंटार्न कांग्रेस में पहुंचें। लेनिन के प्रस्ताव का उन्होंने विरोध किया, और राय के संशोधन को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेनिन ने माना। किसी स्कूल कालेज की शिक्षा न पाये हुए राय सात भाषाओं के पण्डित थे, संस्कृत, बाँग्ला, अँग्रेजी, जर्मन, रूसी, इस्पाहानी, फ्रेंच। राय कम्युनिस्ट इन्टरनैशनल के प्रेसिडियम के सदस्य बने। और एशिया में साम्यवादी आंदोलनों के संगठन का कार्य उन्हें सौंपा गया।

१९२७ में वोरोदिन के साथ काम करने राय को भेजा गया स्तालिन से उनके मतभेद हुए। राय को १९२९ में कॉमिटार्न से निष्कासित किया गया। वह डा० महमूद के नाम से दिसम्बर ३० को भारत लौटे और जुलाई २१,१९३१ को वे पकड़े गये। जेल से छूटने पर वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सदस्य बने। मौलाना आजाद के मुकाबले में रामगढ़ कांग्रेस के अध्यक्षपद के लिए खड़े हुए, हार गये। राय ने अपनी रैडिकल डैमोक्रेटिक पार्टी बनाई। ऐलेन गॉट्सचॉक से १९३७ में विवाह किया। गत महायुद्ध में वे फासिस्ट विरोधी मित्र राष्ट्रों के पक्ष में युद्ध प्रचारक बन गये। अपनी पार्टी भंग की। रैडिकल ह्यूमैनिस्ट दल देहरादून में स्थापित किया। यहाँ मार्क्स की राय द्वारा आलोचना हमारे लिए अर्थपूर्ण है। एम० एन० राय की मरणोपरांत प्रकाशित 'रीज़न, रोमैंटिसिज्म एण्ड रिवोल्यूशन, (दो खण्ड) पुस्तक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उसमें मार्क्सवाद पर राय के निम्न मौलिक आक्षेप हैं :

(१) मार्क्सवाद कोई मौलिक दर्शन नहीं। फरांसीसी क्रांति से मार्क्स ने बहुत कुछ लिया, जो कि 'बूर्ज्वा' क्रांति थी। जैसे प्लेखेनोव ने 'भौतिकवाद के इतिहास' में कहा है "मार्क्सवाद का इतिहास- विश्लेषण पुरानी ऐतिहासिक कल्पनाओं का ही एक न्यायसंगत परिपाक है।" इतिहास की आर्थिक व्याख्या के बीज मार्क्स के पहले अनेक विचारकों में थे।

(२) मार्क्स अपने पूर्ववर्तियों को 'युरोपियन 'रोमांटिक' कहता है, जबकि मार्क्स स्वयम् एक बहुत बड़ा रोमैंटिक है। उसी के कारण से क्रांति की कल्पना परस्पर-विरोधों की शिकार हो गई। द्वंद्ववाद तर्क पर अधारित वैज्ञानिक प्रक्रिया है, मानव की बुद्धि और प्रज्ञा का उसे आधार है। मार्क्स क्रोध और हिंसा को क्रांति में प्रधानता देता है, जो कि निरी अ-बुद्धिवादी प्रक्रियाएँ हैं। मार्क्स कहता हैं—"दुनिया को बदलने से आदमी अपने आपको बदलता है"। दुनिया आदमी से बड़ी है, सबसे बड़े आदमी से भी बड़ी और हमेशा रहेगी। अंश से अंशी, खण्ड से पूर्ण बड़ा होने से यह 'बदलना' सदा सीमित रहेगा।

(३) क्रांतिकारी चमत्कारी पुरुष नहीं होता। मार्क्स मानकर चलता है कि मनुष्य इतिहास के हाथ की कठपुतली है। उसमें कोई नैतिक संकल्प जैसी चीज़ है ही नहीं। मार्क्स मानकर चलता है कि इतिहास में परिवर्तन कुछ संगठित अल्पसंख्यक दल ही घटित करेंगे। व्यक्ति की अपार सम्भावनाओं के प्रति मार्क्स सशंक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) इस प्रकार मार्क्स का इतिहास-दर्शन और क्रांति सिद्धांत पार्टी द्वारा 'प्रालितारियत' का क्रांतिकारी हरावल पैदा करने में एक प्रकार का 'सुपरमैन' (वैश्वानर) निर्मित करने के पंथ का समर्थन करता है। इसी में से तानाशाही और तानाशाह पैदा होते हैं, जो लोकतंत्र का विकल्प नहीं हो सकता।

(५) साम्यवाद किसी 'क्वारंटाइन' जैसी स्थिति में सदा नहीं रह सकता। रूसी साम्यवाद ने युरोप में फैलते हुए उदारमतवाद को पूँजीवादी अतः शत्रुवत् और अछूत मानकर एक ऐसी मानसिकता पैदा की कि एक ओर पूँजीवादी समाज के विज्ञान और तंत्रज्ञान से उत्पन्न मनुष्य के सामूहिक उत्पादन का तो रूसी लाभ ले, पर उसके द्वारा मानव को मिलनेवाले अवकाश और दासता से मुक्ति को साहित्य-संगीत-कला में 'ह्रासोन्मुख पूँजीवादी अप-संस्कृति' माने, यह परस्पर-विरोधी बाते हैं।

(६) इसी कारण से रूसी साम्यवाद बार बार साहित्य, कला, नाटक आदि में सब प्रकार की अमूर्तता, व्यक्तिगत भावनाशीलता का विरोध करके 'समाजवादी यथार्थवाद' और सोवियत श्रमिक को ही नया नायक मानकर उसका गौरव गुणगान करने में व्यस्त हो गया। रूसी साम्यवादी साहित्य-समीक्षा अत्यन्त सीमित बन गई।

(७) भारत में पूँजीवादी और उपनिवेशवादी-साम्राज्यवादी दोनों मिलकर राष्ट्रवाद को बढ़ावा दे रहे थे। मुस्लिम राष्ट्रों में सामंतवादी-ज़मींदार तंत्र के मुल्ला मौलवी तो और भी प्रतिक्रांतिवादी थे। अतः राजनीति में रहस्यवाद का प्रचार करनेवाले गांधीभक्त कांग्रेसी या हिंदुत्वनिष्ठ या मुस्लिमलीगी सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे थे। वे सब अ-बुद्धिवादी थे।

(८) महात्मा गांधी का दर्शन नया नहीं था। रूसी-स्विस दार्शनिक डेविड कोइगन ने 'मैने आफ रिनेसाँ' को 'मैन आफ रिवोल्यूशन' के विरोध में उपस्थित करके विधायक या रचनात्मक तत्त्व नकारात्मक तत्त्वों से किस प्रकार से अधिक महत्त्व-पूर्ण और मूल्यवान हैं; और व्यक्ति की नैतिकता बढ़ाने में सहायक है यह फ्रांज़ मेहरिंग ने "हिस्ट्री आफ फिलासाफी' में स्पष्ट किया है। अंततः फाशिज़्म इसीलिए धर्म और रहस्यवाद का सहारा लेता है। हिटलर का 'स्वस्तिक' और 'आर्य' श्रेष्ठता का सिद्धांत कैसे निकला ? राय ने भविष्यवाणी की १९५२ में कि जैसे १९३१ में नेहरू ने राष्ट्रीयता और समाजवाद को मिलाकर अंततः गाँधीवाद की शरण ली। वैसे चीन में भी राष्ट्रवाद के सब पहलू उभरेंगे और समाजवाद के बदले तानाशाही वहाँ क्रांतिकारी साम्यवाद को खा जायेगी। 'वैज्ञानिक राजनीति' के स्थान पर रोमैंटिक या अबुद्धिवादी राजनीति अपने रंग में बार बार, एशिया में उभरती जाती है।

राय ने कहा था कि राजनीति सत्ता के लिए छीन-झपट और जर्थशास्त्र केवल स्वार्थ और कपट बन जाता है। अतः नैतिकता को महत्त्व देना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
समाज को मनुष्य ने बनाया, मनुष्य को समाज ने नहीं। राष्ट्र समाज का पर्यायवाची नहीं। जनतंत्र का उसके मूल व्यक्ति नागरिक से आरंभ करना होगा। मार्क्स ने पूँजीवादी समाज के बारे में जो कुछ भविष्यवाणी की थी वह सच नहीं निकली। क्रांति और प्रतिक्रांति के परस्पर संघात से, विश्व युद्धों में साम्यवाद की प्रथम बलि हुई। राय अंतिम दिनों में वेदांत के बहुत निकट पहुंचे थे और २५ जनवरी १९५४ के 'रैडिकल ह्यूमैनिस्ट' में लिखते हैं कि "मैं एक धार्मिक, दयालु नैतिक सभ्य मनुष्य को कहीं अधिक पसन्द करूँगा, बनस्पति कि बीसवीं सदी के इन बर्बर 'नियांडरथेलर' से। यदि धर्म के सहारे जनजीवन में कुछ नैतिक भावना जागृत की जा सके तो उसमें क्या आपत्ति हो सकती है।"

एम० एन० राय पर इतने विस्तार से लिखने का अर्थ अन्य साम्यवादी विचारकों डांगे और डी० डी० कोसंबी, नंबूद्रीपाद और देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय, स्वामी सहजानन्द और राहुल सांकृत्यायन के महत्त्व को कम करना नहीं है। आज मार्क्सवाद पर प्रायः जो कुछ इन नेताओं ने और लेखकों ने लिखा है वह चर्वित चर्वण मात्र है। बहुत कम उसमें विचारों को नई दिशा देनेवाला है। बानी देशपांडे के वेदांत और मार्क्सवाद में कल्पना अधिक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्ररोचना

महर्षि दयानन्द का निर्वाण 30 अक्टूबर 1883 ई० को हुआ। उनके निर्वाण को सौ वर्ष हो गए। वह एक सार्वभौम व्यक्ति थे। नव जागरण के युग में उन्होंने समाज सुधार, शिक्षा, औद्योगिक तथा वैज्ञानिक उन्नति, समानता और सामाजिक न्याय, स्वतंत्रता, स्वदेशी तथा स्वभाषा का उद्‌घोष करते हुए स्वतंत्र, समृद्ध तथा रूढ़िमुक्त राष्ट्र की संकल्पना की थी। 'सत्यार्थ प्रकाश' में उन्होंने मनु आदि धर्मशास्त्रकारों का युगानुरूप नवीन भाष्य प्रस्तुत किया। आत्मिक तथा भौतिक उन्नति का ऐसा संतुलित उपाय इतने विशद वैचारिक और व्यावहारिक स्तर पर महर्षि से पूर्व किसी समाज सुधारक तथा युग द्रष्टा ने नहीं सुझाया था। श्री विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ तथा श्री अरविन्द जैसे युग प्रवर्तक विचारक भी स्वामी जी से प्रभावित थे। स्वामी जी के कार्य का बहुआयामी अध्ययन अभी आर्य समाज से बाहर विद्वानों द्वारा वैसा नहीं हुआ जैसा होना चाहिए था। मेरा विश्वास है कि आधुनिक परिप्रेक्ष्य में स्वामी जी के कार्य का पुनर्मूल्यांकन होना चाहिए, यह मूल्यांकन इसलिए भी आवश्यक है कि आज मानव धर्म, लोकतंत्र, सामाजिक समानता, सामूहिक अभ्युदय नैतिकता तथा लोक जीवन के उत्कर्ष से सम्बन्धित मूल्यों को खतरा पैदा हो गया है। पुनर्मूल्यांकन की दिशा में पहल करने के लिए हमने निर्वाण शताब्दी पर प्रसार-व्याख्यान माला का शुभारंभ किया है। इसके अन्तर्गत डा० भवानी लाल भारतीय, आचार्य एवं अध्यक्ष, दयानन्द पीठ पंजाब विश्वविद्यालय तथा डा० प्रभाकर माचवे निदेशक भारतीय भाषा परिषद कलकत्ता के 'दयानन्द के विचार, समय की कसौटी पर' तथा 'दयानन्द, गाँधी और मार्क्स' विषय पर व्याख्यान सम्पन्न हो चुके हैं और अब इस क्रम में दैनिक ट्रिब्यून के पूर्व सम्पादक तथा अंग्रेजी और हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक श्री मदन गोपाल का तृतीय व्याख्यान 'दयानन्द और प्रेमचन्द' विषय पर आयोजित किया जा रहा है। आशा है, दोनों कालजयी विचारकों का यह तुलनात्मक अध्ययन विचार के लिए नई दिशाओं का उद्‌घाटन करेगा।

महर्षि दयानन्द ने धार्मिक, सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में नवीन संभावनाएं व्यक्त की। स्वदेशाभिमान, स्वात्मबोध तथा राष्ट्रीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौरव को जाग्रत कर स्वाधीनता संग्राम का मार्ग प्रशस्त किया । उन्होंने हताश पराधीन युवकों के भीतर सषुप्त अहं को जगाया जिनके कानों में निरन्तर यह शोक पूर्ण मंत्र फूंका गया था कि भारत का इतिहास सतत अपमान, अधःपतन विदेशियों की पराधीनता तथा बाह्य शोषण की शोचनीय गाथा है । प्रेमचंद का साहित्य भी साम्राज्यवादियों के फैलाये हुए इतिहास और संस्कृति सम्बन्धी भ्रमों और धारणाओं को छिन्न-भिन्न करने वाला है । उन्होंने सम्पूर्ण भारत तथा उसके स्वाधीनता-आन्दोलन को प्रतिबिम्बित किया । शासकीय आतंक के विरुद्ध त्याग और बलिदान का अमोघ व्रत लेकर चलने वाली जनसाधारण की सेना उन्होंने जन संस्कृति के रक्षार्थ खड़ी की । सांस्कृतिक और राजनीतिक जागरण के युग में जनवादी साहित्यिक आन्दोलन के वह पहरेदार थे । अब तक प्रायः प्रेमचंद, गांधी और तालस्ताय के तुलनात्मक अध्ययन की बात की जाती रही है पर दयानन्द के साथ उनका संबन्ध जोड़कर नहीं देखा गया । गवर्नमेंट सेन्ट्रल ट्रेनिंग कालेज इलाहाबाद में पढ़ते हुए वह प्रसिद्ध आर्य समाजी विद्वान पण्डित गंगा प्रसाद उपाध्याय के सम्पर्क में रहे थे । बरेली के आर्य समाजी शंकरलाल श्रोत्रिय के विज्ञापन को पढ़कर उन्होंने मुंशी देवीप्रसाद की बाल विधवा कन्या से पुनर्विवाह किया । अमृतराय ने तो लिखा ही है कि प्रेमचंद जी जलसों में तो जाते ही थे, आर्यसमाज के बाजाब्ता सदस्य भी थे । उन्होंने अपनी पुत्री कमला की प्रारंभिक शिक्षा का प्रबन्ध भी आर्य महिला विद्यालय लखनऊ में किया था । माधुरी का सम्पादन करते हुए सत्यदेव विद्यालंकार प्रणीत पुस्तक 'दयानन्द दर्शन', चमूपति जी कृत, ग्लेम्पसेज आफ दयानन्द तथा घासीराम कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के अंग्रेजी अनुवाद 'इन्ट्रोडक्शन टू द कमेन्ट्री आन द वेदाज' की उन्होंने साहित्यिक समीक्षा की थी । यही नहीं । प्रेमचंद के कहानी संग्रह 'सोजेवतन' की समीक्षा लाहौर से प्रकाशित आर्य गजट में छपी थी । 1926 में कांगड़ी से प्रकाशित अलंकार तथा गुरुकुल समाचार में कायाकल्प, प्रेम प्रतिमा तथा प्रेम द्वादशी की समीक्षाएं प्रकाशित हुई थीं । अलंकार के गुरुकुल जयन्ती विशेषांक में प्रेमचंद जी का 'ऋषि के जीवन का एक पृष्ठ' शीर्षक लेख भी प्रकाशित हुआ था । 1935 में प्रकाशित हंस में अलंकार के श्रद्धानन्द विशेषाङ्क की समीक्षा छपी है । कन्या गुरुकुल देहरादून से प्रकाशित तथा विद्यावती सेठ द्वारा सम्पादित 'ज्योति' पत्रिका में वरदान तथा रंगभूमि की समीक्षाएं प्रकाशित हुई । ज्योति के एक अंक में प्रेमचंद जी की पत्नी शिवरानी का 'भारतीय महिलाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अपनी बहनों के प्रति कर्त्तव्य' लेख छपा था। बात जुलाई सन् 1924 की है। प्रेमचंद जी ने अपने दोनों पत्रों—जागरण और हंस—में स्वामी दयानन्द और स्वामी श्रद्धानन्द के चित्र छापकर अपने आर्यसमाज विषयक भावों को स्पष्ट किया था।

1926 के वार्षिकोत्सव पर प्रेमचंद जी गुरुकुल कांगड़ी पधारे थे अपने गुरुकुलीय संस्मरणों को उन्होंने माधुरी में प्रकाशित कराया था। गुरुकुल में आने से पूर्व वह गुरुकुल को साम्प्रदायिकता का केन्द्र मानते थे और जो भाषण वह लिखकर लाए थे, उसमें उनका पूर्वाग्रह लक्षित होता था पर यहां आकर उनकी धारणा बदल गई और उन्होंने वह लिखित भाषण न पढ़कर स्वतंत्र मौखिक विचार व्यक्त किए तथा स्वीकार किया कि गुरुकुल में वह गुरु बनकर आये थे परन्तु शिष्य बनकर जा रहे हैं। अगस्त 1927 की ज्योति में 'गुरुकुल में प्रेमचंद' शीर्षक के अन्तर्गत यह विवरण प्रकाशित हुआ। तत्कालीन आचार्य रामदेव ने उनका स्वागत करते हुए उनकी तुलना अंग्रेजी के साहित्यकार थैकरे से की थी। 1936 में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के वार्षिकोत्सव पर लाहौर में उन्होंने सभापति पद से जो व्याख्यान दिया था उसमें गुरुकुल शिक्षा पद्धति, नारी शिक्षा, वेद प्रचार, अछूतोद्धार, कर्मणा वर्ण व्यवस्था, जात-पात का निषेध स्वदेश प्रेम-चरित्र निर्माण आदि विषयों पर आर्य समाज के दृष्टिकोण की सराहना की थी। कहने का आशय यह कि प्रेमचंद जी पर दयानन्द का गहरा प्रभाव था और आर्य समाज की संस्थाओं ने उनसे अपना घनिष्ट सम्बन्ध जोड़कर इस महान उद्देश्य को प्रचारित कराने में प्रेमचंद जी का लाभ उठाया था। गुरुकुल का उनसे गहरा रिश्ता है अतः आज परिसर में दोनों महापुरुषों को श्रद्धांजली अर्पित करते हुए परम संतोष का अनुभव हो रहा है हमें।

दयानन्द और प्रेमचंद जीवन संग्राम में तटस्थ रहने वाले चिन्तक नहीं थे। दोनों ने साम्राज्यवादियों, पोंगे पोपों और धर्माचार्यों तथा संस्कृति-विरोधियों के खिलाफ कलम का अचूक अस्त्र प्रयुक्त किया। दोनों महान् भारत के भविष्य द्रष्टा थे। दोनों शोषण और सामाजिक अत्याचार का विरोध जीवन भर कमर कस कर करते रहे।

प्रसन्नता का विषय है कि प्रेमचंद के विशेषज्ञ विद्वान श्री मदन गोपाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज दयानन्द और प्रेमचंद पर व्याख्यान देने के लिए हमारे मध्य हैं। उन्होंने प्रेमचंद पर हिन्दी तथा अंग्रेजी में अधिकार पूर्वक लिखा है। हिन्दी में 'कलम का मजदूर: प्रेमचंद' तथा अंग्रेजी में 'मुंशी प्रेमचंद' उनकी बहुचर्चित कृतियां हैं। अमृतराय की पुस्तक 'कलम का सिपाही' से अधिक परिश्रम मदन गोपाल जी की पुस्तक में परिलक्षित होता है। आशा है, मदन गोपाल जी का यह व्याख्यान दयानन्द और प्रेमचंद को समझने में अधिक सहायक होगा। मैं श्री मदन गोपाल जी को हृदय से धन्यवाद देता हूं। विश्वविद्यालय के यशस्वी विद्वान् डा० विष्णुदत्त राकेश को इस व्याख्यान माला का सफलतापूर्वक संयोजन करने के लिए भूरिशः साधुवाद।

श्रद्धानन्द बलिदान-दिवस
23 दिसम्बर 1984

बलभद्र कुमार हूजा
कुलपति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१

महर्षि दयानन्द के निधन के समय प्रेमचंद की आयु तीन वर्ष की थी। उनका असली नाम धनपत राय था। उनकी शिक्षा काशी में हुई, वही काशी जहां स्वामी दयानन्द का कड़ा विरोध हुआ था।

जब धनपतरात स्कूल में पढ़ रहे थे तब आर्य समाज ने उत्तर भारत के जनजीवन में एक नयी चेतना का संचार किया। महर्षि के समय हुए वाद-विवादों की गूंज अभी भी सुनाई दे रही थी। महर्षि के अकाट्य तर्कों ने धार्मिक अन्ध-विश्वासों और रूढ़ीवादी संकीर्णताओं की बुनियादें हिला दी थीं। उस युग के एक महान सुधारवादी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपनी पत्रिका हरिश्चन्द्र मैगजीन के सहायक सम्पादकों की सूचि में महर्षि जी का नाम भी सम्मिलित किया था। क्योंकि महर्षि जी की कुछ कृतियां उस पत्रिका में छपी थीं। जनता द्वारा नयी विचारधारा का स्वागत पुरातनपंथी संकीर्णताओं के मुँह पर कड़ा तमाचा था। प्रेमचंद ही शायद ऐसे प्रथम साहित्यकार थे जिन्होंने अपने उपन्यासों और कहानियों के माध्यम से महर्षि का संदेश घर-घर पहुंचाया। अपने सुधारवादी दृष्टिकोण के कारण वह जल्द ही जन-जन में लोकप्रिय हो गए और प्रमुख आर्य समाजी साहित्यकार के रूप में साहित्य गगन पर छा गए। उनकी कृतियों में प्रचारक की ध्वनि नहीं है, और न ही नारेबाजी है। इनके स्थान पर हमें सुधारवादी और शिक्षात्मक स्वर सुनाई देता है। उनके आर्य समाजी विचार थोथे नहीं लगते।

प्रेमचंद की सर्वप्रथम नौकरी अट्ठारह रुपये महीने पर चुनार के मिशनरी स्कूल में लगी थी। एक मैट्रिक पास को उन दिनों अट्ठारह रुपये वेतन मिलना बड़ी बात थी। प्रेमचंद ने स्वयं लिखा है कि नौकरी मिलते ही जब वह घर की ओर चले तो उनके पांव जमीन पर न पड़ते थे। परन्तु ईसाई मिशनरी स्कूल में उनका टिकना आसान नहीं था। वह कुछ ही महीने वहां काम कर पाये। चुनार में गोरे लोगों की पलटन तैनात थी। प्रेमचंद स्वतंत्र विचारों के व्यक्ति थे, बड़े स्वाभिमानी। गोरे सिपाहियों और स्थानीय युवकों के खेल में झड़प के सिलसिले में बात आगे बढ़ी और धनपतराय को स्कूल से निकाल दिया गया। जितने दिन रहे परिस्थिति अनुकूल नहीं थी। स्कूल तो मिशनरियों का था ही। यहां उन पादरियों का भी अड्डा था जो ईसाईमत का प्रचार करते थे और गरीब किसानों तथा अछूतों को प्रलोभन देकर ईसाई धर्म की लपेट में ले रहे थे। यही कारण था कि इस छोटे से नगर में दो गिरजाघर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे । आगे चलकर प्रेमचन्द ने अकाल और विपदा ग्रस्त लोगों के धर्म परिवर्तन के बारे में कहानियां भी लिखी ।

कहानियों से पहले मैं उनके उपन्यासों को लेता हूं । प्रारंभिक तीन उर्दू कृतियां हैं "असरारे माबिद", "हम खुर्मा व हम सवाब" और "किशना" । "असरारे माबिद" अधूरा रहा । इसका हिन्दी में अनुवाद नहीं हुआ । "किशना" का भी नहीं हुआ (इस उपन्यास की तो अभी तक एक भी प्रति उपलब्ध नहीं हो सकी है ।) "हमखुर्मा व हम सवाब" की कुछ प्रतियां उपलब्ध हैं । इन तीनों में से कौन सी पुस्तक कब लिखी गई और कब प्रकाशित हुई इसके बारे में मतभेद हैं । "असरारे माबिद" बनारस की पाक्षिक उर्दू पत्रिका "आवाजे खल्क" में छपा । पहली किस्त 8 अक्तूबर, 1903 को, और आखरी किस्त फरवरी, 1905 को, लेखक का नाम था "नवाब राय इलाहाबादी" । प्रेमचंद इसे पूरा नहीं कर सके । आगे चलकर "किशना" के आधार पर 'गबन' लिखा । "हमखुर्मा व हम सवाब" का हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हुआ, यह था प्रेमा । "असरारे माबिद" का उन्होंने कहीं जिक्र नहीं किया । शायद इस लिए कि इस उपन्यास में विशेष फक्कड़पन तो है ही थोड़ी अश्लीलता भी है । इसकी पात्र रामकली एक महन्त के प्रेम पाश में फंसी है । बाजारू प्रवृत्ति की औरत है । महन्त से इतनी घनिष्ठता है कि घर के जेवर चुराकर उसे दे देती है । "हम खुर्मा व हम सवाब" में भी हमें रामकली का किरदार मिलता है । वहाँ वह विधवा है । महन्त जी वहां भी हैं । दोनों उपन्यासों में महन्त या पुजारियों की खिल्ली उड़ाई गयी है । ऐसे ही जैसे आर्य समाजी प्रचारक उनकी कुरीतियों का भंडा फोड़ कर दिखलाते थे । "हमखुर्मा व हम सवाब" आर्य समाजी रंग में रंगा है । तब प्रेमचंद की आर्य समाज में पूरी आस्था थी । वह समाज सुधार के इच्छुक थे । यह पुस्तक प्रेमचंद को प्रिय भी थी । उर्दू में इसके शायद तीन संस्करण निकले । हिन्दी में इसका उल्था कर 'प्रेमा' के शीर्षक से प्रकाशित करवाया । फिर बीस वर्ष बाद इसके 'प्लाट' में थोड़ा परिवर्तन कर इसे 'प्रतिज्ञा" के नाम से छपवाया ।

उपन्यास का नायक अमृतराय स्वयं प्रेमचंद का मुखपात्र है । आरंभ में प्रेमचंद की आकांक्षा थी वकील बनने की । स्वयं वकील नहीं बने, परन्तु अमृतराय को वकील का जामा पहनाया । यही नहीं अमृतराय का एक विधवा से विवाह भी करवाया । हिन्दी उपन्यास में यह नयी बात थी । स्वयं प्रेमचंद ने भी एक बाल विधवा से विवाह किया । महर्षि ने विधवाओं के लिए नियोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की प्रथा को पुनर्जीवित करने का प्रचार किया था। परन्तु कितने ही आर्य समाजियों ने विधवा विवाह का प्रचार किया। महर्षि जी ने इसका विरोध नहीं किया। यही नहीं आर्य मेसेंजर में विधवाओं के विवाह संबंधी विज्ञापन भी छपते थे। महर्षि जी ने उन्हें देखा था।

"हमखुर्मा व हम सवाब" उपन्यास के नायक अमृतराय ने प्रचारक धनुषधारी का व्यख्यान सुना। इतने प्रभावित हुए कि कुछ अंश भी नोट कर लिए। जब अमृतराय ने अपने मित्र दाननाथ को बतलाया कि उसने धनुषधारी का व्याख्यान सुना था तो दाननाथ ने व्याख्यान का विषय पूछा। अमृतराय ने कहा—"जाति की उन्नति के सिवा दूसरी कौन सी बात हो सकती थी? लाला साहब ने अपना जीवन इसी काम के हेतु अर्पण कर दिया है। आज ऐसा सच्चा देशभक्त और निष्काम जाति सेवक इस देश में नहीं है। यह दूसरी बात है कि कोई उनके सिद्धांतों को माने या न माने। मगर उनके व्याख्यानों में ऐसा जादू होता है कि लोग आप ही आप खिंचे चले आते हैं। मैंने लाला साहब के व्याख्यानों के सुनने का आनन्द कई बार प्राप्त किया है। मगर आज की स्पीच में तो बात ही और थी। ऐसा जान पड़ता है कि उनकी जबान में जादू भरा है। शब्द वही होते हैं जो हम रोजमर्रा काम में लाया करते हैं। विचार भी वहीं होते हैं जिनकी हमारे यहां प्रतिदिन चर्चा रहती है। मगर उनके बोलने का ढंग कुछ ऐसा अपूर्व है कि दिल को लुभा लेता है।"

अमृतराय बह गये। आदर्श के नाम पर किसी भी विधवा से विवाह का संकल्प किया।

जब इस तरह का संदेश उनकी मंगेतर प्रेमा के पिता बदरी प्रसाद के पास पहुंचा तो उन्होंने अमृतराय को लिखा—"हमने सुना है कि अब आप सनातन धर्म को त्याग करके ईसाइयों की उस मंडली में जा मिले हैं जिसको लोग भूल से सामाजिक सुधार सभा कहते हैं। इसलिए अब हम अति शोक के साथ कहते हैं कि हम आपसे कोई बात नहीं कर सकते।" अमृतराय को धक्का लगता है। संघर्ष था देशभक्ति और आत्मस्वार्थ के बीच। लेखक के अनुसार देशभक्ति ने आत्मस्वार्थ को परास्त कर दिया। अमृतराय ने बदरी प्रसाद को लिखा—"कृपा पत्र आया। पढ़कर बहुत दुख हुआ। आपने मेरी बहुत दिनों की बंधी हुई आशा तोड़ दी। खैर, जैसा आप उचित समझें वैसा करें। मैंने जब से होश संभाला है तब से मैं बराबर सामाजिक सुधार का पक्ष करता हूं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे विश्वास है कि हमारे देश की उन्नति का इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं है। आप जिसको सनातन धर्म समझ बैठे हैं वह अविद्या और असभ्यता का प्रत्यक्ष स्वरूप है। आपका कृपाकांक्षी—अमृतराय।"

प्रेमा का विवाह अमृतराय के परममित्र दाननाथ से हो जाता है।

अमृतराय पूर्णा के पति के गंगा में डूब जाने पर उसे सहानुभूति दिखलाते हैं। दिल में बैठा सुधारक कहता है। पूर्णा का दूसरा विवाह होना चाहिए। पूर्णा को मनाया जाता है। जब विधवा विवाह का समाचार शहर में फैलता है तो बदरी प्रसाद के घर पर इसकी चर्चा होती है। विद्वान और धनाढ्य लोग इकट्ठे होते हैं, शादी को रोकने के तरीकों पर बहस होती है।

पंडित भृगुदत्त : विधवा विवाह वर्जित है। कोई हमसे शास्त्रार्थ कर ले। वेद-पुराण में कहीं ऐसा अधिकार कोई दिखा दे तो हम आज से पंडिताई करना छोड़ दें।

बहुत से लोग चिल्लाए : हां हां जरूर शास्त्रार्थ हो।

लोगों को शास्त्रार्थ पर उतारू देखकर बदरी प्रसाद बोले : किस से करोगे शास्त्रार्थ ? मान लो वह शास्त्रार्थ न करे। तब ?

सेठ धूनीमल : बिना शास्त्रार्थ किए विवाह कर लेंगे ? थाने में रपट करा दूंगा।

ठाकुर जोरावर सिंह : कोई ठट्ठा है ब्याह करना। सिर काट दूंगा। लहू की नदी बह जाएगी।

राव साहब : बारात की बारात काट डाली जाएगी।

सैंकड़ों आदमी आकर डंट गये और आग में ईंधन लगाने लगे।

एक : जरूर से जरूर सिर गंजा कर दिया जाये।

दूसरा : घर में आग लगा देंगे। सब बारात जलभुन जायेगी।

तीसरा : पहले उस स्त्री का गला घोंट देंगे।

एक ओर विवाह की तैयारियां हो रही हैं। दूसरी ओर लठैतों के सरदार ठाकुर जोरावर सिंह अमृतराय को खत भेजते हैं। लिखा था : हमने सुना है कि आप विधवा ब्राह्मणी से विवाह करने वाले हैं। हम आपसे कहे देते हैं कि भूल कर भी ऐसा न कीजिएगा। नहीं तो आप जानें और आपका काम।'

अमृतराय प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। रसूख वाले हैं। विवाह सम्पन्न हो जाता है। विरोधी दल दांत-पीसता रह जाता है।

सेठ धूनीमल पंडित भृगुदत्त से कहते हैं : महाराज कुछ ऐसा यत्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कीजिए कि इस दुष्ट का सत्यानाश हो जाए। कोई नामलेवा न बचे।

भृगुदत्त : सर्वथा नाश न कर दूं तो ब्राह्मण नहीं। आज के सातवें दिन उनका नाश हो जाएगा।

सेठ जी : द्रव्य जो लगे बेखटक कोठी से मंगा लेना।

भृगुदत्त : इसके कहने की कोई आवश्यकता नहीं। केवल पांच सौ ब्राह्मणों को प्रतिदिन भोजन कराना होगा।

एक और अंधविश्वास और अविद्या का वातावरण है दूसरी ओर एक ब्राह्मणी विधवा का एक क्षत्रीय अविवाहित पुरुष से विवाह, अर्न्तजातीय सीमाओं को लांघ कर प्रेमचन्द ने अन्तर्जातीय विवाह का प्रचार किया।

अमृतराय और पूर्णा के विवाह के बाद भी प्रेमा के हृदय में अमृतराय की मूर्ति ज्यों की त्यों रही। यह बात दान नाथ को खटकी। दान नाथ को अमृत-राय से इतनी ईर्ष्या थी कि वह अमृतराय को मारने चला। प्रेमा ने पूर्णा को सावधान किया। परिणाम यह हुआ कि दान नाथ और पूर्णा एक दूसरे को गोली का निशाना बना देते हैं। प्रेमा विधवा हो जाती है। तब प्रेमचन्द अमृतराय का विवाह विधवा प्रेमा से करवा देते हैं। यह समाज सुधार और देशोद्धार के हित में है। देशोद्धार की भावना अगले उपन्यास 'जलवाए ईसार', हिन्दी में 'वरदान', में भी है। इस उपन्यास के नायक की माँ सुवामा अष्टभुजी देवी से वरदान मांगती है। देवी की उसके कान में आवाज आती है --सुवामा मैं तुम से बहुत खुश हूं। माँग क्या मांगती है।

मैं जो कुछ माँगूंगी, क्या देवी जी देंगी ?

हां, मिलेगा।

मैंने बड़ी तपस्या की है। इसके लिए भारी वरदान माँगूंगी।

क्या लेगी ? कुबेर का धन ?

नहीं।

इन्द्र का बल ?

नहीं।

सरस्वती की विद्या ?

नहीं।

संसार का सबसे उत्तम पदार्थ मांगती है।

वह क्या है ?

सपूत बेटा जो कुल का नाम रोशन करे ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं ।

जो मां बाप की सेवा करे ?

नहीं ।

जो विद्वान और बलवान हो ?

नहीं ।

फिर सपूत बेटा किसे कहती है ?

जो अपने देश का उपकार करे ।

इस उपन्यास का नायक सुवामा का बेटा प्रतापचन्द है जो संन्यास लेकर बालाजी का नाम ग्रहण करता है ।

कुछ समालोचकों ने बालाजी का आधार स्वामी विवेकानन्द बतलाया है । इस धारणा का मुख्य कारण यह है कि जिस समय वरदान लिया जा रहा था उन्हीं दिनों प्रेमचन्द ने विवेकानन्द पर एक लेख 'जमाना' में छपवाया था । स्वामी विवेकानन्द द्वारा लिखी गयी किसी पुस्तक का उर्दू अनुवाद भी 'अदीब' में छपवाया था ।

परन्तु बालाजी का चरित्र विवेकानन्द पर नहीं स्वामी दयानन्द पर ढाला गया है··· 'अभी बहुत दिन नहीं गुजरे कि प्रतापचन्द एक गुमनाम आदमी था । आज उसका नाम बच्चे-बच्चे की जबान पर है । क्या उसके पास कारूं का खजाना था ? पनघट पर जब औरतें कूल्हों पर घड़े रक्खे पानी के लिए आती हैं तब बालाजी ही के चर्चे होते है और उन्हीं के जस गाये जाते हैं । अनाज के खेतों में उन्हीं की बड़ाई होती है । यही कौमी खिदमतगार का इनाम है । कलकत्ता में जव वह गये फूलों की बरसा हुई । हजारों मन फूल पैरों तले रौंद डाले गये । उस दिन मंदिर में देवताओं को फूलों की बास न मिली । रंगीन मिजाजों के गले में फूलों के गजरे न दिखाई दिये ·····। जब वह भागीरथी के किनारे पानी में सूर्यास्त की बहार देख रहे थे तो कई औरतें पानी भरने आयीं और घड़ों को पानी में घुमा-घुमाकर बातें करने लगीं ।

एक ने कहा : बहन तूने सुना नहीं बालाजी आये हैं ।

दूसरी बोली : हमारे ऐसे भाग कहां जो उनके दर्शन मिलें ।

तीसरी बोली : तू चलने पर राजी हो तो मैं तेरे साथ चलूं । वह आज अपनी गौशाला देखने आयेंगे । कौन दूर है । गऊओं के लिये खली और दाना भी ले जाना । एक पंथ दो काज हो जाएंगे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौथी बोली : "ऐसा न करेंगी तो बड़ा पाप होगा। देख जब से इनका गौशाला खुला है लड़कों को दोनों वक्त दूध पीने को मिल जाता है नहीं तो रूखी रोटियों को तरसते थे।

आगे लिखा है : बालाजी ने गांव-गांव में गौशाले खुलवा दिये। उनका सिद्धांत था कि हमारी कौमी तबाही और जवाल का असली सबब हमारा जिस्मानी जौफ और जातों की बेजा 'तफरीक है। हमारे बच्चे रुखी रोटियों को तरसते हैं और दूध-घी की खुशबू भी उनके नाक तक नहीं पहुंचने पाती··· आज तक जितने ऋषि और महात्मा हो गुजरे हैं उन सबने उस तफरीक के मिटाने की कोशिशें की हैं। महात्मा बुद्ध पहले बुजुर्ग थे जिन्होंने हिन्दुओं की पेशानी पर से इस बे-इंसाफी और जुल्म का दाग मिटाना चाहा और उन्हें बहुत कुछ कामयाबी भी हुई। उनके बाद श्री शंकराचार्य, श्री रामानुज, श्री चैतन्य, श्री रामकृष्ण, श्री स्वामी दयानन्द और स्वामी रामतीर्थ। सभी महात्माओं ने यही तालीम दी कि अपने भाइयों को अपना भाई समझो। नादान भाई भी तुम्हारा भाई है। उसे नीचा मत समझो। तुम्हारी मुक्ति एकता से होगी तफरीक से नहीं··।" यही था आर्य समाज का संदेश। यही था महर्षि दयानन्द का संदेश। इन दिनों प्रेमचन्द विधिवत आर्य समाज के सदस्य थे। फरवरी, 1913 में मझगांव से निगम को लिखा : "मेरे जिम्मे हमीरपुर आर्य समाज के दस रुपये बाकी हैं। बार-बार तकाजा हुआ है, मगर तंगदस्ती ने इजाजत न दी कि अदा कर दूं। आप अगर एफोर्ड कर सकें तो बरारास्त मेरे नाम से हमीरपुर आर्य समाज के सेक्रेटरी के नाम दस रुपये का मनीआर्डर कर दें। ममनून हूंगा। तकलीफ तो होगी मगर मेरी खातिर इतना सहना पड़ेगा क्योंकि यहां अब जलसा भी अनकरीब होने वाला है। मुकर्रर अर्ज यह है कि यह दस रुपये जरूर भेज देवें। मैंने जनवरी में अदा करने का इतमी वायदा किया है।"

एक महीने बाद फिर याद कराया : "अगर आपने हमीरपुर समाज के नाम दस रुपये न रवाना किये हों तो बराहे करम अब कर दीजिए क्योंकि मैं 14 मार्च को वहां जाऊंगा और तकाजा नहीं सहना चाहता।"

शायद यही जलसा था जिसके बारे में आर्य समाज प्रचारक मौलवी आलिम फाजिल श्री महेश प्रसाद ने लिखा है कि गर्मियों में दो सहयोगियों सहित वह महोवा गये। प्रेमचन्द वहां सब-डिपटी इंसपेक्टर तैनात थे। तीनों प्रेमचन्द के घर पर ठहरे। उनके अपने शब्दों में : हम तीनों का सत्कार उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरन्तर सात-आठ रोज तक जिस प्रेम और नम्रता के साथ किया था उसको हम कभी नहीं भूल सकते। जिन विषयों पर चर्चा हुई उनमें से दो इस प्रकार थे :

(1) आर्य समाज और उसके कार्य संबंधी बातें और...

(2) ईसाइयों के उस कार्य के बारे में जो उस समय केवल महोवा में ही नहीं बल्कि हमीरपुर जिले में भी हो रहा था। प्रेमचन्द ने बतलाया कि हमारी सामाजिक बुराइयों का ही फल हैं कि महोबा अथवा बुंदेलखंड के स्थानों में हिन्दुओं के अनेक लड़की-लड़के ईसाइयों के घेरे में पहुंच गये!

इन्हीं दिनों प्रेमचन्द ने इसी विषय पर एक कहानी लिखी। शीर्षक था, "खूने सफेद"। अकाल ग्रस्त लोग अपने घर-बार छोड़कर रोजी के लिए मीलों दूर जाते हैं। एक परिवार था जादोराम और देवकी का। उनका बच्चा साधोराम बुखार में पड़ा था। मां बाप काम में लगे हैं। बच्चा पादरी मोहन-दास के खेमे की ओर आकर्षित होता है। पादरी उसे प्यार करता है, खाने को बिस्कुट और केले देता है। साधो बहुत प्रसन्न है। अगले दिन भी वहीं जाता है। मां-बाप उसे तलाश करते हैं, परन्तु निष्फल। वे निराश हो जाते हैं। उधर साधो को क्रिस्तान बनाकर पुणे भेज दिया जाता है।

अकाल के बाद इस क्षेत्र में खुशहाली आती है। जादोराम का परिवार सम्पन्न हो जाता है। उसका छोटा बेटा माधो और लड़की गिरि भी उसके काम में हाथ बंटाते हैं। एक दिन साधो साईकल पर चढ़कर आ धमकता है। मां-बाप की बाछें खिल जाती हैं। परन्तु ग्रामीण समाज ईसाई बेटे को नहीं स्वीकारता। साधो प्रायश्चित करने को तैयार है। नादानी से हुए कार्य के लिए दण्ड भोगने को भी तैयार है परंतु गांव के ठाकुर लोग लाल आंखें निकाल कर कहते हैं—"ठकुराइन! बिरादरी की तो तुम खुद मर्यादा करती हो। लड़का चाहे किसी रास्ते पर जाए, लेकिन बिरादरी चूं तक न करे। ऐसी बिरादरी कहीं और होगी। हम साफ-साफ कहे देते हैं कि अगर यह लड़का तुम्हारे घर में रहा तो बिरादरी भी बता देगी कि वह क्या कर सकती है।

साधो को छुआछूत और खाने-पीने के बारे में सलाह दी जाती है। मां-बाप निस्सहाय हैं। साधो तीक्षण शब्दों में कहता है, "क्या मान लूं? यही कि अपनों में गैर बनकर रहूं, अपमान सहूं। मिट्टी का घड़ा भी मेरे छूने से अशुद्ध हो जाए। न। यह मेरे किये न होगा। मैं इतना निर्लज्ज नहीं हूं।"

आगे चलकर वह कहता है—"मैं अपने घर में रहने आया हूं। अगर यह नहीं है तो मेरे लिए इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है कि जितनी जल्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो सके यहां से भाग जाऊं। जिनका खून सफेद है उनके बीच में रहना व्यर्थ है। और साधो बाईसिकिल पर चढ़ कर वहीं जाता है जहां से तंग होकर वह आया था। उसी क्षेत्र में जहां कोई अपना न था।

प्रेमचन्द ईसाइयों द्वारा प्रचार का विरोध करते थे। उनका दृष्टिकोण वही था जो आर्य समाज का। दयानारायण निगम एक उर्दू साप्ताहिक निकालना चाहते थे। प्रेमचन्द ने महोबा से लिखा : हफ्तेवार का नोटिस आपने निकाल ही दिया। जरा तबियत तो अच्छी होने देते। देखिये क्या कामयाबी होती है। आपका हफ्तेवार कामरेड के नमूने का होना चाहिए··· नाम हिंदू मौजू था। शायद इस नाम का कोई परचा पंजाब से निकलने लगा है। ··मगर (आपके) अखबार का नमूना कामरेड ही हो, पालिसी हिंदू। अब मेरा हिंदुस्तानी कौम पर ऐतबार नहीं रहा और उसकी कोशिश फजूल है।"

—o—

२

महर्षि दयानन्द ने लिखा है कि पांच हजार वर्ष पूर्व वेदमत से भिन्न दूसरा कोई भी मत न था। वेदों से विमुख होने के कारण ही महाभारत का युद्ध हुआ। अज्ञान और अंधकार के बढ़ने से लोग भ्रमयुक्त होकर मनमानी करने लगे। ईसाई प्रचारक भारत के लोगों को धड़ाधड़ ईसाई बना रहे थे। स्वामी दयानन्द ने उन्हें ललकारा। शास्त्रार्थ हुए। शास्त्रार्थ तो कट्टरपंथी मूर्तिपूजा के समर्थकों, ईसाइयों और मुस्लिम विद्वानोंसे भी हुये। महर्षि का एक लक्ष्य था ईसाई मत का विरोध। ईसाई मत विदेशी सत्ता का भी प्रतीक था।

कुरान का कोई हिन्दी संस्करण नहीं था। इसलिए महर्षिजी ने विशेष प्रयत्न करके इसका अनुवाद करवाया। सत्यार्थ प्रकाश के पहले संस्करण में इस्लाम के बारे में समुल्लास नहीं था। यह दूसरे संस्करण में दिया गया। मुसलमानों द्वारा स्वामीजी का विशेष विरोध नहीं हुआ। जब लाहौर में ब्रह्मो समाज के अनुयाइयों ने उन्हें समर्थन देने से इनकार कर दिया तो मुस्लिम डाक्टर खान बहादुर रहीम खान ने उनके ठहरने का प्रबंध किया। अमृतसर में जिस मकान में आर्य समाज की नींव रखी गयी वह मियां जानमुहम्मद का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। सर सैयद अहमद के घर पर स्वामीजी ने शास्त्रार्थ किया। सर सैयद ने अपने घर पर भोज के लिए निमंत्रण भी दिया। यह स्वीकारा नहीं गया। इसके कारणों की बात आगे होगी। निधन के समय भी उनका उपचार एक मुस्लिम डाक्टर अलीमर्दन खान कर रहे थे।

यह कहना अनुचित न होगा कि उन दिनों हिन्दु और मुसलमानों के बीच सौहार्द था। दयानन्द का विशेष प्रहार ईसाई मत पर था। समाज सुधार आर्य धर्म के प्रचार का मुख्य अंग था और समाज सुधार अप्रत्यक्ष रूप में राष्ट्र को विदेशी सत्ता के विरुद्ध तैयार करना था। आगे चलकर आर्य समाज के समर्थकों की राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका रही। अपनी पुस्तक 'दि सन आफ इंडिया' में ए. डी. रेनकर्ट ने लिखा है कि बंगाल की 1905 की क्रान्ति महर्षि दयानन्द की आर्य समाज की धार्मिक राष्ट्रीयता का परिणाम था। संयुक्त प्रान्त (आज का उत्तर प्रदेश) और मध्य प्रदेश जैसे प्रान्तों में आर्यसमाज ही राजनीतिक राष्ट्रीयता का केन्द्र बनी। सच तो यह है कि बीसवीं शताब्दि के आरम्भ में आर्यसमाजी भारी संख्या में राष्ट्रीय आंदोलन में कूद पड़े। पंजाब गवर्नर डेंजिल इबटसन ने लिखा है कि प्रांत के प्रत्येक जिले के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेटों ने उन्हें बतलाया था कि वहाँ की आर्यसमाजें ही विद्रोह का गढ़ बनी थीं। इबटसन के उत्तराधिकारी माइकल ओडवायर ने भी कहा था कि "हालांकि हिंदु जनसंख्या का पांच प्रतिशत से अधिक भाग आर्यसमाज में नहीं है फिर भी (1907 से 1918 तक) राजद्रोह से संबंधित लोगों में से अधिकांश आर्य समाजी ही थे।" लाला लाजपतराय, अजीतसिंह, भाई परमानंद, श्रद्धानंद, राजा महेन्द्र प्रताप, इन्द्र विद्यावाचस्पति, एम. जी. रानाडे, सत्यानंद ढींगड़ा इत्यादि कितने ही राष्ट्रवादी आर्यसमाज के अनुयायी थे।

इनमें से कितने ही लेखक थे परन्तु साहित्यकार केवल प्रेमचन्द थे। सरकारी नौकर होते हुए भी वह राष्ट्रवादी थे। उन्होंने "सोजे वतन" की भूमिका में लिखा : "हर एक कौम का इल्मीअदब अपने जमाने की सच्ची तस्वीर होता है। जो खयालात कौम के दिमागों को मुतर्हरिक करते हैं और जो जजबात कौम के दिलों में गूंजते रहे वह नज्म व नसर के सफहों में ऐसी सफाई से नजर आते हैं जैसे आइने में सूरत। हमारे लिटरेचर का इबतिदाई दौर वह था कि लोग गफलत के नशे में मतवाले हो रहे थे। इस जमाने की अदबी यादगार वजुज आशिकाना गजलों और चन्द किस्सों के और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ नहीं। दूसरा दौर उसे समझना चाहिये जब कौम के नये और पुराने खयालात में जिन्दगी और मौत की लड़ाई शुरू हुई और तमद्दुन की तजवीज सोची जाने लगीं। इस जमाने के किस्से व हिकायात ज्यादातर इस्लाह और तजदीद ही का पहलू लिए हुए हैं। अब हिंदुस्तान के कौमी खयालात ने बलोगियत के जीने पर एक कदम और बढ़ाया है और हुब्बे वतन के जजबात लोगों के दिलों में सर उभारने लगे हैं। क्योंकर मुमकिन था कि इसका असर अदब पर न पड़ता। ये चन्द कहानियां इस असर का आगाज़ हैं और यकीन है ज्यों-ज्यों हमारे ख्याल रकीह होते जाएंगे, इस रंग के लिटरेचर को रोज अफ्जूं फरोग होता जाएगा। हमारे मुल्क को ऐसी किताबों की अशद जरूरत है जो नई नसल के जिगर पर हुब्बे वतन की अज़मत का नक्शा जमाये (नवाबराय)।"

देश प्रेम की इन पाँच कहानियों को विद्रोहात्मक माना गया। पुस्तक पर प्रेस का नाम नहीं छपा था। इसलिए सरकार की सी. आई. डी. ने पूछताछ की। पता चला कि 'नवाब राय' तो धनपत राय का कलमी नाम है और धनपतराय महोबा में डिप्टी इंसपेक्टर आफ स्कूल्स तैनात है। धनपतराय की तलब हुई। रातोंरात सफर कर कलक्टर के यहां पेशी हुई। उसकी मेज पर 'सोजे वतन' की एक प्रति पड़ी थी। कलक्टर ने कहा इन कहानियों में राजद्रोह भरा पड़ा है। मुगल राज होता तो तुम्हारे हाथ काट दिये जाते। अंग्रेजी राज की बरकत है कि तुम्हें छोड़ दिया जाता है। स्टाक में सारी पुस्तकें सरकार के हवाले कर दी गयीं। इन्हें नष्टकर दिया गया।

हुक्म हुआ आगे से लिखना बन्द और किसी लेख के प्रकाशन से पहले सरकारी अनुमति आवश्यक है। धनपतराय ने अपने मित्रों को बतलाया कि बच गये वरना मांडले की हवा खानी पड़ती। उन्होंने निगम को लिखा कि भविष्य में सरकारी अनुमति लेनी होगी विषय कुछ भी हो। चाहे लेख हाथी दांत पर ही क्यों न लिखा हो। इस पर निगम ने प्रेमचन्द के कलमी नाम का सुझाव दिया।

'जलवाए ईसार' (वरदान) इन्हीं दिनों लिखा जा रहा था। इस पर नाम नवाब राय ही दिया गया। हम देख चके हैं कि सुवामा की इच्छा है कि उसका पुत्र प्रतापचन्द्र देशोद्धार करे और यह कि नायक का चरित्र दयानन्द पर ढाला गया है। आगे चलकर प्रेमचन्द ने इस तरह की कहानियां भी लिखी जिनसे स्वाभिमान और राष्ट्रीयता की भावना उजागर हो। जलियांवाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हत्याकांड के बाद प्रेमचन्द के दिल पर एक भारी बोझ था। गोरखपुर में गांधी जी का भाषण सुना और अपनी नौकरी से त्याग पत्र दे दिया। बाद में लेखन के माध्यम से राष्ट्रीय संग्राम में अपना योगदान दिया। उन्हें गांधी युग का प्रमुख साहित्यकार माना जाता है। उनमें राष्ट्रीयता की भावना प्रबल थी, इतनी प्रबल कि उनकी विचारधारा भी बदली। महात्मागांधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने खिलाफत आन्दोलन को अपना समर्थन दिया। प्रेमचन्द ने भी इसी नीति का समर्थन किया। मौलाना मुहम्मद अली और शौकतअली की प्रशंसा की और उनकी तुलना राम-लखन की जोड़ी से की। दस वर्ष पूर्व हिन्दुस्तानी कौम में आस्था न रखने वाले प्रेमचन्द अब राष्ट्रीय विचारधारा का अनुसरण कर रहे थे। इस विचारधारा का आधार था हिन्दु, मुस्लिम मतभेदों को दूर करना।

महर्षि दयानन्द के जीवन-काल में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच विशेष मतभेद नहीं थे। जब महर्षिजी से पूछा गया कि क्या एक मुसलमान आर्य हो सकता है तो उन्होंने कहा हां। परन्तु जब झेलम आर्य समाज एक मुस्लिम का शुद्धीककरण करने जा रही थी तो महर्षिजी ने उन्हें कहा अभी अवसर नहीं आया है।

1877 में, जब महर्षिजी आगरा में थे तब मिर्जापुर के एक मुसलमान ने गाय की कुर्बानी की घोषणा की। वहां के हिन्दुओं ने कुर्बानी को रोकने का प्रयत्न किया। इसी मंशा का मजिस्ट्रेट से हुक्म दिलवाया। वाद-विवाद चला। इस बीच एक दूसरा मजिस्ट्रेट आ गया। उसने आदेश दिया कि गाय उस मुसलमान की निजी सम्पत्ति है। वह जैसा चाहे कर सकता है। यदि किसी को आपत्ति है तो 5 सप्ताह के भीतर अदालत जा सकता है।

वाद-विवाद ने जोर पकड़ा। भारतेन्दु ने अपनी पत्रिका में भर्त्सना की और कहा कि बहुसंख्यक जाति की उपेक्षा कर अल्पसंख्यक जाति को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। तभी महर्षिजी ने गोवध के विरुद्ध आन्दोलन चलाया। इन्हीं दिनों अंग्रेजों ने हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच फूट की योजना बनायी। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के तुरन्त बाद अंग्रेज शासक मुसलमानों का दमन कर रहे थे। परन्तु बीस वर्षों बाद उन्होंने देखा कि हिन्दुओं में जनचेतना आ रही है। और इस पर अंकुश लगाने का एक ही मात्र तरीका था जनता में फूट डालना, हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच टकराव की स्थिति पैदा करना। एक्सपेंशन आफ ब्रिटिश इम्पायर में सैसीले ने इस सिद्धांत का विश्लेषण किया। एक अंग्रेज गवर्नर ने तो यहां तक कहा कि यदि उसकी दो बीवियां हों, एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दू और दूसरी मुस्लिम, तो वह मुस्लिम बीबी को अधिक प्यार करेगा। इसी नीति के अन्तर्गत अलीगढ़ मुस्लिम कालेज और बाद में विश्वविद्यालय की नींव पड़ी। यहां के प्रिंसिपल और अन्य नेताओं ने मुसलमानों को अलग कौम की परिभाषा दी।

एक समय सर सैयद अहमद खान ने कहा था भारतीय कौम से मेरा मतलब है दोनों हिन्दु और मुसलमानों से। मेरे लिए इस बात का बिल्कुल महत्व नहीं है कि किसी व्यक्ति का क्या धर्म है। क्योंकि धर्म हमें दिखलाई नहीं देता। जो दिखलाई देता है वह यह है कि हिन्दू हो या मुसलमान, सब एक ही देश में रहते हैं और एक ही राजा की प्रजा है। हमारे जीवनस्रोत एक ही है और जब अकाल पड़ता है तो सब लोग साथ ही भुगतते हैं। यही कारण है कि मैं हिन्दुस्तान में रहने वाले दोनों हिन्दुओं और मसलमानों को हिन्दू कहता हूं

उन्होंने यह भी कहा था कि काश ! मेरी एक ही आंख होती ताकि मैं हिन्दुओं और मुसलमानों को एक ही आंख से देख पाता। अंग्रेजों ने मुसलमानों को प्रोत्साहन देकर उन्हें उकसाया कि काउंसिल में उन्हें अलग से प्रतिनिधित्व मिले। सर आगा खान के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि मंडल वायसराय से मिला। मुस्लिम लीग का गठन हुआ। हिंदू-मुस्लिम एकता की बात करते-करते दोनों के बीच भेद-भाव बढ़ता गया और इसी के परिणाम-स्वरूप आगे चलकर देश का बंटवारा हुआ। इस बंटवारे की नींव महर्षिजी के जीवन काल में पड़ी थी। फिर भी समय-समय पर एकता के प्रयत्न होते रहे। पहले विश्वयुद्ध के दौरान हिन्दु और मुसलमान कंधे से कंधा मिलाकर खड़े थे। जलियांवाला हत्याकांड के बाद कांग्रेस ने असहयोग आन्दोलन चलाया। तब प्रेमचन्द ने मुहम्मद अली और शौकत अली भाइयों को रामलखन की जोड़ी कहा। जो बातें हिन्दू-मुस्लिम एकता के रास्ते में अड़चन बनतीं, उनका विरोध करना आवश्यक था। जब राजस्थान में मलकाना राजपूतों की शुद्धि का आन्दोलन चला और मुसलमानों ने बबेला मचाया तो प्रेमचन्द ने शुद्धि आन्दोलन के विरुद्ध एक कड़ा लेख लिखा। 'इधर मैंने उर्दू लिखना बन्द कर रखा है। फुर्सत ही नहीं मिलती। लेकिन मलकाना शुद्धि पर एक मुखतसर सा मजमून लिख रहा हूं। मुझे इस तहरीक से सख्त इखतिलाफ है। तीन-चार दिन में भेजूंगा। आर्य-समाज वाले भिन्नाएंगे, लेकिन मुझे उम्मीद है कि आप मजमून को जमाना में जगह देंगे।"

"आर्य-समाज वाले भिन्नाएंगे।" ये शब्द उसी व्यक्ति के हैं जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दस वर्ष पूर्व आर्य-समाज का विधिवत सदस्य था और जो हिन्दुस्तानी कौम नहीं, हिन्दू धर्म का समर्थक था। यह परिवर्तन समय के साथ आया था। प्रेमचन्द का अब प्रयत्न था कि हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के निकट आयें। उर्दू रिसालों में हिन्दी लेखकों के बारे में लिखा तो हिन्दी पत्रिकाओं में इस्लाम के महापुरुषों के बारे में। "नबी का नीति निर्वाह" "फ़ातिहा।" माधुरी में "मंदिर और मस्जिद" कहानी लिखी। 1924 में "कर्बला" नाटक प्रकाशित किया। मुसलमानों ने आपत्ति की तो लिखा कि ख्वाजा हसन नजामी ने भगवान कृष्ण की जीवनी छापी। मैं इस्लाम के महा-पुरुषों के बारे में वैसा ही कुछ कर रहा हूं। प्रेमचन्द जानते थे कि हिन्दू मुस्लिम झगड़ों के पीछे अंग्रेजों का हाथ है।

"कायाकल्प में इस विषय पर विस्तार से लिखा। आगरा के हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच आये दिन झगड़े होते रहते हैं। छोटी-छोटी बातों पर दंगे-फिसाद हो जाते हैं। बस एक बहाना चाहिए। बनिये ने डंडी मारदी तो मुसलमान दुकान पर धावा बोल देते हैं। किसी जुलाहे ने हिन्दू के पानी के घड़े को छू दिया तो मुहल्ले में फौजदारी हो गई। सोहन सईद के कुत्तों में लड़ाई हो गई तो हिन्दू-मुस्लिम फिसाद। सैंकड़ों आदमी घायल हो गये। दोनों ही जातियों के सिरफिरे मजहब के नाम पर दंगे के लिए तैयार हैं। सवेरे ख्वाजा साहिब जिलाधीश को सलाम करने जाते हैं और शाम को बाबू यशोदानन्द। दोनों ही अपनी-अपनी राजनीतिक भक्ति का राग अलापते हैं। ठाकुर द्वारे में ईश्वर कीर्तन की जगह मुस्लिम नबियों की निन्दा होती है मस्जिदों में नमाज की जगह हिन्दू देवताओं की दुर्गति। हिन्दुओं ने महावीर दल बनाया। मुसलमानों ने अलीगोल सजाया।"

जब पंजाब से आगारा आये एक मौलवी साहिब ने गाय की कुर्बानी देने की सलाह दी तो हिन्दुओं में खलबली सी मच गयी। यशोदानन्द मुसलमानों के नेता ख्वाजा साहब के पास गये और पूछा कि क्यों वहां गाय की कुर्बानी की जा रही है जहां आज तक कभी नहीं हुई। क्यों नयी रस्म निकाली जा रही है। ख्वाजा साहब उत्तर देते हैं कि "कुर्बानी (करना) हमारा हक है। अभी तक हम आपके जज़बात का लिहाज करते थे। हम अपने हकों को भूल गये थे। जब आप लोग अपने हकों के सामने हमारे जज़बात की परवाह नहीं करते तो हम क्यों आप के जज़बात की परवाह करें। मुसलमानों की शुद्धि करने का आपको हक हासिल है लेकिन 500 वर्षों में आपके यहां शुद्धि की कोई मिसाल नहीं मिलती।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमचन्द का मुखपात्र चक्रधर कहता है "अहिंसा का सिद्धांत गऊओं के लिए नहीं मनुष्यों के लिए भी तो है। एक गाय की कुर्बानी बचाने के लिए सैकड़ों पुरुषों की कुर्बानी क्यों दी जाए?" चक्रधर की सूझबूझ के परिणाम-स्वरूप गाय को छोड़ दिया जाता है। ख्वाजा महमूद कहते हैं, "काश तुम जैसे समझदार तुम्हारे और भाई होते, मगर यहाँ तो लोग हमें मलेच्छ कहते हैं। यहां तक कि हमें कुत्तों से भी नाकिस समझते हैं। उनकी थालियों में कुत्ते खाते हैं, पर मुसलमान उनके गिलास में पानी नहीं पी सकता। अब कुछ-कुछ उम्मीद हो रही है कि शायद दोनों कौमों में इत्फाक हो जाये।"

चक्रधर का मत है: "मैं तो नीति ही को धर्म समझता हूं और सभी सम्प्रदायों की नीति एक सी हैं। अगर अंतर है तो बहुत थोड़ा। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध सभी सत्कर्म और सद्विचार की शिक्षा देते हैं। हमें कृष्ण, राम, ईसा, मुहम्मद, बुद्ध सभी महात्माओं का समान आदर करना चाहिए। बुरे हिन्दू से अच्छा मुसलमान उतना ही अच्छा है जितना बुरे मुसलमान से अच्छा हिन्दू "संसार का भावी धर्म, सत्य न्याय और प्रेम के आधार पर बनेगा।"

महर्षिजी ने सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका में लिखा था: 'इस ग्रंथ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य अर्थ का प्रकाश करना है। अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान से असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाये किन्तु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है। इसलिए वह सत्य को प्राप्त नहीं हो सकता। इसीलिए विद्वान का यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दे। पश्चात वे स्वयं अपना हिताहित समझकर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें। मनुष्य का आत्मा सत्यासत्त का जानने वाला है। तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़कर असत्य में झुक जाता है। परन्तु इस ग्रंथ में ऐसी बात नहीं रखी है और न किसी का मन दुखाना वा किसी की हानि पर तात्पर्य है किन्तु जिस मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।' कलकत्ता प्रवास के दिनों में केशवचन्द्र सेन ने महर्षिजी को परामर्श दिया था कि जनता तक पहुंचने के लिए उन्हें हिन्दी को अपनाना चाहिए। महर्षिजी ने उस परामर्श को ग्रहण किया। सत्यार्थ प्रकाश के दूसरे संस्करण की भूमिका में उन्होंने लिखा : "जिस समय मैंने यह ग्रंथ बनाया था उस समय और उससे पूर्व संस्कृत भाषण करने, पठन-पाठन में संस्कृत ही बोलने और जन्म भूमि की भाषा गुजराती होने के कारण मुझको इस भाषा का विशेष परिज्ञान न था। इससे भाषा अशुद्ध बन गई थी। अब भाषा बोलने और लिखने का अभ्यास हो गया है। इसलिए इस ग्रंथ को भाषा व्याकरण अनुसार शुद्ध करके दूसरी बार छपवाया है।"

महर्षिजी के निधन के बाद तत्कालीन संयुक्त प्रांत में हिन्दी का खूब प्रचार हुआ। देवनागरी लिपि के प्रयोग के लिए एक विज्ञापन सरकार को दिया गया।

धनपतराय का जन्म कायस्थ परिवार में हुआ था। और कायस्थ लोगों पर फरसी और उर्दू का अच्छा चयन था। राजभाषा उर्दू जीविका का साधन भी था। यह स्वाभाविक था कि वे उर्दू फारसी पढ़ते। परन्तु उन्हें हिन्दी से भी प्यार होगा, क्योंकि मैट्रिक की तैयारी से पूर्व उनके अपने अनुसार एक बेलदार उनसे हिन्दी पढ़ने आया करता था। हिन्दी का ज्ञान होगा तभी तो उसे पढ़ा सकते। 1904 में उन्होंने हिन्दी की एक विशेष परीक्षा पास की। 'हम खुर्मा व हम सवाब' के प्रकाशन के तुरन्त बाद इसका हिन्दी रूपान्तर 'प्रेमा' के नाम से प्रकाशित करवाया। जिन दिनों प्रेमचन्द कानपुर में स्कूल मास्टर थे निगम के साथ वह बाल मुकुन्द गुप्त को मिलने रेलवे स्टेशन पर गये। गुप्तजी उन दिनों भारत मित्र का सम्पादन कर रहे थे। वह उर्दू के जाने माने लेखक और सम्पादक रह चुके थे और लाहौर का कोहिनूर छोड़कर हिन्दी में आये थे। वह जमाना में भी लिखते थे। प्रेमचन्द उन के व्यक्तित्व से प्रभावित थे। फिर आर्य समाज जोर पकड़ रहा रहा था। वरदान में मुंशी संजीवन लाल अपनी पुत्री विरजन से कहते हैं कि 'बेटी तुम तो संस्कृत पढ़ती हो। जिस पुस्तक की तुम बात करती हो वह तो भाषा में है।'

विरजन उत्तर देती है 'तो मैं भी भाषा ही पढ़ूंगी। इसमें कैसी अच्छी अच्छी कहानियां हैं। मेरी किताब में तो एक कहानी भी नहीं है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब तक हिन्दी जीविका का साधन नहीं बन पाई थी। फिर भी प्रेमचन्द की इस भाषा में रुचि थी। मई, 1910 में निगम से पूछते हैं : 'हिन्दी पर्चे का क्या हश्र हुआ ? यानी उसकी तजवीज खटाई में पड़ गयी या बाकी है। निकलने वाला हो तो हिन्दी में लिखने की आदत डालूं।' आदत डालने से स्पष्ट है कि वह हिंदी लिखते थे। बस आदत नहीं थी। चार वर्ष बाद: 'प्रताप के असरार से मजबूर होकर एक मुखतसर सा किस्सा हिन्दी में उसके विजयादशमी नवम्बर के लिए लिखा है। हिन्दी लिखनी तो आती नहीं मगर कुछ कलम तोड़ मोड़ दिया है।

शीघ्र ही हिन्दी में उन्हें मान्यता मिली। प्रेमचन्द ने निगम को लिखा 'उर्दू में अब गुजर नहीं है। यह मालूम होता है कि बालमुकुन्द गुप्त मरहूम की तरह मैं भी हिन्दी में जिन्दगी सर्फ कर दूंगा। उर्दू नवीसी में किस हिन्दू को फैज हुआ जो मुझे हो जायेगा।' जो मान्यता 'सप्त सरोज' और 'नवनिधि' को मिली वह उर्दू में 'प्रेम पचीसी' को नहीं मिल पाई। फिर भी प्रेमचन्द ने उर्दू में बाजारे हुस्न लिखा। गोशा-ए-आफियत और चौगाने हस्ती। परन्तु बाजार हुस्न बाद में छपा। इसका हिन्दी रूपान्तर सेवासदन पहले छपा। ऐसे ही गोशा-ए-आफियत बाद में छपा। इसका हिन्दी रूपान्तर पहले। रंगभूमि भी पहले हिन्दी ही में छपी, हालांकि यह भी पहले उर्दू में लिखी गयी थी। क्योंकि कथानक में भारी परिवर्तन कर दिया था इसलिए चौगाने हस्ती का उर्दू रूपान्तर इकबाल सहर हितगामी ने मुआवजा देकर करवाया। उर्दू में लिखा हुआ यह प्रेमचन्द का आखरी उपन्यास था। 'कायाकल्पक,' 'गबन', 'निर्मला,' 'कर्मभूमि', 'गोदान', 'मंगल सूत्र' पहले हिन्दी में लिखे गये। प्रेमचन्द की बड़ी ख्याति हुई, धूम मच गई। उन्हें उपन्यास सम्राट की संज्ञा दी गयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३

उन्नीसवीं शताब्दि में गुजरात काठियावाड़ में दो महापुरुषों ने जन्म लिया। एक ने मौरवी के निकट, दूसरे ने पोरबन्दर में। दोनों स्थान एक दूसरे से बहुत दूर नहीं है। ये दो महापुरुष थे महर्षि दयानन्द और महात्मा मोहनदास कर्मचंद गांधी। दोनों में बड़ी समानता है। एक ने जिस कार्य को जहां छोड़ा दूसरे ने उसे आगे चलाया। स्वदेशी का प्रचार स्वामी दयानन्द ने भी किया था। गांधी जी ने इसे जन आन्दोलन का रूप दिया। महर्षिजी ने केशव चंद्र सेन की सलाह पर संस्कृत को त्याग हिन्दी को अपनाया, गांधीजी ने हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में प्रचार किया। स्वामी दयानन्द ने अंग्रेजी सरकार द्वारा नमक और चीनी पर टैक्स की कड़ी आलोचना की। गांधी जी ने नमक सत्याग्रह आन्दोलन चलाकर ब्रिटिश सरकार की जड़ें हिला दीं। महर्षिजी ने स्त्रियों में पर्दे की प्रथा, उनमें अज्ञान तथा अविद्या और विभिन्न प्रकार की कुरीतियों के विरुद्ध आवाज उठाई। गांधी जी ने महिलाओं को राष्ट्रीय संग्राम में पुरुषों का साझेदार बनाया। महर्षि ने छुआछूत के और अंधविश्वास के विरुद्ध लोगों को प्रेरित किया। गांधी जी ने अस्पृश्यता के विरुद्ध बड़ा भारी आन्दोलन चलाया। आज छुआछूत के विरुद्ध आन्दोलन के संदर्भ में हम प्रेमचन्द की भूमिका की चर्चा करेंगे।

महर्षि दयानन्द ने वर्णव्यवस्था का आधार, जन्म नहीं, कर्म बतलाया था और मानव जाति के हर व्यक्ति के समान अधिकारों पर बल दिया था। सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम संस्करण के समय उन्होंने तीन उच्च वर्णों और चौथे वर्ण के बीच इतना भेदभाव किया था कि शूद्रों को वेद पढ़ने की अनुमति नहीं थी। जब दूसरा संस्करण निकला तो इस भेदभाव को दूर कर चौथे वर्ण को भी समान अधिकार दिये।

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों और कहानियों में जन्म आधारित वर्णव्यवस्था की कड़ी आलोचना की। चमार, भंगी, कुंजड़े, धोबी इत्यादि जातियों पर हो रहे अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाई। चाहे वह अन्याय धर्म के ठेकेदारों द्वारा हो या जमींदारों या अफसर शाही द्वारा। वे अछूतों के लिए न्याय के पक्ष में और उनके आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए लड़ते रहे। उनकी अपनी पत्रिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी हंस। अगस्त, 1933 के अंक के कवर पर उन्होंने डा० भीमराव अम्बेडकर को तस्वीर छापी और लिखा 'आपने सतत उद्योग से अनेक परीक्षाएं पास करके विद्वता प्राप्त की है और यह प्रमाणित कर दिया है कि अछूत कहलाने वाली जातियों को किन्ही असाधारण उपकरणों से ईश्वर ने नहीं बनाया। इस समय आप विश्वविख्यात व्यक्तियों में हैं।' अछूतों पर समाज द्वारा अन्याय का आधार था धर्म के नाम पर मठाधीशों, महन्तों और पुजारियों की अनुमति प्रेमचंद ने अपनी आरम्भिक कृतियों से लेकर अन्त तक ऐसे ब्राह्मणों का मजाक उड़ाया। तेरह वर्ष की आयु में लिखी गई 'मेरी पहली रचना' में प्रेमचन्द ने दूर के रिश्ते में मामू के रोमांस का जिक्र किया है। अधेड़ उम्र तक अविवाहित, ये मामूं एक चमारिन पर लट्टू हो गये थे। नीच जात वालों ने मामू की वह पिटाई की कि वे भाग गये। यह व्यंग प्रेमचंद के छुआछूत का ही एक अंग था। अपने उपन्यास 'कर्मभूमि' में तो छुआछूत का विरोध एक जन आंदोलन का रूप धारण कर लेता है। उपन्यास का नायक, एक ऊंचे परिवार का युवक, अमरकान्त अपने पिता को छोड़कर बीस-पच्चीस चमारों की बस्ती में जाकर रहने लगता है। गंदे घरों में वह स्वयं झाड़ू लगाता है। गांव के चमारों को स्वच्छ जीवन की शिक्षा देता है। एक पाठशाला खोलकर वह बच्चों को पढ़ाता भी है। अमरकान्त के अनुसार शराब और मुर्दा गाय के मांस के सेवन के अतिरिक्त चमारों में ऐसी कोई बुराई नहीं है जिसके आधार पर उन्हें सवर्ण हिन्दू पतित कह सकें। गूदड़ चौधरी को छोड़ थोड़े ही ऐसे चमार थे जिनमें शराब पीने की क्षमता हो। हां मुर्दा गाय का मांस सब खाते थे। एक गाय की लाश को देखकर बच्चे खुशी से उछलने कूदने लगते हैं। अमरकान्त के दिल में उनके प्रति घृणा हो जाती है। सुधारवाद लुप्त सा हो जाता है और वह गांव से भाग खड़ा होना चाहता है। परन्तु अमरकांत को देखकर कुछ लोग गाय के मांस खाने का विरोध करते हैं। मुन्नी भी सत्याग्रह करती है। अंत में मांस खाने के विरोधियों की विजय होती है और मांस नहीं खाया जाता।

उधर नगर भी मंदिर प्रवेश आंदोलन चल रहा है। ठाकुर द्वारे में कथा हो रही है। ब्रह्मचारीजी ने देखा दरी से थोड़ी दूर जूतों के पास अछूत बैठे हैं। सवर्ण वाले कहते हैं कि अनर्थ हो गया। चमारों ने ठाकुर द्वारे में प्रवेश कर इसे भ्रष्ट कर दिया है। ब्रह्मचारी जी सहमत हैं। उन्हें अमरकांत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पिता समरकांत का भी पूरा समर्थन प्राप्त है। समरकांत ने चमारों को मार भगाने के आदेश दिए। ब्रह्मचारी और सवर्णों के लिए जूते बनाने वाले चमार अपवित्र थे परन्तु उन द्वारा बनाये गये जूते पवित्र चीज थे। ब्रह्मचारी के हुक्म से लोगों ने पवित्र जूतों से अपवित्र चमारों की मरम्मत शुरू की। उधर अछूतों के समर्थक डंडों से जवाब देने वाले थे कि शांति कुमार ने स्थिति सम्भाल ली। वह ब्रह्मचारी को ललकार कर कहते हैं 'अंधभक्तों की आंख में धूल झोंककर यह हलवे बहुत दिन खाने को नहीं मिलेंगे, महाराज ! अब वह समय आ रहा है जब भगवान भी पानी से स्नान करेंगे, दूध से नहीं।'

शांति कुमार ने अछूतों को ठाकुर जी के दर्शन के लिए उत्तेजित किया। मंदिर प्रवेश का प्रश्न अछूतों के लिए शायद इतना महत्वपूर्ण नहीं था जितना उच्चवर्ग वालों के लिए। कुछ ने तो यहां तक कहा : 'अपना मंदिर लिये रहें। हमें क्या करना है'। परन्तु शाँति कुमार के लिए मंदिर प्रवेश प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया है। वह अछूतों को उकसाते हैं. अछूत आगे बढ़ते हैं। ज्यों-ज्यों अछूत मंदिर के समीप आते जाते हैं उनकी हिम्मत टूटती जाती है। जिस अधिकार से वे वंचित रहे, उसके लिए उनके मन में कोई तीव्र इच्छा नहीं। वह विश्वास जो न्याय व ज्ञान से पैदा होता है वहां है। समूह की धौंस जमाकर विजय पाने की आशा ही उन्हें आगे बढ़ा रही है। वे ठाकुर द्वारे तक पहुंच जाते हैं। मौखिक युद्ध होता है। फिर डंडों द्वारा प्रहार। भगदड़ मच जाती है। शाँति कुमार डंडा खाकर गिर पड़ते हैं। अब आन का प्रश्न बन जाता है। अछूत मंदिर के बाहर धरना देते हैं और मंदिर में दर्शनों के लिए जाने वालों का रास्ता बंद कर देते हैं। पुलिस बुलाई जाती है। गोली चलती है। चमार डटे रहते हैं, हालांकि उनका नेतृत्व करने वाले भाग खड़े होते हैं। नैना एक ऐसे नेता स्वामी आत्मानन्द के बारे में कहती है 'यह महाशय संन्यासी बनते हैं फिर भी इतने डरपोक। पहले तो गरीबों को भड़काया और जब मार पड़ी तो सबसे आगे भाग खड़े हुए।'

अन्त में अमरकांत की बहन ने अछूतों का नेतृत्व संभाला। अब तो अमरकांत भी गोली नहीं चलवा सकते थे। अछूतों की विजय होती है। लाशें गंगा के किनारे जला दी जाती है और अगले दिन मंदिर प्रवेश होता है। एक बड़ा भारी समारोह होता है।

प्रेमचन्द ने अछूतों के प्रश्न को नैतिक, आर्थिक और राजनीतिक पहलुओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रकाश में देखने का प्रयत्न किया है। यदि अछूत मंदिर में प्रवेश करते हैं तो वास्तविक लाभ, अधिक आमदनी, तो मठाधीशों की होती है। उन्हीं मठाधीशों का जिन के बारे में नैना कहती है 'आधीरात तक इसी मंदिर में जुआ खेलते हो, पैसे पैसे पर ईमान बेचते हो, झूठी गवाहियां देते हो, द्वार द्वार भीख मांगते हो। फिर भी तुम धर्म के ठेकेदार हो। तुम्हारे तो स्पर्श से ही देवताओं को कलंक लगता है।'

गूदड़ चौधरी को पूर्व जन्म के संस्कारों में बिल्कुल विश्वास नहीं है। वह बेटे से कहता है 'यह सब मन को समझाने की बात है बेटा। जिसमें गरीबों को अपनी दशा पर सन्तोष रहे और अमीरों के राग रंग में किसी तरह की बाधा न पड़े। लोग समझते रहें कि भगवान ने हमको गरीब बना दिया, आदमी का क्या दोष। पर यह कोई न्याय नहीं है कि हमारे बाल बच्चे तक काम में लगे रहे और पेट भर भोजन न मिले और एक एक अफसर को दस दस हजार की तलब मिले। दस तोड़े रुपये गधे से भी न उठें।'

प्रेम चन्द अछूतों के लिए मंदिरों के दरवाजे खुलवा देते हैं परन्तु वह मानते हैं कि अछूतों के साथ खान-पान और ब्याह शादी के रास्ते में कठिनाइयां हैं। जब हिन्दुओं में एक साथ बैठकर खाने-पीने की प्रथा नहीं है तो अछूतों के साथ कैसे हो सकती है। अमरकांत को खान-पान में केवल एक परम्परागत प्रथा की झलक मिलती है। वह गूदड़ चौधरी से कहता है : 'यह तो अपनी-अपनी प्रथा है। चीन एक बहुत बड़ा देश है। वहां बहुत से आदमी बुद्ध भगवान को मानते हैं। उनके धर्म में किसी जानवर को मारना पाप है। इसलिए वे लोग मरे हुए जानवर ही खाते हैं। कुत्ते, बिल्ली, गीदड़, किसी को भी नहीं छोड़ते। तो क्या वह हम से नीच है?' स्वयं उत्तर देता है : कभी नहीं।

स्वयं महर्षि दयानन्द ने सर सैयद अहमद खान के यहां से भोज का निमंत्रण स्वीकार नहीं किया था। एक मौलवी साहब के प्रश्न के उत्तर में कहा कि खाने-पीने और विवाह की रीति-रिवाज या प्रतिबंधों का सम्बन्ध धर्म या अधर्म से नहीं है। इनका आधार है स्थानीय अनुयाइयों के साथ व्यवहार में। इनकी अवहेलना करना हानिकारक हो सकता है क्योंकि उसके सहधर्मी उसका बहिष्कार कर देंगे और उनको उस सज्जन की बुद्धिमत्ता के लाभों से वंचित रहना होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मणों और पुजारियों के खाने-पीने और रूढ़ीवादी तरीकों का प्रेमचन्द ने अपनी कृतियों में मजाक उड़ाया है। एक पात्र पं० मोटेराम हैं। इनका परिचय हमें पहली बार जलवा-ए-इसार (वरदान) में मिलता है। इसने प्रेमचन्द का जीवन भर साथ दिया। प्रेमचन्द ने इसका विभिन्न परिस्थितियों में व्यंगात्मक ढंग से चित्रण किया है। सत्याग्रह आन्दोलन में उसकी क्या भूमिका रही होगी वह उसी शीर्षक की कहानी से विदित है। पंडित जी भूख हड़ताल करते हैं। पेट में चूहे दौड़ रहे हैं। आधी रात को अवसर मिलते ही वह मिठाई की थाली को साफ कर देते हैं।' 'सम्पादक मोटेराम शास्त्री' में वे अपनी पत्रिका की प्रसार संख्या बढ़ाचढ़ा कर बतलाते हैं परन्तु उन्हीं का मित्र कलई खोल देता है। एक बार तो इसी क्रम की एक कहानी के सम्बन्ध में लखनऊ के शालिग राम शास्त्री ने उन पर तथा माधुरी पर मान हानि का दावा भी किया। माधुरी के संस्थापक—प्रेमचन्द जी सह सम्पादक थे - ने बड़े जोश से मुकदमा लड़ा। हिन्दी पत्रकारिता जगत में यह अपनी तरह का पहला मुकदमा था। जब प्रेमचन्द फिल्मों के काम करने बम्बई गये तो मोटे राम को अपने साथ ले जाकर मोटेराम की डायरी लिखवाई। 'मोटर की छींटे' कहानी में भी पंडितजी का मजाक उड़ाया गया। 'मंत्र' कहानी में वह जिन लोगों से घृणा करते हैं वे ही उनकी तीमारदारी करते हैं। पंडितजी का हृदय परिवर्तन होता है। इसी नाम की एक अन्य कहानी में एक चित्र है डा० चड्ढा का और दूसरा है अछूत झंडे वाले भक्त का। भक्त भी गरीब है। सन की रस्सी बनाकर गुजर करता है। पत्नी लकड़ी चुनती है। दिन को कमाया रात को खाया। अगले दिन महाजन से उधार पर सन मिलने की आशंका रहती है। गरीब होते हुए भी भक्त महान व्यक्ति है। किसी को सांप डस ले एकदम निःशुल्क मंत्र पढ़कर उपचार करता है। जब इसके इकलौते बेटे की हालत खराब होती है तो यह उसे डाक्टर चढ्डा के पास ले जाता है। डा० साहिब का गोल्फ खेलने का समय हो रहा है। भक्त गिड़गिड़ाता है परन्तु डा० चड्ढा गोल्फ खेलने चले जाते हैं और भक्त का लड़का मर जाता है। बूढ़ा और बुढ़िया दुखी हैं। दोनों अपना जीवन व्यतीत करते हैं। एक दिन चड्ढा के लड़के को सांप डस लेता हैं। खबर बूढ़े तक पहुंचती है। अभी तक सांप डसने की खबर पाकर भक्त जी भागे जाते थे। आज डा० चड्ढा के लड़के को सांप द्वारा डसने की खबर पर उन्हें सन्तोष सा होता है। बदले की भावना जागृत होती है। वह नहीं जाता। परन्तु ज्यों ज्यों समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीतता जाता है उसका मनोबल उसे पुकारता है। वह चुपके से उठकर डा० चड्ढा के घर पहुंचता है और लड़के पर झाड़ा कर उसे जिन्दा कर देता है। डा० चड्ढा विस्मित खड़े देख रहे हैं। वह उसे इनाम देना चाहते हैं परन्तु भक्त डा० चड्ढा को घृणा की दृष्टि से देखता हुआ बाहर चला जाता है। तब चड्ढा को याद आती है कि यह भक्त जी वही व्यक्ति है जिसके बीमार लड़के को उसने देखने से इन्कार किया था। निम्न जाति के लोग महान हैं।

'मंदिर' नाम की कहानी में एक चमारिन विधवा का एक मात्र पुत्र बीमार है। स्वप्न में उसका पति कहता है कि मंदिर में जाकर ठाकुर जी की मूर्ति के पांव पड़ो, लड़का ठीक हो जाएगा। पुत्र की हालत कुछ सुधरती है। मां बहुत कृतज्ञ है। फिर जब लड़के की हालत गंभीर हो जाती है तो उसे याद आती है कि वह भगवान के चरणों में उपासना करने नहीं गयी। यह इसी का परिणाम है। वह अपने गहने गिरवी रखकर दो रु० उगाहती है। फूल, धूप और बताशे लेकर मंदिर जाती है। पुजारी फूल तो ले लेता है परन्तु उसे ठाकुर जी की मूर्ति तक नहीं जाने देता। एक रुपया लेकर वह तावीज देता है और कहता है इसे बांध दें उपचार हो जायेगा। चमारिन विधवा घर लौटती है। बच्चे की हालत खराब हो जाती है। आधी रात को बच्चे की देह ठंडा पड़ रहा है। तीन बजे वह उसे मंदिर ले जाती है और ठाकुर जी के चरणों तक पहुंचने का प्रयत्न करती है। ठाकुर द्वारे का दरवाजा भी खोल लेती है। तब पंडे जग जाते हैं और विधवा की पिटाई करते हैं। धक्के में बच्चा गिर पड़ता है और मर जाता है। उसे मरा देखकर घायल मां भी मर जाती है। दोनों लाशें भगवान के घर में पड़ी हैं। और चारों ओर खड़े हैं निर्दयी धर्म के ठेकेदार।

'ठाकुर का कुआं' भी एक चमारिन की कहानी है। हरिजन बस्ती के कुएं में एक जानवर की लाश पड़ी है। बदबू आ रही है। जोखू बीमार है। उसे पानी की प्यास लगी है। उस कुएं का पानी पिया नहीं जा सकता और ठाकुरों के कुएं से पानी लेने पर प्रतिबन्ध है. फिर भी आधीरात जोखू की पत्नी वहां पानी भरने जाती है। घड़ा जगत तक पहुंचा कि ठाकुर ने घर का दरवाजा खोला। डर के मारे घड़ा धड़ाम से कुएं में गिरा। जोखू की पत्नी घर की ओर भागी। यह कहानी पीढ़ियों से चले आ रहे अत्याचारों की ओर संकेत है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'दूध का दाम' कहानी में मूंगी मेहतरानी बाबू महेश नाथ के तीन लड़कियों के बाद हुए एकमात्र लड़के सुरेश को अपना दूध पिलाती है, हालांकि उसका अपना लड़का मंगल दुबला होता चला जाता है। आगे चलकर मंगल अनाथ हो जाता है। सुरेश इस बच्चे पर रौब जमाता है। जब मंगल रौब नहीं मानता तो उसे घर से बाहर निकाल दिया जाता है। वह घर के दरवाजे के बाहर नीम के पेड़ के तले पड़ा रहता है। उसका साथी एक कुत्ता टामी है। भूख ने मंगल को परेशान कर रखा है, टामी को भी। मंगल देखता है सुरेश का नौकर झूठीं पत्तलें फेंक रहा है। मंगल उसे उठा लेता है और टामी के साथ खाता है। उसे याद आता है कि सुरेश ने उसकी अपनी मां का दूध पिया था। आज उसे इसका दाम मिल रहा है।

'सद् गति' भी अछूतों पर अत्याचार की कहानी है। एक चमार अपनी लड़की के विवाह के मुहूर्त के लिए पण्डित जी के पास जाता है। वह भूखा है। बीमार भी है. परन्तु पण्डित जी उसे काम पर लगा देते हैं। काम बेगार का है, परन्तु वह कहता है, 'पंडित तो पंडित है। कहीं साइत ठीक न विचारे तो फिर सत्यानाश ही हो जाए। जभी तो संसार में (इनका) इतना मान है। साइत का तो सब खेल है। जिसे चाहे बना दे, जिसे चाहे बिगाड़ दे।' पंडित जी के प्रति यही श्रद्धा प्राण लेवा बनती है। चमार हुक्म बजा लाता है। वह बाहर झाडू लगाता है, गोबर लीपता है। खलिहान से भूसा उठाता है, लकड़ी चीरता है। बेचारा खाली पेट है। पंडित जी पकवान उड़ाते हैं। उसे पूछते भी नहीं। नीच जाति का जो है. उसे लकड़ी काटने पर लगा देते हैं। गांठ नहीं फटती, उस चमार का पेट पीठ में घुसा जाता है। कुल्हाड़ी उठाना भी पहाड़ मालूम होता है। तब पंडित ललकारते हैं। चमार कुल्हाड़ी चलाते-चलाते मर जाता है। अब समस्या है उसकी लाश उठाने की। एक गोंड चमारों के मुहल्ले में जाकर खबर करता है और कह देता है कि लाश उठाओगे तो पुलिस पकड़ लेगी। चमार लोग लाश उठाने नहीं जाते। यदि पंडित जी फंसते हैं तो फंसने दो। उसकी चमारिन आकर रोने चिल्लाने लगती है। लाश कुएं के रास्ते में पड़ी है। लोग पानी लेने भी नहीं जा सकते। लाश से दुर्गन्ध आने लगती है। आधी रात पंडित जी रस्सी का फंदा कसकर लाश को घसीटते हैं और गांव के बाहर ले जाते हैं। लौटकर स्नान करते है, गंगाजल छिड़कते हैं और दुर्गा पाठ करते हैं। उधर चमार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की लाश को खेत में गीदड़, गिद्ध और कौए नोच रहे हैं। प्रेमचन्द कहते हैं...'यही जीवन पर्यन्त की भक्ति और निष्ठा का पुरस्कार था ।' सद् गति में ब्राह्मण के भयानक चित्रण की बड़ी प्रतिक्रिया हुई। प्रेमचन्द को "घृणा का प्रचारक" उपाधि दी गई। उनकी कृतियों की तुलना किपलिंग की कृतियों से की गयी। 'यदि प्रेमचन्द इस युग के प्रतिनिध मान लिए जाएं तो अब से पचास वर्ष बाद पढ़ने वाले कहेंगे कि उस समय हिन्दुओं का खासकर ब्राह्मण का जीवन घृणा का जीवन था और ब्राह्मणों की जाति बड़ी ही जालिम स्वार्थी पाखंडी और घृणा के योग्य है' (पचास वर्ष हो गये)।

दिसम्बर, 1933 के हंस में प्रेमचन्द ने इस लेख पर टिप्पणी ही। शीर्षक था 'जीवन में घृणा का स्थान : साहित्य में घृणा की उपयोगिता।' प्रेमचन्द ने लिखा...'निन्दा, क्रोध और घृणा में सभी दुर्गुण हैं। लेकिन मानव जीवन में से अगर इन दुर्गुणों को निकाल दिया जाये तो संसार नरक हो जायेगा।' उनका मत था 'बुराइयों से छुटकारा पाने में घृणा भी उपयोगी हो सकती हैं। पाखंड, धूर्तता, अन्याय, बलात्कार और ऐसी ही अन्य दुष्वृत्तियों के प्रति हमारे अन्दर जितनी हो प्रचण्ड घृणा हो सकती है उतनी ही कल्याणकारी होगी।'

'हर एक कट्टरपंथी पुजारी को ब्राह्मण कहकर मैं इस पद का अपमान नहीं कर सकता। इस विकृत्त धर्मोपजीवी आचरण के हाथों हमारा सामाजिक अहित ही नहीं कितना राष्ट्रीय अहित हो रहा है यह वर्णाश्रम स्वराज्य संघ के हथकंडों से जाहिर है। ऐसी असामाजिक, अराष्ट्रीय, अमानुषिक भावनाओं के प्रति जितनी भी घृणा फैलाई जाए वह थोड़ी है। केवल भावनाओं के प्रति, व्यक्ति के प्रति नहीं, क्योंकि वर्णाश्रम के संचालक हमारे वैसे ही भाई हैं जैसे आलोचक महोदय के।' इन्हीं दिनों प्रेमचन्द ने बनारसी दास चतुर्वेदी को एक पत्र में लिखा : 'मेरी कल्पना का ब्राह्मण त्याग और सेवा की मूर्ति होता है। (यदि किसी व्यक्ति में ये दोनों बातें हैं तो वह ब्राह्मण है)। मेरे विचार में पुजारी और पण्डे भोले-भाले लोगों के अन्धविश्वास का फायदा उठाकर उन्हें लूटते हैं जो बगुले भगत हैं और जिनका दृष्टिकोण संकुचित है। मैं उन्हें हिन्दू समाज का शाप मानता हूं। इन्हीं लोगों ने हमारे समाज का बेड़ा गर्क किया है। इन लोगों का व्यंगात्मक मजाक ही उचित है। और मैंने यही कुछ किया है। यह निर्मल और इनके भाईबन्द राष्ट्रवादियों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चोला पहन लेते हैं परन्तु इनमें पंडे जाति की सारी कमजोरियां हैं और ये लोग आक्षेप करते हैं हमारे जैसे लोगों पर, जो समाज के स्तर को ऊंचा उठाना चाहते हैं।''

'कफन' में प्रसव वेदना से कराह रही बुधिया का पति माधव कहता है कि तड़पने से तो मर जाना ही अच्छा है। फिर मरना ही है तो जल्दी से क्यों नहीं मर जाती। माधव और पिता घीसू दोनों आलसी हैं। मजूरी ढूंढते, यदि मिलती तो करते भी परन्तु टालमटोल कर। अवसर मिलते ही खेतों से आलू मटर चुरा लेते। एक दूसरे पर विश्वास नहीं। माधव बुधिया की सुध लेने भीतर इस लिए नहीं जाता कि कहीं उसका बाप अलाव से निकाल कर आलू सफाचट न कर दे। दोनों ही कमजोर हैं। उनका जीवन दर्शन कहता है कि जहां मजदूरी करने वाले और मेहनत करने वाले किसान भूखे मरते हैं, वहां उनकी मेहनत से लाभ उठाने वाले मौज करते हैं। यदि भूखा ही मारना है तो कामकर के भूखे क्यों मरें। यदि झूठ बोल कर पैसा इकट्ठा किया जा सके तो क्यों न झूठ बोला जाये। बाप और बेटा जाकर बुधिया के कफन के लिए पैसा इकट्ठा करते हैं और जब कुछ धन मिल जाता है तो शराब की दुकान पर पकवान खाते हैं और शराब से धुत हो जाते हैं। बुधिया उन्हें जीवन में तो पकवान नहीं खिला सकी परन्तु प्राण देकर आज माधव और घीसू के आनन्द का कारण बनी। इस तरह कफन के लिए इकट्ठे किये पैसे उड़ा दिये जाते हैं। यह समाज व्यवस्था पर कड़ा प्रहार है। जिसका कड़ा विरोध महर्षि जी ने किया था। अन्त में मैं कहना चाहूंगा कि प्रेमचन्द समय के साथ चलते थे। मई 1923 में "मलकाना राजपूतों की शुद्धि" के विरुद्ध लिखा था कि आर्य समाज वाले भिन्नाएंगे। तब उनका मत था कि आर्य समाज वाले साम्प्रदायिक रंग में डूबे हैं। चार वर्ष बाद यहां गुरुकुल कांगड़ी में तीन दिन ठहरने पर उनका दृष्टिकोण बदला और अगले आठ बर्षों बाद-निधन के कुछ ही महीने पूर्व-लाहौर आर्य समाज के अन्तर्गत आर्य भाषा सम्मेलन के अवसर पर दिये गये भाषण में कहा :...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्यसमाज ने इस सम्मेलन का नाम आर्यभाषा सम्मेलन शायद इसलिए रखा है कि यह समाज के अन्तर्गत उन भाषाओं का सम्मेलन है जिनमें आर्य-समाज ने धर्म का प्रचार किया है। और उनमें उर्दू और हिन्दी दोनों का दर्जा बराबर है। मैं तो आर्यसमाज को जितनी धार्मिक संस्था समझता हूं उतना ही तहजीबी (सांस्कृतिक) संस्था भी समझता हूं। बल्कि आप क्षमा करें तो मैं कहूंगा कि उसके तहजीबी कारनामे उसके धार्मिक कारनामों से ज्यादा प्रसिद्ध और रौशन हैं। आर्य समाज ने साबित कर दिया है कि समाज की सेवा ही किसी धर्म के सजीव होने का लक्षण है। सेवा का ऐसा कौन-सा क्षेत्र है जिसमें उसकी कीर्ति की ध्वजा न उड़ रही हो। कौमी जिन्दगी की समस्याओं को हल करने में उसने जिस दूरंदेशी का सबूत दिया है उस पर हम गर्व कर सकते हैं। हरिजनों के उद्धार में सबसे पहले आर्यसमाज ने कदम उठाया, लडकियों की शिक्षा की जरूरत को सबसे पहले उसने समझा। वर्ण-व्यवस्था को जन्मगत न मानकर कर्मगत सिद्ध करने का सेहरा उसके सिर है। जाति-भेद-भाव और खान-पान के छूत-छात और चौके-चूल्हे की बाधाओं को मिटाने का गौरव उसी को प्राप्त हैं। यह ठीक है कि ब्रह्मसमाज ने इस दिशा में पहले कदम रखा पर वह थोड़े से अंग्रेजी पढ़े-लिखों तक ही रह गया। इन विचारों को जनता तक पहुंचाने का बीड़ा आर्यसमाज ने ही उठाया। अन्ध-विश्वास और धर्म के नाम पर किये जाने वाले हजारों अनाचारों की कब्र उसने खोदी, हालांकि मुर्दे को उसमें दफन न कर सका और अभी तक उसका जहरीला दुर्गन्ध उड़कर-उड़कर समाज को दूषित कर रहा । समाज के मानसिक और बौद्धिक धरातल (सतह) को आर्य समाज ने जितना उठाया है, शायद ही भारत की किसी संस्था ने उठाया हो। उसके उपदेशकों ने वेदों और वेदांगों के गहन विषयों को जन-साधारण की सम्पत्ति बना दिया जिन पर विद्वानों और आचार्यों के कई-कई लीवरवाले ताले लगे हुए थे। आज आर्यसमाज के उत्सवों और गुरुकुलों के जलसों से हजारों मामूली लियाकत के स्त्री-पुरुष सिर्फ विद्वानों के भाषण सुनने का आनन्द उठाने के लिए खिंचे चले जाते हैं। गुरुकुलाश्रम को नया जन्म देकर आर्यसमाज ने शिक्षा को सम्पूर्ण बनाने का महान उद्योग किया है। सम्पूर्ण से मेरा आशय उस शिक्षा का जो सर्वाङ्गपूर्ण हो, जिसमें मन, बुद्धि, चरित्र और देह, सभी के विकास का अवसर मिले। शिक्षा का वर्तमान आदर्श यही है। मेरे ख्याल में वह चिरसत्य है। वह शिक्षा जो सिर्फ अक्ल तक ही रह जाय अधूरी है। जिन संस्थाओं में युवकों में समाज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से पृथक् रहने वाली मनोवृत्ति पैदा हो, जो अमीर और गरीब के भेद को न सिर्फ कायम रखें बल्कि और मजबूत करे, जहां पुरुषार्थ इतना कोमल बना दिया जाय कि उसमें मुशकिलों का सामना करने की शक्ति न रह जाय, जहां कला और संयम में कोई मेल न हो, जहां की कला केवल नाचने-गाने और नकल करने में ही जाहिर हो, उस शिक्षा का मैं कायल नहीं हूं। शायद ही मुल्क में कोई ऐसी शिक्षा-संस्था हो जिसने कौम की पुकार का इतनी जवांमर्दी से स्वागत किया हो। अगर विद्या हममें सेवा और त्याग का भाव न लाये, अगर विद्या हमें आदर्श के लिए सीना खोलकर खड़ा होना न सिखाये, अगर विद्या हममें स्वाभिमान न पैदा करे, और हमें समाज के जीवन-प्रवाह से अलग रखे तो उस विद्या से हमारी अविद्या अच्छी। और आर्यसमाज ने हमारी भाषा के साथ जो उपकार किया है उसका सबसे उज्ज्वल प्रमाण यह है कि स्वामी दयानन्द ने इसी भाषा में सत्यार्थ-प्रकाश लिखा और उस वक्त लिखा जब उसकी इतनी चर्चा न थी। उनकी बारीक नजर ने देख लिया कि अगर जनता में प्रकाश ले जाना है तो उसके लिए हिन्दी भाषा ही अकेला साधन है, और गुरुकुलों ने हिन्दी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाकर अपने भाषा-प्रेम को और भी सिद्ध कर दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी व्याख्यानमाला

दयानन्द और हिन्दी-पत्रकारिता

व्याख्याता

पद्मश्री आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन'

प्ररोचना

श्री बलभद्रकुमार हूजा

कुलपति

संयोजक

डॉ० विष्णुदत्त 'राकेश'

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय

हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८ फरवरी, सन् १९८५

प्रकाशक
वीरेन्द्र अरोड़ा
कुलसचिव
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

मुद्रक
भारती प्रिण्टर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्ररोचना

महर्षि दयानन्द भारतीय नवोदय के अग्रदूत थे। संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए भी हिन्दी को लेखन का आधार बनाकर वह सामान्य जन-जीवन के साथ जुड़े। उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' से संसार में अभूतपूर्व क्रान्ति का सूत्रपात हुआ। 'सत्यार्थ प्रकाश' का प्रथम मुद्रण १८७५ में तथा द्वितीय संस्करण १८८४ में हुआ। इस दूसरे संशोधित परिवर्द्धित संस्करण का महत्त्व इस बात से भी है कि इसमें उनकी भाषा पहले की अपेक्षा अधिक प्रांजल और टकसाली बन गई है तथा आधुनिक हिन्दी-लेखन का मार्ग इसने प्रशस्त किया है। पुरानी सधुक्कड़ी हिन्दी को ज्ञान-विज्ञान की अभिव्यक्ति का सशक्त और समर्थ माध्यम बनाने का उपक्रम स्वामी जी ने ही किया। उन्होंने वैदिक, दार्शनिक तथा सामाजिक और राजनीतिक विषयों पर अच्छी हिन्दी में लिखकर यह सिद्ध कर दिया कि उच्चतम अध्ययन-अध्यापन और चिन्तन-मनन के लिए हिन्दी उपयुक्त माध्यम है, समूचे समाज के परस्पर सामूहिक व्यवहार में उसका उपयोग किया जा सकता है तथा समूचे देश को, भाषाओं के वैविध्य के रहते हुए भी, समेकित किया जा सकता है।

मिस्टर ग्रिफ़िथ तथा ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की तरह महर्षि दयानन्द भारतेन्दु की पत्रिका 'कवि वचन सुधा' में लिखा करते थे। इस पत्र के लेखकों ने हिन्दी को नवीन शैली तथा नई चाल दी। मेरठ से स्वामी जी के समय में 'आर्य-समाचार' नामक पत्र का प्रकाशन हुआ। स्वामी जी ने ही फर्रुखाबाद से प्रकाशित होने वाले 'भारत कुदशा प्रमर्दक' पत्र का नाम बदलकर 'भारत सुदशा प्रवर्त्तक' को निकालने की प्रेरणा दी। स्वामी जी नकारात्मक दृष्टिकोण के विरोधी थे। नामकरण के मूल में उनके सकारात्मक रवैये को स्पष्ट देखा जा सकता है। शाहजहाँपुर से निकलने वाला 'आर्य दर्पण' भी उनकी प्रेरणा का ही फल था। 'आर्य दर्पण' के संचालक मुंशी बख्तावरसिंह स्वामी जी के शिष्य थे। 'आर्य-विनय' के सम्पादक बदरीदत्त जोशी दयानन्द के प्रति अत्यन्त आस्थावान थे। मुंशी नारायणप्रसाद जी के हृदय में आर्य-संस्कारों के दृढ़ीभूत करने का कार्य जोशी जी ने किया और बाद को मुंशी जी 'महात्मा नारायण स्वामी' के नाम से विख्यात हुए। प्रारम्भ में आर्यसमाजी पत्र उर्दू में निकलते रहे, किन्तु बाद में वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी में निकलने शुरू हुए। परोक्ष रूप से उर्दू के द्वारा खड़ी बोली हिन्दी का प्रचार करने में इन पत्रों का योगदान भुलाया नहीं जा सकता। १८९८ में मुरादाबाद से 'मुहरिक' नाम से उर्दू में निकलने वाला पत्र बाद में हिन्दी में 'आर्य-मित्र' नाम से निकलने लगा। पण्डित पूरणमल के सम्पादन में १८९५ में बरेली से 'आर्य पत्र' निकला; जो बाद में उर्दू से हिन्दी में परिवर्तित हो गया। मुंशीराम जी का 'सद्धर्म प्रचारक' भी उर्दू से बाद में हिन्दी में निकलना शुरू हुआ। लाहौर का 'आर्य गजट', 'हिन्दुस्तान', दिल्ली का 'अर्जुन', लाहौर का ही 'युगांतर', गुरुकुल का 'वैदिक मैगज़ीन', 'अलंकार', 'गुरुकुल समाचार', महाराष्ट्र से 'वैदिक धर्म' और फिर 'प्रताप', 'मिलाप', 'सत्यवादी', 'भारतोदय', 'राजस्थान', 'आर्य मार्तण्ड,' 'सार्वदेशिक', 'आर्य संदेश', 'आर्य मर्यादा' तथा 'द आर्य मैसेंजर'-जैसे पत्र हिन्दी-अँग्रेज़ी में निकलने शुरू हुए। इन पत्रों ने वैदिक धर्म के प्रचार के साथ-साथ समाज-सुधार पर भी बल दिया था।

स्वामी जी की मृत्यु से १० वर्ष पूर्व भारतेन्दु की स्त्री-शिक्षा-सम्बन्धी पत्रिका 'बाला बोधिनी' निकली। इस पर दयानन्द जी की मान्यताओं का गहरा प्रभाव था। फिर पंजाब से हेमन्तकुमारी चौधुरानी ने 'सुगृहिणी' नाम की पत्रिका निकाली, जो हिन्दी में महिलाओं की पहली पत्रिका कही जा सकती है। खड़ी बोली हिन्दी गद्य और तत्सम शब्दों का प्रयोग इनकी मुख्य प्रवृत्ति की ओर संकेत करता है। आर्य समाज ने अपने पक्ष और विपक्ष में जो लेखकीय जागरण पैदा किया, उसने खड़ी बोली गद्य को प्रचारित करने में अभूतपूर्व योगदान किया। पुनर्जागरण से आर्य समाज के विद्यालयों में हिन्दी चलने लगी और डी० ए० वी० कालेजों तथा गुरुकुलों में हिन्दी माध्यम से ज्ञान-विज्ञान के उच्च विषयों का अध्यापन होने लगा। १८७० के बाद के दशक में तो धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक आन्दोलनों के कारण खड़ी बोली गद्य में पुस्तकों, पुस्तिकाओं, पैम्फलेटों, पत्रिकाओं की भरमार हो गई। स्वामी जी की मृत्यु से ७ वर्ष पूर्व बालकृष्ण भट्ट का 'हिन्दी प्रदीप' पत्र निकला। १८८८ में अम्बिकादत्त व्यास की 'वैष्णव पत्रिका' तथा स्वामीजी के निधन के वर्ष पण्डित प्रताप नारायण मिश्र का 'ब्राह्मण' पत्र निकलने प्रारंभ हुए। इन पत्रों में राजनीति, साहित्य और सामाजिक विषयों पर लेख छपते थे। खड़ी बोली हिन्दी गद्य, हास्य-व्यंग्य, खंडन-मंडन तथा प्रांजल हिन्दी का प्रयोग दयानन्द की शैली का था। अतः हिन्दी-लेखन का वह युग भाषागत प्रतिमान की दृष्टि से 'दयानन्द युग' कहा जाना चाहिए। एक बात और; १८८० में प्रकाशित 'भारत सुदशा प्रवर्त्तक' तथा १८७० में प्रकाशित 'आर्य दर्पण' हिन्दी के परिनिष्ठित प्रयोग की दृष्टि से तत्कालीन पत्रिकाओं में सबसे आगे कहे जा सकते हैं। १९०० में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के सम्पादन में निकलने वाली 'सरस्वती' इस धारा की प्रौढ़तम उपलब्धि है, जिसने व्याकरणनिष्ठ खड़ी बोली हिन्दी गद्य की प्रतिष्ठा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की। फिर तो साहित्यिक और राजनीतिक पत्र-पत्रिकाओं की धूम ही मच गई।

इस प्रकार देश-व्यापी जन-जागरण की चेतना का केन्द्र स्थापित करने में महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज द्वारा प्रकाशित-प्रोत्साहित हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं का उल्लेखनीय योगदान रहा है। खेद है कि हिन्दी तथा हिन्दीतर क्षेत्रों में आर्य समाज द्वारा उत्पन्न की गई आधुनिक जीवन-चेतना तथा साहित्यिक परिवेश का समुचित मूल्यांकन नहीं हुआ। महर्षि दयानन्द १९वीं शती के प्रारम्भ में जिस सामाजिक, राजनीतिक, दार्शनिक, साहित्यिक तथा राष्ट्रीय जागरण का संदेश लेकर आए थे उसको हिन्दी के साथ जोड़कर उनकी युगान्तरकारी दृष्टि का अध्ययन तो और भी नहीं हुआ। हमारे लिए यह गौरव की बात है कि हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार तथा पत्रकारिता के मर्मज्ञ विद्वान् पद्मश्री आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन' इस दिशा में विशेष रूप से सक्रिय हैं। 'दिवंगत हिन्दी-सेवी'-जैसे संदर्भ-ग्रन्थ की रचना के द्वारा उन्होंने हिन्दी साहित्य के विकास की ऐसी अलभ्य अनुसन्धानपूर्ण नवीन सामग्री प्रस्तुत करने की पहल की है कि जिससे हिन्दी साहित्य के अब तक प्रकाशित सभी इतिहास धूमिल हो गए हैं। इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ को १० खण्डों में प्रकाशित करने की योजना है। इसके २ खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं। इन दो खण्डों में समाविष्ट अब तक के लगभग दो हज़ार जाने-अनजाने दिवंगत हिन्दी-सेवियों का जीवन-वृत्त, साहित्य-साधना और संस्मरणात्मक टिप्पणी-लेखन इस संदर्भ ग्रन्थ की निजी विशेषता है। 'दयानन्द और हिन्दी पत्रकारिता' विषय पर हमने उन्हें व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया है। 'सुमन' जी ने हमारा अनुरोध स्वीकार किया, इसके लिए हम उनके आभारी हैं।

'महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी' पर विश्वविद्यालय में आयोजित 'प्रसार-व्याख्यानमाला' का यह चतुर्थ व्याख्यान है। इससे पूर्व पंजाब विश्वविद्यालय की दयानन्द पीठ के अध्यक्ष डॉ० भवानीलाल भारतीय, भारतीय भाषा परिषद् कलकत्ता के निदेशक डॉ० प्रभाकर माचवे तथा 'ट्रिब्यून' के सम्पादक श्री मदन-गोपाल के क्रमशः 'दयानन्द—समय की कसौटी पर', 'दयानन्द, गांधी और मार्क्स' तथा 'दयानन्द और प्रेमचन्द' विषयों पर व्याख्यान हो चुके हैं। श्री 'सुमन' का यह व्याख्यान भी पूर्व व्याख्यानों की तरह उपयोगी जानकारी से भरपूर होने के साथ-साथ दयानन्द की हिन्दी-चेतना का प्रामाणिक आकलन प्रस्तुत करता है।

विश्वविद्यालय के यशस्वी विद्वान् डॉ० विष्णुदत्त 'राकेश' को इस महत्त्वपूर्ण व्याख्यानमाला का सफलतापूर्वक संयोजन करने के लिए हार्दिक साधुवाद।

बलभद्रकुमार हूजा
कुलपति

श्रद्धानन्द बलिदान-दिवस
१३-१२-८४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मान्य कुलपति जी, आध्यापकवृन्द तथा अन्य साहित्य-प्रेमी मित्रो,

सर्व प्रथम मैं 'महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी व्याख्यानमाला' के संयोजक डॉ० विष्णुदत्त 'राकेश' का हार्दिक आभारी हूँ जिन्होंने मुझे ऐसे शिक्षण-संस्थान में 'दयानन्द और हिन्दी-पत्रकारिता' विषय पर भाषण देने के लिए आमन्त्रित किया है जिसके संस्थापक अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द (महात्मा मुन्शीराम) महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनन्य अनुयायी होने के साथ-साथ उच्चकोटि के पत्रकार भी थे। उन्होंने स्वामी दयानन्द द्वारा संस्थापित आर्य समाज के सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए जहाँ एक कुशल एवं प्रखर पत्रकार के रूप में देश का उचित दिशा-निर्देश किया था वहाँ सन् १९०२ में शिवालिक पर्वत की पावन उपत्यका में पतित पावनी भागीरथी के पुनीत तट पर अवस्थित ऐसे तपोवन में इस संस्था की स्थापना की थी जिसके सम्बन्ध में 'उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम्' की वैदिक सूक्ति नितान्त उपयुक्त सिद्ध होती है।

उन दिनों अपनी पुरानी भूमि में इस महान् विद्या-मन्दिर का परिसर इतना नयनाभिराम तथा आकर्षक प्रतीत होता था कि उसकी मनोरमता और भव्यता से अभिभूत होकर यहाँ की विशिष्टता तथा संस्था के प्राण मुन्शीराम जी की प्रशंसा भारत-भक्त श्री सी० एफ० एण्ड्रूज ने दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह-संग्राम में लिप्त गांधी जी को लिखे अपने एक पत्र में इस प्रकार की थी—"जिस भारत को मैं जानता था, जिस भारत से मैं प्रेम करता था, जो भारत मेरे सपनों में था, वह मुझे यहाँ देखने को मिला। मैंने अपने सम्मुख उस मातृभूमि को देखा जो न शोकातुर थी, और न श्रान्त-क्लान्त; जिसमें अनन्य अनश्वर वन था, जो वसन्त के समान ताजा व नवयौवन से परिपूर्ण था। यहाँ गुरुकुल में यह नव भारत विद्यमान है।" तब स्वामी जी केवल 'मुन्शीराम' के नाम से जाने जाते थे और गांधी जी भी 'महात्मा' के विशेषण से विभूषित नहीं हुए थे। बाद में दोनों का पुण्यस्मरण 'महात्मा' नाम से होने लगा। यह नामकरण भी दोनों ने परस्पर ही किया था। गांधी जी ने मुन्शीराम जी को 'महात्मा' नाम से सम्बोधित करते हुए २१ अक्तूबर सन् १९१४ को जो पत्र लिखा था, उसका कुछ अंश इस प्रकार है—

"प्रिय महात्मा जी,

मि० एण्ड्रूज ने आपके नाम और काम का इतना परिचय दिया है कि मैं अनुभव कर रहा हूँ कि मैं किसी अजनबी को पत्र नहीं लिख रहा। इसलिए आशा है कि आप मुझे आपको 'महात्मा जी' लिखने के लिए क्षमा करेंगे। मैं और एण्ड्रूज साहब आपकी चर्चा करते हुए आपके लिए इसी शब्द का प्रयोग करते हैं। ...उन्होंने मुझे आपकी संस्था गुरुकुल को देखने के लिए अधीर बना दिया है।

आपका—मोहनदास गांधी"

इस पत्र के ६ महीने बाद गांधी जी जब भारत आए तब वे गुरुकुल में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पधारे। गुरुकुल की ओर से उन्हें जो मानपत्र ८ अप्रैल, सन् १९१५ को दिया गया था उसमें गांधी जी को भी 'महात्मा' नाम से सम्बोधित किया गया था। इस प्रकार दोनों महात्माओं के सम्मिलन से इस संस्था का जो गौरव बढ़ा, वह अब इतिहास का विषय हो गया है। ऐसी राष्ट्रीय महत्त्व की संस्था में 'दयानन्द और हिन्दी-पत्रकारिता' विषय पर अपने विचार प्रकट करने में मैं अपना अहोभाग्य मानता हूँ।

आर्य समाज हमारे देश की उन क्रान्तिकारी संस्थाओं में है, जिसने पराधीनता के दिनों में यहाँ की जनता को साँस्कृतिक और धार्मिक जागृति का पावन सन्देश देने के साथ-साथ उसे साहित्यिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में आगे बढ़ाने के लिए ऐसे अनेक कार्यकर्त्ता प्रदान किये, जिन्होंने अपने उज्ज्वल अतीत के स्वर्णिम सपनों को सँजोकर हमारे वर्तमान को सँभाला और इस देश को सुखद भविष्य के आलोकमय पथ पर अग्रसर किया। हमें यह लिखने में तनिक भी संकोच नहीं है कि भारतीय स्वतंत्रता के जनक राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने हमारे देश को पराधीनता के पाशविक पाश से मुक्ति दिलाने के लिए जो-जो कार्यक्रम निर्धारित किये और जो साधन उन्होंने इसकी सम्पूर्ति के लिए अपनाये वे सब महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रणीत 'सत्यार्थ प्रकाश' और उनके द्वारा संस्थापित 'आर्य समाज' के युगान्तरकारी आन्दोलन के ही मूल प्रेरणा-बिन्दु थे। महर्षि दयानन्द ने अपनी घनघोर तपस्या तथा अनन्य कर्तव्य-निष्ठा से जहाँ देश को सांस्कृतिक दृष्टि से सुपुष्ट और समृद्ध किया वहाँ महात्मा गांधी ने राजनीतिक दृष्टि से उसे आगे बढ़ाया। हमारी तो ऐसी भी मान्यता है कि यदि इस पुण्य भूमि पर महर्षि दयानन्द-जैसा दूरदर्शी युग-पुरुष अवतरित न हुआ होता और उसके द्वारा संस्थापित 'आर्य समाज' ने विभिन्न क्षेत्रों में अपने कर्मठ कार्यकर्त्ता न झोंके होते तो कदाचित् आज भारत की स्थिति कुछ और ही होती। इसका ज्वलन्त प्रमाण उनके अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में लिखे गए ये विचार हैं—"कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है।" स्वामी जी के इन शब्दों में सर्वप्रथम 'स्वराज्य' की भावना प्रकट हुई थी।

देश और समाज में प्रचलित अनेक रूढ़ियों और कुरीतियों को देखकर महर्षि दयानन्द ने अपने क्रान्तिकारी विचारों के द्वारा जो प्रबल एवं अभूतपूर्व नवजागरण किया उसीका मूल रूप 'आर्य समाज' है। आर्य समाज ने न केवल धार्मिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में अनेक कार्यकर्त्ता उत्पन्न किये, प्रत्युत साहित्यिक तथा राज-नीतिक आन्दोलनों में भी उसने बढ़-चढ़कर भाग लिया। अतीत काल के भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलनों के इतिहास पर यदि हम दृष्टि डालें तो ऐसी अनेक विभूतियों के नाम हमारे समक्ष उभरकर आयँगे जिन्होंने न केवल इस देश के साँस्कृतिक उन्नयन में उल्लेखनीय योगदान दिया अपितु राष्ट्रीय स्वाधीनता-संग्राम के इतिहास में भी उनका नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है। ऐसे महापुरुषों में स्वामी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रद्धानन्द और लाला लाजपतराय आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ऐसे भी अनेक क्रान्तिकारी विचारक और कार्यकर्त्ता आर्य समाज ने देश को दिये जिन्होंने भारतीय स्वतंत्रता के लिए विदेशों में जाकर उल्लेखनीय कार्य किया। ऐसे महानुभावों में सर्वश्री भाई परमानन्द, लाला हरदयाल, श्यामजी कृष्ण वर्मा, राजा महेन्द्रप्रताप, भवानीदयाल संन्यासी और तोताराम सनाढ्य आदि के नाम हमारे सामने एक उदात्त आदर्श प्रस्तुत करते हैं। सशस्त्र क्रान्ति के द्वारा जिन आर्य तरुणों ने स्वाधीनता के पावन यज्ञ में अपने प्राणों की अमर आहुति दी उनमें भी अधिकांशतः आर्य समाज के सुधारवादी आन्दोलन से ही प्रेरित थे। ऐसे बलि-पंथियों में अमर शहीद सरदार भगतसिंह के अतिरिक्त रामप्रसाद बिस्मिल, चन्द्रशेखर आज़ाद और रोशनलाल-जैसे क्रान्तिकारियों के नाम वरेण्य हैं।

आर्य समाज एक ऐसी सर्वतोमुखी विकासशील संस्था है जिसके द्वारा राष्ट्र में न केवल धार्मिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में अभूतपूर्व जागरण हुआ, प्रत्युत शिक्षा तथा समाज-सुधार के क्षेत्र में भी इसकी देन अनन्य है। इसके द्वारा जहाँ विधवा-विवाह, बाल-विवाह-निषेध, हरिजनोद्धार तथा स्वदेशी-प्रचार के अनेक क्रान्तिकारी कार्यक्रम संचालित हुए वहाँ इसके गुरुकुलों और डी० ए० वी० कालिजों ने भी शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया। यहाँ तक कि इन शिक्षा-संस्थाओं में प्रशिक्षित और दीक्षित स्नातकों ने न केवल भारत के विभिन्न प्रदेशों में जाकर साँस्कृतिक क्षेत्रों में उल्लेखनीय कार्य किया, प्रत्युत विदेशों में भी भारत और भारतीयता के गौरव की अभिवृद्धि की। राष्ट्रभाषा हिन्दी के सर्वांगीण विकास में योगदान देने के साथ-साथ उन्होंने साहित्यिक क्षेत्र में भी अपनी ज्वलन्त प्रतिभा का परिचय दिया। यह निर्विवाद सत्य है कि यदि आर्य समाज के द्वारा वैचारिक क्षेत्र में ऐसे क्रान्तिकारी परिवर्तन न हुए होते तो हिन्दी साहित्य को सर्वश्री प्रेमचन्द, सुदर्शन, चतुरसेन शास्त्री, यशपाल और राहुल सांकृत्यायन-जैसे प्रखर और मेधावी कथाकार कैसे उपलब्ध होते! पत्रकारिता के क्षेत्र में अतीत काल में जिन्होंने राष्ट्र का सही मार्ग-प्रदर्शन किया उनमें भी ऐसे ही महानुभाव अग्रगण्य रहे जो आर्यसमाज तथा महर्षि स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों के कट्टर अनुयायी थे। ऐसे पत्रकारों में स्वामी श्रद्धानन्द के अतिरिक्त सर्वश्री रुद्रदत्त शर्मा सम्पादकाचार्य, पद्मसिंह शर्मा, राधामोहन गोकुलजी, गणेशशंकर विद्यार्थी, विजयसिंह पथिक, इन्द्र विद्यावाचस्पति, सत्यदेव विद्यालंकार, सत्यकाम विद्यालंकार और हरिशंकर शर्मा आदि के नाम विशेष परिगणनीय हैं।

जिन दिनों हमारे देश में आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती का अवतरण हुआ था उन दिनों यहाँ सन् १८५७ की अमर क्रान्ति के उपरान्त मुग़ल साम्राज्य सर्वथा ध्वस्त हो चुका था और अंग्रेजी शासन की जड़ें मजबूती से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जमने के साथ महारानी विक्टोरिया की घोषणा से देश में विचार-स्वातन्त्र्य की भावना उद्भूत हो गई थी। देश के कोने-कोने में ईसाइयों ने जहाँ अपने धर्म के प्रचार के लिए अनेक केन्द्र स्थापित कर लिए थे वहाँ बंगाल में राजा राममोहन-राय और केशवचन्द्र सेन निरन्तर 'हिन्दी , हिन्दू, हिन्दुस्थान' की आवाज़ ऊँची कर रहे थे। दुर्भाग्यवश ये दोनों महानुभाव क्योंकि संस्कृत के पण्डित न थे, अत: इन्होंने अपने-अपने धार्मिक आन्दोलनों की नींव पाश्चात्य जीवन-प्रणाली के आधार पर डाली थी। इसके विपरीत महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज के द्वारा आर्यभावना-मूलक संस्कृति का प्रचार करने की दिशा में देश का उल्लेखनीय नेतृत्व किया था। उक्त दोनों महानुभावों का झुकाव जहाँ ईसाइयत और पाश्चात्य जीवन-पद्धति की ओर था वहाँ महर्षि दयानन्द भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठापना की ओर अग्रसर थे। यदि हम यह कहें तो कदाचित् अप्रासंगिक न होगा कि केशवचन्द्र सेन की पश्चिमोन्मुखी विचार-धारा को पूर्वाभिमुख करने का श्रेय भी महर्षि दयानन्द को ही है। इसी प्रकार हमें यह मानने में भी कोई संकोच नहीं है कि केशवचन्द्र सेन से हुए सम्पर्क के कारण ही महर्षि दयानन्द ने जहाँ हिन्दी में व्याख्यान देना शुरू किया वहाँ उनके आग्रह पर ही उन्होंने वस्त्र-धारण करना प्रारम्भ किया था। महर्षि से केशवचन्द्र सेन की भेंट सन् १८७२ में जब कलकत्ता में हुई थी तब स्वामीजी संस्कृत में ही भाषण दिया करते थे और शरीर पर कोई वस्त्र धारण न करके 'कौपीनवन्त: खलु भाग्यवन्त:' के अनुसार केवल कौपीन ही पहनते थे। श्री सेन प्राय: अपने विचार अंग्रेज़ी के द्वारा ही प्रकट किया करते थे। वे स्वामीजी की विचार-धारा को जानना-समझना चाहते थे, किन्तु संस्कृत भाषा से सर्वथा अपरिचित होने के कारण बे उससे वंचित थे। स्वामीजी के अंग्रेज़ी-ज्ञान से विहीन होने के प्रति उन्होंने जो भाव प्रकट किये थे वे इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। उन्होंने कहा था—"शोक है कि वेदों का अद्वितीय विद्वान् अंग्रेज़ी नहीं जानता, अन्यथा इंगलैण्ड जाते समय वह मेरा इच्छानुकूल साथी होता।" इस पर स्वामीजी ने जो भाव प्रकट किये थे उन्होंने भी श्री सेन को हतप्रभ कर दिया था। स्वामीजी ने कहा था—"शोक है कि ब्रह्मसमाज का नेता संस्कृत नहीं जानता और लोगों को उस भाषा में उपदेश देता है जिसे वे नहीं समझते।" इन दोनों महानुभावों का यह स्नेह-सम्पर्क देश के लिए यहाँ तक लाभकारी सिद्ध हुआ कि उसके कारण स्वामीजी ने पूर्णत: हिन्दी को अपना लिया और अपने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना संस्कृत में न करके हिन्दी में की। इस प्रकार हम यह नि:संकोच कह सकते हैं कि केशवचन्द्र सेन देश के ऐसे पहले राष्ट्रीय नेता थे। जिन्होंने 'राष्ट्रभाषा हिन्दी' के महत्त्व को समझकर स्वामीजी को हिन्दी-लेखन और भाषण के प्रति उन्मुख किया था। श्री सेन की राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति कितनी निष्ठा थी, उसका परिचय आप उनके 'सुलभ समाचार' नामक बंगला पत्र में प्रका-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शित इन शब्दों से भलीभाँति प्राप्त कर सकते हैं—"बिना एकता के भारतवर्ष का उद्धार नहीं हो सकता। भारतवर्ष की उस एकता का उपाय क्या है। इस समय भारतवर्ष में जितनी भाषाएँ प्रचलित हैं, उनमें हिन्दी ही ऐसी भाषा है जो सर्वत्र प्रचलित है—सबसे अधिक बोली और समझी जाती है। इसलिए यदि हिन्दी को सारे भारत की एक-मात्र भाषा बना दिया जाय तो सारे देश की एकता सम्पन्न हो सकती है। एक भाषा के बिना एकता नहीं हो सकती।"

श्री केशवचन्द्र सेन तथा राममोहन राय से हुई भेंट के उपरान्त स्वामीजी ने जब ७ अप्रैल, सन् १८७५ को बम्बई में 'आर्य समाज' की स्थापना की थी उस समय भी उन्होंने हिन्दी को 'आर्य भाषा' का पावन अभिधान देकर आर्य समाज के ३५वें उपनियम में अपनी हिन्दी-निष्ठा इस प्रकार अभिव्यक्त की थी—"सब आर्यों और आर्यसमाजियों को संस्कृत व आर्य भाषा (हिन्दी) जाननी चाहिए।" स्वामीजी द्वारा संस्थापित आर्य समाज ने जहाँ समस्त देश में भारतीयता तथा राष्ट्रीयता का प्रबल प्रचार किया वहाँ हिन्दी-प्रचार के क्षेत्र में उनकी देन स्वर्णाक्षरों में उल्लेखनीय है। हिन्दी साहित्य के विगत इतिहास पर यदि हम दृष्टि-निक्षेप करें तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि हिन्दी की वर्तमान प्रगति में स्वामीजी तथा उनके द्वारा संस्थापित आर्य समाज का बहुत बड़ा योगदान है। क्योंकि उन्होंने यह अनुभव किया था कि हिन्दी ही सारे देश में समान रूप से बोली और समझी जाती है इसलिए उन्होंने हिन्दी को ही सर्वथा अपनाकर अपने ग्रन्थ भी इसी भाषा में लिखने प्रारम्भ कर दिए थे। आपने पुरानी सधुक्कड़ी हिन्दी को अपनाकर उसे सर्वथा नई विचार-भूमि प्रदान की थी। वे भाषा को साहित्यिक दृष्टि से अलंकृत नहीं करते थे, बल्कि एक समाज-सुधारक का दृष्टिकोण ही उनकी भाषा में परिलक्षित होता है। उनके 'सत्यार्थ प्रकाश' के द्वितीय संस्करण की भूमिका के इन शब्दों से उनकी इस मान्यता पर और भी व्यापक प्रकाश पड़ता है—"जिस समय मैंने यह ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' बनाया था उस समय और उससे पूर्व संस्कृत भाषण करने, पठन-पाठन में संस्कृत ही बोलने और जन्मभूमि की भाषा गुजराती होने के कारण मुझको इस भाषा का विशेष परिज्ञान नहीं था, इससे भाषा अशुद्ध बन गयी थी। अब भाषा बोलने और लिखने का अभ्यास हो गया है। इसलिए इस ग्रन्थ को भाषा-व्याकरणानुसार शुद्ध करके दूसरी बार छपवाया है।" स्वामीजी के हिन्दी-प्रेम का परिचय हमें उस पत्र से भी मिल जाता है जो उन्होंने प्रख्यात थियोसोफ़िस्ट मैडम ब्लेवेट्स्की को लिखा था। उस पत्र में स्वामीजी ने स्पष्ट रूप से यह संकेत किया था कि—"जिस पत्र का हमसे उत्तर चाहें, उसकी नागरी कराकर हमारे पास भेजा करें।" इसी प्रकार एक बार १३ जुलाई सन् १८७९ को आपने अपने एक विदेशी मित्र कर्नल अल्काट को अपनी भावनाएँ इस प्रकार लिखी थीं—"मुझे सुनकर खुशी हुई कि आपने नागरी पढ़ना आरम्भ कर दिया है।" यहाँ यह स्मरणीय है कि स्वामीजी अपने सम्पर्क में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आने वाले प्रायः सभी व्यक्तियों को हिन्दी पढ़ने की प्रेरणा देते रहते थे। यह स्वामीजी द्वारा संस्थापित आर्य समाज के अनेक कर्मठ कार्यकर्ताओं का ही प्रताप था कि सारे देश में हिन्दी का प्रचार तथा प्रसार तेजी से हो गया। स्वामीजी के समकालीन प्रायः सभी नेताओं, सुधारकों और साहित्यकारों ने उनकी विचार-धारा से प्रभावित होकर हिन्दी-प्रसार को अपने जीवन का प्रमुख ध्येय बनाया। स्वामीजी की विचार-धारा से जहाँ महात्मा गांधी ने प्रबल प्रेरणा ग्रहण की थी वहाँ भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने भी उनके सुधारवादी आन्दोलन में खुलकर साथ दिया था। भारतेन्दु जी तो स्वामीजी से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने उनका नाम अपनी 'कवि वचन सुधा' नामक पत्रिका के सम्पादक-मण्डल में भी समाविष्ट कर लिया था। इस पत्र में स्वामीजी के कार्यों का विवरण भी यदा-कदा प्रकाशित होता रहता था।

महर्षि दयानन्द ने जिन दिनों आर्य समाज की स्थापना की थी, तब देश में उर्दू का बोल-बाला था और पत्र-पत्रिकाएँ भी प्रायः उर्दू में ही प्रकाशित होती थीं। सर्व प्रथम आर्य समाज की पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से ही देश में हिन्दी के प्रचार और प्रसार को विशेष सहयोग मिला था। इसका सुपुष्ट प्रमाण डॉ० रामरतन भटनागर के शोध प्रबन्ध के इस उद्धरण से मिलता है—"उर्दू के मध्य में हिन्दी की नींव दृढ़ करने वाली संस्था थी आर्य समाज। अपने मासिक पत्रों तथा समाचार-पत्रों के प्रकाशन के द्वारा उसने हिन्दी के प्रभावशाली पृष्ठपोषण का कार्य किया। सर्व प्रथम सन् १८७० में शाहजहाँपुर (उत्तर प्रदेश) से मुन्शी बख्तावरसिंह ने 'आर्य दर्पण' नामक साप्ताहिक पत्र प्रारम्भ किया और उसके बाद से अनेकों पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आर्य समाज की ओर से होता चला आ रहा है।" इस उद्धरण से यह सिद्ध होता है कि आर्य समाज की संस्थापना से लगभग ५ वर्ष पूर्व ही महर्षि दयानन्द के विचारों से प्रेरित होकर मुन्शी बख्तावरसिंह ने इस साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया था। इन्हीं बख्तावरसिंह ने सन् १८७५ में 'आर्यभूषण' नामक मासिक भी निकाला था। 'वैदिक यन्त्रालय' अजमेर के व्यवस्थापक और महर्षि दयानन्द के अनन्य शिष्य श्री मनीषी समर्थदान ने अजमेर से सन् १८८९ में 'राजस्थान समाचार' नामक पत्र का सम्पादन और प्रकाशन भी किया था। महर्षि दयानन्द ने हिन्दी को 'आर्यभाषा' के गौरवपूर्ण अभिधान से अभिषिक्त करके उसे सर्वथा नई विचार-भूमि प्रदान की थी। वे अपनी भाषा को साहित्यिक दृष्टि से अलंकृत नहीं करते थे, प्रत्युत एक समाज-सुधारक का दृष्टिकोण ही उनकी समस्त कृतियों में परिलक्षित होता है। एक बार जब पंजाब के किसी सज्जन ने उनके समस्त ग्रन्थों का उर्दू में अनुवाद करने की उनसे अनुज्ञा माँगी तो उन्होंने बड़े प्रेम से जो उत्तर उसे दिया था, वह आज भी हिन्दी की स्थिति को अत्यन्त दृढ़तापूर्वक प्रस्तुत करता है। उन्होंने लिखा था—"भाई, मेरी आँखें तो उस दिन को देखने के लिए तरस रही हैं जब कश्मीर से कन्याकुमारी तक सब भारतीय एक भाषा को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझने और बोलने लगेंगे। जिन्हें सचमुच मेरे भावों को जानने की इच्छा होगी वे इस आर्य भाषा का सीखना अपना कर्तव्य समझेंगे। अनुवाद तो विदेशियों के लिए हुआ करते हैं।"

वास्तव में महर्षि दयानन्द की यह भावना अक्षरश: चरितार्थ हुई और देश के कोने-कोने में उनके क्रान्तिकारी विचारों को जानने और समझने के लिए ही उनके अनेक भक्तों ने आर्यभाषा पढ़ी थी। हिन्दी के व्यवहार, प्रचार तथा प्रसार के प्रति वे कितने जागरूक रहते थे इसका ज्वलन्त प्रमाण उनका वह पत्र है जो उन्होंने ७ अक्तूबर, १८७८ को दिल्ली से श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा को लिखा था--"अब की बार भी वेदभाष्य के लिफाफे पर देवनागरी नहीं लिखी गयी, इसीलिए तुम बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि से कहो कि अभी इस पत्र के देखते ही देवनागरी जानने वाला एक मुन्शी रख लें। जिससे कि काम ठीक-ठीक से हो, नहीं तो वेदभाष्य के लिफाफों पर रजिस्टर के अनुसार ग्राहकों का पता किसी देवनागरी जानने वाले से लिखवा लिया करें।"

महर्षि के उक्त शब्द लगभग एक शती पूर्व के हैं। यह सही है कि देश की जनता ने महर्षि दयानन्द की इस भावना का सच्चे हृदय से आदर किया, किन्तु राजनीति से आक्रान्त वातावरण में आज भी जहाँ-तहाँ हिन्दी-विरोध का स्वर उभरता रहता है। जो लोग अहिन्दी-भाषियों की असुविधा की दुहाई देकर हिन्दी के विकास का मार्ग अवरुद्ध करते रहते हैं वे यह कैसे भूल जाते हैं कि १८६९ के काशी-शास्त्रार्थ के अनन्तर आर्य समाज की स्थापना से तीन वर्ष पूर्व सन् १८७२ में महर्षि दयानन्द जब कलकत्ता गये थे तब राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, जस्टिस शारदाचरण मित्र और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर प्रभृति सज्जनों ने उनसे संस्कृत में अपने सिद्धान्तों का प्रचार करने के बजाय हिन्दी को अपने प्रचार का माध्यम बनाने का अनुरोध किया था। महर्षि दयानन्द उस समय विश्व-कवि रवीन्द्र-नाथ ठाकुर के पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के विशेष अनुरोध पर कलकत्ता गये थे। ५ फरवरी, सन् १८७० को प्रयाग के कुम्भ मेले में उनसे महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर की भेंट हुई थी। अपने कलकत्ता-प्रवास में महर्षि दयानन्द ने अन्य सभी सज्जनों के समक्ष वहाँ पर एक 'वेद विद्यालय' की संस्थापना का प्रस्ताव भी रखा था, जो सन् १८८३ में स्थापित हो सका था। किन्तु कुछ दिन बाद ही वह बन्द हो गया। यह भी एक विचित्र संयोग की बात है कि महर्षि दयानन्द ने इन सज्जनों के अनुरोध पर अपनी योग-साधना का जो विशद वर्णन प्रस्तुत किया था, उसे हम उनकी प्रथम जीवनी कह सकते हैं। यह कहानी महर्षि ने उस समय कलकत्ता में सुनाई थी जब वे सन् १८७२ में कलकत्ता गये थे। उस समय तक आर्य समाज की स्थापना भी नहीं हुई थी। आर्य समाज की स्थापना के पश्चात् सन् १८७५ में पूना के कुछ सज्जनों के आग्रह पर भी स्वामीजी ने अपना परिचय संक्षेप में प्रस्तुत किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। इसे हम स्वामीजी की द्वितीय जीवनी कह सकते हैं। महर्षि की तृतीय जीवनी बंकिमचन्द्र चटर्जी के 'बंग दर्शन' नामक पत्र में सन् १८७८ में प्रकाशित हुई थी। इसके अनन्तर हिन्दी भाषा में लिखित स्वामी जी की 'आत्म-कथा' अंग्रेजी में अनूदित होकर १८७९-८० में 'थियोसोफ़िस्ट' नामक पत्र में प्रकाशित हुई थी। स्वामीजी के निधन के उपरान्त सन् १८८४ में प्रोफ़ेसर मैक्समूलर के 'बायग्राफ़िकल एस्सेज' नामक निबन्ध-संग्रह में भी उनकी यह जीवनी समाविष्ट की गई थी। उसी वर्ष इंगलैण्ड के 'पाल माल गजट' में भी उनकी एक जीवनी छपी थी। यह सब स्वामीजी के विचारों से अवगत होने के लिए उन महानुभावों के प्रयत्नों से ही सम्भव हो सका था, जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं थी।

महर्षि दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट विचारों को साकार रूप देने के लिए जहाँ अनेक डी० ए० वी० कालिजों और गुरुकुलों की संस्थापना हुई वहाँ सैद्धान्तिक भावनाओं के प्रचार के लिए अनेक ऐसे विद्यालयों की स्थापना भी हुई, जहाँ प्रखर तार्किक वक्ता तैयार किये जा सकें। ऐसे विद्यालयों में गुरुकुल काँगड़ी और डी० ए० वी० कालिज लाहौर के अतिरिक्त 'आर्य मुसाफिर विद्यालय आगरा', 'दयानन्द उपदेशक विद्यालय' तथा 'दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय' लाहौर के नाम उल्लेखनीय हैं। इसके बाद तो देश में गुरुकुलों का जाल ही फैल गया और कई स्थानों पर ऐसी संस्थाओं का सूत्रपात हुआ। इन संस्थाओं में स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती द्वारा संस्थापित गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर और गुरुकुल वृन्दावन के नाम विशेष महत्त्व रखते हैं। इन सभी संस्थाओं ने जहाँ आर्य समाज को अनेक उच्चकोटि के विद्वान्, वक्ता, प्रचारक और उपदेशक प्रदान किये वहाँ भारत तथा विदेशों में प्रचलित विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों और मतों के सिद्धान्तों की जानकारी रखने वाले अनेक शास्त्रार्थ महारथी भी तैयार किये। शिक्षा के क्षेत्र में यह नया प्रयोग करने के साथ-साथ अपने सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए आर्य समाज के माध्यम से पत्रों के प्रकाशन की दिशा में जो क्रान्तिकारी कार्य हुआ, उससे जहाँ हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि के प्रचलन का कार्य देश में प्रचुरता से आगे बढ़ा वहाँ उससे अनेक सुलेखक और पत्रकार भी उत्पन्न हुए। पहले तो आर्य पत्र-पत्रिकाएँ उर्दू में ही प्रकाशित होती थीं, परन्तु धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों उक्त संस्थाओं और क्रियात्मक व्यवहार के कारण हिन्दी का प्रचलन हुआ त्यों-त्यों इस दिशा में भी प्रगति होती गई। स्वामी दयानन्द जी की प्रेरणा एवं प्रोत्साहन से सन् १८७९ में उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह ने भी 'सज्जन कीर्ति सुधाकर' नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन किया था। इस पत्र पर मेवाड़ का 'राज्य-चिह्न' प्रकाशित हुआ करता था और यह पत्र अनेक वर्ष तक अत्यन्त सफलता पूर्वक प्रकाशित होता रहा था। लगभग ५० वर्ष तक चलने के उपरान्त यह केवल सरकारी गजट हो गया था और इसमें अँग्रेजी तथा हिन्दी में शासकीय विज्ञप्तियों की ही भरमार रहने लगी थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब स्वामी जी अजमेर में 'परोपकारिणी सभा' को ले गए थे तब उनकी प्रेरणा पर आर्य समाज अजमेर के प्रथम प्रधान मंत्री श्री मुन्नालाल शर्मा के सम्पादन में वहाँ से सन् १८८१ में 'देश हितैषी' नामक मासिक पत्र का प्रकाशन भी हुआ था। इस पत्र के प्रत्येक अंक में आर्य विचार-धारा को अपनाने की प्रेरणा जिस कविता द्वारा दी जाती थी वह इस प्रकार है :

"अप्रीति रीति कुरीति छोड़ो, आर्य्यपन में चित धरो।
बहुदिवस सोये मत्त हो, अब सम्यता में रुचि करो॥
यह देश हितैषी है चली, तुम देश-हितैषी जन रहो।
पर-प्रीति-उन्नति देश चाहो, देश-हितैषी कर गहो॥"

आर्य समाज के आन्दोलन के प्रारम्भिक वर्षों में मेरठ का वही महत्त्व था, जो किसी समय पंजाब में लाहौर का था। फलतः सबसे पहले यहाँ सन् १८७८ में (आर्य समाज की स्थापना के पश्चात्) 'आर्यसमाचार' नामक साप्ताहिक पत्र श्री कल्याणराय के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ। स्वामीजी ने मेरठ में ही १६ अगस्त, सन् १८८० को 'परोपकारिणी सभा' की स्थापना की थी और उसकी रजिस्ट्री विधिवत् १६ अगस्त को हुई थी। मेरठ को इस बात का सौभाग्य प्राप्त है कि स्वामीजी सर्वप्रथम मार्च सन् १८६६ में उस समय यहाँ पधारे थे जबकि वे हरिद्वार के कुम्भ के मेले में सम्मिलित होने के लिए जा रहे थे। दूसरी बार वे जनवरी, १८७७ में और तीसरी बार २६ अगस्त, १८७८ को पधारे थे। उन दिनों एक मास से अधिक अवधि तक उन्होंने यहाँ निवास किया था। अपने इसी निवास-काल में उन्होंने यहाँ १६ सितम्बर, १८७८ को आर्य समाज की स्थापना की थी। चौथी बार १५ जनवरी, १८७६ को वे दिल्ली से मेरठ पधारे और १८ दिन तक यहाँ निवास किया। यहाँ पर ही उन्होंने कुम्भ मेले में वितरित करने के लिए विज्ञापन आदि छपवाए थे। पाँचवीं बार ३ मई, १८७६ को वे हरिद्वार-कुम्भ से लौटते हुए कर्नल अल्काट और मैडम ब्लेवेट्स्की को सहारनपुर से अपने साथ लेकर मेरठ पधारे थे। यहाँ सार्वजनिक सभा में इन दोनों ने ईसाई धर्म के महत्त्व पर अपने विचार प्रकट किये थे और स्वामीजी ने वैदिक धर्म की महत्ता प्रतिष्ठापित की थी। छठी बार स्वामीजी ४ जुलाई, १८८७ को पधारे थे और 15 सितम्बर तक ठहरे थे। इसी समय स्वामीजी ने पंडिता रमाबाई को (जो उनसे वैशेषिक दर्शन पढ़ना चाहती थीं) कलकत्ता से यहाँ बुलाया था। स्वामीजी चाहते थे कि रमाबाई आजीवन ब्रह्मचारिणी रहकर स्त्री जाति में शिक्षा और वैदिक धर्म का प्रचार करें। परन्तु स्वामी जी की यह इच्छा पूर्ण न हो सकी और कलकत्ता वापिस लौटने के कुछ दिन बाद ही वे ईसाई धर्म में दीक्षित हो गईं। मेरठ से विदाई के समय रमाबाई को १२५ रुपये और कपड़े का एक थान आर्य-समाज की ओर से भेंट किया गया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी के मेरठ में निरन्तर पधारने के कारण वहाँ की जनता में आर्य-समाज और उसके सिद्धान्तों के प्रति जो अनन्य अनुराग जगा था उसीका सुपरिणाम यह हुआ कि सन् १८७८ में यहाँ से 'आर्य समाचार' साप्ताहिक निकला था। सन् १८९७ में श्री तुलसीराम स्वामी ने 'वेद प्रकाश' नामक मासिक पत्र यहाँ से प्रारम्भ किया और इसमें धारावाहिक रूप से उन्होंने 'सामवेद' का भाष्य प्रकाशित किया। बाद में उन्होंने सन् १९०७ में 'दयानन्द पत्रिका' नामक एक और मासिक पत्रिका भी निकाली। श्री रघुवीरशरण दुबलिश के भास्कर प्रेस से सन् १९१२ में 'भास्कर' तथा १९१३ में 'भारत महिला' नामक मासिक पत्र प्रकाशित हुए। बाबू घासीराम एम० ए० ने सन् १९१७ में 'आर्य समाचार' को फिर से मासिक रूप में निकाला। इसके प्रत्येक अंक के प्रथम पृष्ठ पर वेद-मन्त्रों की व्याख्या दी जाती थी। इन पत्रों के अतिरिक्त श्री विश्वम्भरसहाय 'प्रेमी' द्वारा सम्पादित मासिक 'तपोभूमि' और 'मातृभूमि' (साप्ताहिक) तथा श्रीमती उर्मिला शास्त्री द्वारा संपादित 'जन्म-भूमि', (साप्ताहिक) और सत्यवती स्नातिका का 'किसान सेवक' (साप्ताहिक) भी अपनी उल्लेखनीय विशेषता रखते थे। 'तपोभूमि' का 'भारतीय सभ्यता अंक' उल्लेखनीय सामग्री से परिपूर्ण था। आजकल श्री विश्वम्भर-सहाय 'विनोद' भी अपने दैनिक 'प्रभात' के माध्यम से आर्यसमाज के सिद्धान्तों के प्रचार में अग्रणी कार्य कर रहे हैं। इस प्रसंग में यह तथ्य भी विशेष रूप से उल्लेख्य है कि हिन्दी के ख्याति-लब्ध साहित्यकार महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का पहला हिन्दी-लेख सन् १९१६ में मेरठ से श्री रघुवीरशरण दुबलिश के सम्पादन में प्रकाशित होने वाले 'भास्कर' नामक पत्र में छपा था। उन दिनों राहुल जी आगरा के 'आर्य मुसाफिर विद्यालय' में पढ़ा करते थे और 'केदारनाथ विद्यार्थी' के नाम से जाने जाते थे। प्रख्यात आर्य विद्वान् पण्डित गणेशदत्त शर्मा 'इन्द्र' के सम्पादन में प्रकाशित 'बाल मनोरंजन' (१९१४), 'हिन्दी सर्वस्व' (१९१५) तथा 'चन्द्र प्रभा' (१९१७) भी अपने समय के अच्छे पत्र थे।

आर्य समाज की स्थापना के बाद सन् १८७९ में स्वामी दयानन्द जी की प्रेरणा पर फर्रुखाबाद (उत्तर प्रदेश) से 'भारत सुदशा प्रवर्त्तक' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इसका नाम पहले 'भारत कुदशा प्रमर्दक' था, बाद में स्वामीजी ने नाम बदल दिया था। इस पत्र का सम्पादन कुछ समय तक पण्डित गणेशप्रसाद शर्मा ने भी किया था। इन्हीं दिनों स्वामी श्रद्धानन्द जी ने (जब वे महात्मा मुंशीराम थे) कन्या महाविद्यालय जालन्धर के संस्थापक लाला देवराज के सहयोग से 'सद्धर्म प्रचारक' (साप्ताहिक) सबसे पहले उर्दू में निकाला। इसका पहला अंक १९ फरवरी, १८८९ को प्रकाशित हुआ था। एक दिन एक व्यक्ति ने महात्मा मुन्शीराम से ताना कसते हुए कहा—"दयानन्द के इतने कट्टर शिष्य बनते हो पर महर्षि ने तो सारा साहित्य हिन्दी में लिखा है। आपका 'सद्धर्म प्रचारक' उर्दू में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यों निकलता है ?" महात्मा मुन्शीराम के पास इसका कोई उत्तर नहीं था। पर 'कार्यं वा साधयेयम्, शरीरं वा पातयेयम्' के दृढ़ विश्वासी मुन्शीराम जी ने अगले ही दिन पत्र में यह घोषणा कर दी—"'सद्धर्म प्रचारक' अब हिन्दी में ही प्रकाशित होगा।" मित्रों, हितैषियों तथा आत्मीयों सभी ने समझाया कि "हिन्दी में कौन पढ़ेगा ? पंजाब में तो हिन्दी केवल स्त्रियाँ ही पढ़ती हैं। पत्र घाटे में पहले ही चल रहा है। अब यह और घाटा कैसे पूरा करोगे ?" मुन्शीराम जी का उन सबको एक ही उत्तर था—"देश की राष्ट्रभाषा हिन्दी है। आर्य समाज के प्रत्येक सदस्य के लिए हिन्दी का ज्ञान और व्यवहार अनिवार्य बताया गया है। अगर गुजराती होते हुए महर्षि दयानन्द हिन्दी में ग्रन्थ लिख सकते हैं और भाषण दे सकते हैं तो हम उनके अनुयायी क्या तनिक भी त्याग नहीं कर सकते ?" फलत: 'सद्धर्म-प्रचारक' की सामग्री रातों-रात उर्दू से हिन्दी में कर दी गई। अब 'प्रचारक' नियमित रूप से हिन्दी में निकलने लगा। वस्तुत: पंजाब में उस समय हिन्दी का यह सबसे पहला और एक-मात्र हिन्दी साप्ताहिक पत्र था।

इसके बाद तो महात्मा मुन्शीराम में हिन्दी के प्रति इतनी अनन्य निष्ठा जगी कि उन्होंने 'गुरुकुल काँगड़ी' की स्थापना करके उसके माध्यम से राष्ट्रीयता, राष्ट्र-भाषा और वैदिक साहित्य के उन्नयन में उल्लेखनीय कार्य किया; और एक दिन वह भी आया जब वे अपनी इस हिन्दी-सेवा के कारण 'अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन' के भागलपुर-अधिवेशन के अध्यक्ष मनोनीत हुए। उन्होंने गुरुकुल काँगड़ी के द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम से उच्च-से-उच्च वैज्ञानिक शिक्षा देने का संकल्प भी पूर्ण किया। मेरी तो ऐसी मान्यता है कि यदि महात्मा मुंशीराम गुरुकुल काँगड़ी की स्थापना न करते तो 'हिन्दी पत्रकारिता' का जो रूप हम आज देख रहे हैं, वैसा कदापि न होता। गुरुकुल काँगड़ी से शिक्षा ग्रहण करके निकले हुए अनेक स्नातकों ने हिन्दी-पत्रकारिता को विकसित करके उसका पथ प्रशस्त करने में प्रशंसनीय एवं अभिनन्दनीय योगदान दिया है। महात्मा मुन्शीराम जी ने न केवल स्वयं 'आदर्श पत्रकार' के रूप में अपने गौरव को प्रतिष्ठित किया, प्रत्युत अपने दोनों पुत्रों (हरिश्चन्द्र वेदालंकार और इन्द्र विद्यावाचस्पति) को भी इस कंटका-कीर्ण पथ का पथिक बनने की प्रेरणा दी और जब वे 'महात्मा मुन्शीराम' से 'स्वामी श्रद्धानन्द' बन गए और पूर्णत: गुरुकुल के कार्यों में ही व्यस्त हो गए तो 'सद्धर्म प्रचारक' का सम्पादन अनेक वर्षों तक इन्द्र जी ने ही किया था। 'सद्धर्म-प्रचारक' के सम्पादन का भार अपने पुत्र को सौंपकर उन्होंने गुरुकुल काँगड़ी से 'श्रद्धा' नाम से एक साप्ताहिक भी प्रकाशित करना प्रारम्भ किया था। हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित देखने की भावना उनमें इतनी प्रबल हो गई थी कि उन्होंने अपनी आत्म-कथा भी 'कल्याण मार्ग का पथिक' नाम से हिन्दी में ही लिखी। सन् १९११ के दिल्ली-दरबार के समय स्वामी श्रद्धानन्द ने 'सद्धर्म-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचारक' को लगभग एक मास तक 'गुरुकुल काँगड़ी' से ही दैनिक रूप में निकाला था। साप्ताहिक की पत्रकारिता से दैनिक की पत्रकारिता की उन्होंने अपने पुत्र प्रो० इन्द्र को जो दीक्षा दी थी, वह इस प्रकार फलवती हुई कि उनकी प्रेरणा पर न केवल उन्होंने दिल्ली से दैनिक 'विजय' प्रकाशित किया, बल्कि कालान्तर में 'अर्जुन', 'वीर अर्जुन', 'नवराष्ट्र' और 'जनसत्ता' दैनिक के सम्पादक के रूप में 'हिन्दी पत्रकारिता' की जो नींव डाली उसी पर आज उसका यह भव्य भवन खड़ा है।

स्वामी जी के द्वारा संस्थापित 'गुरुकुल काँगड़ी' के स्नातकों ने इन पत्रों में पत्रकारिता की विधिवत् दीक्षा लेकर देश के विभिन्न क्षेत्रों में फैलकर जो हिन्दी पत्र निकाले बाद में वही राष्ट्रभाषा के प्रचार और प्रसार का सशक्त माध्यम बने। यहाँ तक कि सन् १९१९ में अमृतसर में हुए कांग्रेस के अधिवेशन का जब स्वामीजी को स्वागताध्यक्ष बनाया गया तब कांग्रेस के मंच से कदाचित् सबसे पहले हिन्दी में भाषण देने वाले वे ही अकेले व्यक्ति थे। उससे पूर्व कांग्रेस की सारी कार्यवाही अँग्रेज़ी में ही हुआ करती थी। उनका स्वागत-भाषण भी बिलकुल निराला था। उसमें उन्होंने देश के भविष्य की कल्पना इस प्रकार की थी—"यदि जाति को स्वतंत्र देखना चाहते हो तो स्वयं सदाचार की मूर्ति बनकर अपनी सन्तान के सदाचार की बुनियाद रख दो। जब सदाचारी ब्रह्मचारी शिक्षक हों और शिक्षा-पद्धति राष्ट्रीय हो तभी जाति की आवश्यकताओं को पूरा करने वाले नौजवान मिलेंगे। नहीं तो इसी तरह आपकी सन्तान विदेशी विचारों और विदेशी सभ्यता की गुलाम बनी रहेगी।···मैं अपने सब भाई-बहनों से एक याचना करूँगा। इस पवित्र जातीय मन्दिर में बैठे हुए अपने हृदयों को मातृभूमि के प्रेम-जल से शुद्ध करके प्रतिज्ञा करो और मुझे आशीर्वाद दो कि परमेश्वर की कृपा से मेरा यह स्वप्न पूरा हो।"

बम्बई में सन् १८७५ में आर्यसमाज की स्थापना के बाद वहाँ की प्रतिनिधि सभा की ओर से 'आर्य प्रकाश' नाम से एक मासिक का प्रकाशन सन् १८८६ में प्रारम्भ हुआ था। उन्हीं दिनों लाहौर से गुरुदत्त विद्यार्थी और आर्य पथिक लेखराम के सम्पादन में 'वैदिक मैगजीन' (१८८१) और 'धर्मोपदेश' (१८८२) नामक मासिक प्रकाशित हुए थे। इनमें से पहला पत्र अँग्रेजी में निकलता था। यह समय ऐसा था जब सब ओर से हिन्दी पत्रों के प्रकाशन में प्रगति होने लगी थी। प्रख्यात तार्किक विद्वान् पंडित कृपाराम शर्मा (बाद में स्वामी दर्शनानन्द) ने काशी में सन् १८८२ में 'तिमिर नाशक प्रेस' की स्थापना करके उसकी ओर से 'तिमिर नाशक' पत्र का सम्पादन-प्रकाशन किया था। यह पत्र अन्य मतावलम्बियों के लिए बम का गोला था। सन् १८८० में जहाँ अजमेर से 'परोपकारिणी सभा' ने 'परोपकारी' (१९०१) तथा 'अनाथ रक्षक' (१९०२) का प्रकाशन प्रारम्भ किया वहाँ राजस्थान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और मालवा की 'आर्य प्रतिनिधि सभा' की ओर से 'आर्य मार्तण्ड' नामक मासिक १८९५ में अजमेर से प्रकाशित हुआ। इनमें से पहले दोनों पत्रों के सम्पादक पण्डित पद्मसिंह शर्मा थे और दूसरा श्री रामसहाय आर्योपदेशक (बाद में ओम्भक्त वान-प्रस्थ) के सम्पादकत्व में निकला था। आजकल 'आर्य मार्तण्ड' का प्रकाशन बन्द है और 'परोपकारी' का सम्पादन डॉ० धर्मवीर बड़ी ही दक्षता से कर रहे हैं। पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ की 'दयानन्द पीठ' का अध्यक्ष होने से पूर्व इसका सम्पादन डॉ० भवानीलाल भारतीय किया करते थे। १८९० में इटावा से महर्षि दयानन्द के अनन्य अनुयायी पं० भीमसेन शर्मा के सम्पादकत्व में 'आर्य सिद्धान्त' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ था। यही भीमसेन शर्मा बाद में सनातनधर्मी हो गए और 'ब्राह्मण सर्वस्व' नामक मासिक निकालने लगे थे। सन् १८८७ में कलकत्ता से 'आर्यावर्त' नामक जो साप्ताहिक पत्र प्रकाशित हुआ था वह १८९७ में राँची चला गया था और बाद में १८९८ में वह दानापुर (पटना) से प्रकाशित होने लगा था। उन दिनों इसके सम्पादक रुद्रदत्त सम्पादकाचार्य थे। कुछ दिन तक यह पत्र भागल-पुर से भी निकला था। सन् १८९१ में इसके सम्पादक श्री क्षेत्रपाल शर्मा थे, जो बाद में 'सुख संचारक कम्पनी मथुरा' के अधिपति बने थे।

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का साप्ताहिक पत्र 'आर्यमित्र' सन् १८८८ में सबसे पहले मुरादाबाद से निकला था। बाद में अनेक वर्षों तक यह आगरा से प्रकाशित होता रहा और आजकल लखनऊ से निकल रहा है। इसके आदिसम्पादक सम्पादकाचार्य पंडित रुद्रदत्त शर्मा थे। 'आर्यमित्र' में आने से पूर्व उन्होंने 'आर्य विनय' (१८८४) नामक पाक्षिक पत्र का सम्पादन भी किया था। इस पत्र का सम्पादन कुछ समय तक पंडित बदरीदत्त जोशी ने भी किया था। यह पत्र पहले आर्य समाज मुरादाबाद की ओर से प्रकाशित होता था और बाद में वह 'आर्यमित्र' के रूप में बदलकर आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का साप्ताहिक मुखपत्र हो गया। इसका नामकरण पंडित बदरीदत्त जोशी ने किया था। यह सौभाग्य की बात है कि 'आर्यमित्र' को ऐसे कितने ही कुशल सम्पादक मिले जिनकी सम्पादन-पटुता और लेखन-शैली आज भी हिन्दी-साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। प्रख्यात वैदिक विद्वान् श्री रामदत्त शुक्ल के पिता श्री नन्दकुमार देव शर्मा सन् १९०८ में इसके सम्पादक थे। इस प्रसंग में यह भी स्मरणीय है कि जिन दिनों पंडित हरिशंकर शर्मा इसका सम्पादन करते थे उन दिनों 'आर्यमित्र' की गणना उच्चकोटि के साप्ताहिक पत्रों में की जाती थी। 'आर्यमित्र' ही आर्य जगत् का ऐसा अकेला पत्र है जिसके सम्पादन में अनेक ऐसे सज्जनों ने सहयोग दिया है जो हिन्दी-साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। प्रख्यात लेखक श्री लक्ष्मीधर वाजपेयी ने कई वर्ष तक 'सर्वानन्द' नाम से इसका सम्पादन किया था। 'विशाल भारत' और 'मधुकर' के भूतपूर्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख्यातिप्राप्त सम्पादक श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने भी कलकत्ता जाने से पूर्व उसे कृतार्थ किया था। सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ० सत्येन्द्र और कहानीकार श्री रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र' ने जहाँ इसके सम्पादन में सहयोग दिया था वहाँ इन पंक्तियों का लेखक भी १९३९ में इसका सहकारी सम्पादक रहा था। उन दिनों श्री बाबूराम एम० ए० इसके सम्पादक थे और हैदराबाद में छिड़े 'आर्य सत्याग्रह' के कारण यह अर्धसाप्ताहिक हो गया था। 'कल्पना' हैदराबाद के सम्पादक-मण्डल के एक सदस्य और हैदराबाद से प्रकाशित होने वाले 'संकल्य' नामक मासिक पत्र के आदिसम्पादक मधुसूदन चतुर्वेदी ने भी काफी समय तक इसका सम्पादन किया था। संस्कृत के विद्वान् डॉ० धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री तर्कशिरोमणि भी अपने जीवन के किशोर-काल में कुछ दिन तक इसके सम्पादक रहे थे। चतुर्वेदभाष्यकार श्री जयदेव शर्मा विद्यालंकार ने 'आर्यमित्र' का सम्पादन उन दिनों किया था, जब इसका प्रकाशन 'आर्य साहित्य मंडल लिमिटेड अजमेर' के श्री मथुराप्रसाद शिवहरे के निर्देशन में आगरा से होता था।

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् द्वारा पुरस्कृत श्री ऋषिदेव विद्यालंकार उन दिनों इसके सम्पादक थे, जब आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का मुख्य कार्यालय लखनऊ में बन जाने के कारण वह आगरा की बजाय वहाँ से प्रकाशित होने लगा था। गुरुकुल काँगड़ी के प्राचीन स्नातक श्री धर्मपाल विद्यालंकार भी कुछ दिन तक इसके सम्पादक रहे थे। महाविद्यालय ज्वालापुर के स्नातक श्री गोपालदत्त जोशी ने भी उन दिनों लगभग पाँच वर्ष तक इसका सम्पादन किया था, जब वे लखनऊ में रहते थे। गुरुकुल ज्वालापुर के दूसरे स्नातक श्री सच्चिदानन्द शास्त्री ने भी थोड़े दिन इसके सम्पादन में सहयोग दिया था। समय-समय पर कई बार गुरुकुल वृन्दावन के स्नातक श्री उमेशचन्द्र आयुर्वेद शिरोमणि ने भी इसका सम्पादन किया था और आजकल आचार्य रमेशचन्द्र एम० ए० इसके सम्पादक हैं। श्री हरिशंकर शर्मा के सम्पादन के दिनों में इसकी साज-सज्जा तथा सामग्री की प्रशंसा उपन्यास-सम्राट् मुन्शी प्रेमचन्द ने भी की थी। 'आर्यमित्र' ही हिन्दी में अकेला ऐसा पत्र है जो अपने जीवन के प्रारम्भ से आज तक अत्यन्त सफलतापूर्वक प्रकाशित हो रहा है। दो बार यह बीच में दैनिक रूप में भी प्रकाशित हुआ था। एक बार श्री हरिशंकर शर्मा सम्पादन करते थे और दूसरी बार लगभग आठ मास तक श्री भारतेन्द्रनाथ साहित्यालंकार ने भी इसके सम्पादन में अपना सहयोग दिया था। 'आर्यमित्र' ने अपनी शक्ति, सामर्थ्य और सीमाओं के अनुरूप आर्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन एवं प्रचार करने के अतिरिक्त आर्य जगत् में साहित्यिक जागरण लाने की दिशा में भी पर्याप्त सहयोग दिया था। हिन्दी के लेखकों में बहुत-से ऐसे हैं जो अपने साहित्यिक विकास के प्रारम्भिक काल में 'आर्यमित्र' में ही लिखा करते थे। हिन्दी की सुप्रसिद्ध कहानी-लेखिका श्रीमती चन्द्रकिरण सोनरेक्सा की पहली कहानी भी उस समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आर्यमित्र' में प्रकाशित हुई थी जब कि मैं सन् १९३९ में उसमें कार्य करता था। श्रीमती सोनरेक्सा को उनकी 'आदमखोर' नामक कृति पर अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का 'सेकसरिया पुरस्कार' प्राप्त हो चुका है। इसके अतिरिक्त गुरुकुल काँगड़ी, महाविद्यालय ज्वालापुर और गुरुकुल वृन्दावन के अनेक स्नातक भी 'आर्यमित्र' के माध्यम से ही आगे बढ़े थे। डॉ० मुन्शीराम शर्मा 'सोम' और डॉ० सूर्यदेव शर्मा किसी समय 'आर्यमित्र' के विशिष्ट कवियों में थे।

'आर्यमित्र' के आदिसम्पादक पंडित रुद्रदत्त शर्मा सम्पादकाचार्य हिन्दी के उन स्वनामधन्य पत्रकारों में थे कि हिन्दी का कोई ऐसा नामी पत्र नहीं, जिसका सम्पादन उन्होंने न किया हो। 'आर्यमित्र' के अतिरिक्त उन्होंने 'आर्यावर्त' और 'भारत मित्र' का भी सम्पादन किया था। अपने पत्रकार-जीवन का प्रारम्भ उन्होंने आगरा के 'प्रेमपत्र' नामक पाक्षिक के सम्पादन से किया था और जिन दिनों वे 'भारत मित्र' (कलकत्ता) में थे उन दिनों उसके २२ जून, १८७९ के अंक में एक चिट्ठी इस आशय की भी छपी थी कि स्वामी दयानन्द से वेद पढ़ने के लिए कई-एक अमरीकन पादरी बम्बई आये हुए हैं। स्वामी जी के लेख भी उन दिनों यदा-कदा 'भारत मित्र' में प्रकाशित हुआ करते थे और ३० अक्तूबर, सन् १८८३ को जब स्वामीजी का देहावसान हुआ था तब उसके २ नवम्बर के अंक में यह समाचार भी प्रकाशित हुआ था। महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के देहावसान के उपरान्त सन् १८९५ में बरेली से 'आर्य पत्र' (मासिक) और सन् १८९६ में खीरी (उत्तर प्रदेश) से 'आर्य भास्कर' नामक पत्र भी प्रकाशित हुए थे। इनमें से पहले पत्र के सम्पादक श्री पूरणमल थे।

जिन दिनों महर्षि स्वामी दयानन्द देश में सामाजिक जागरण का अपना अभूतपूर्व अभियान चला रहे थे उन दिनों जिन अनेक राज-परिवारों में उनके क्रान्तिकारी विचारों का अमर आलोक पहुँचा था उनमें कालाकाँकर (उत्तर प्रदेश) का परिवार अन्यतम था। वहाँ के राजा रामपालसिंह ने लन्दन से सन् १८८३ में जो हिन्दी पत्र 'हिन्दोस्थान' नाम से निकाला था उसे उन्होंने भारत में आकर सन् १८८५ में दैनिक रूप दे दिया और उसके प्रथम सम्पादक का दायित्व महामना मदनमोहन मालवीय को सौंपा। जब उन्होंने कलकत्ता-कांग्रेस में मालवीय जी का धारावाहिक भाषण सुना तो वे उन पर मुग्ध हो गए और उन्होंने मालवीय जी को वहाँ पर ही 'हिन्दोस्थान' का सम्पादन-भार सँभालने को सहमत कर लिया था। बाद में 'हिन्दोस्थान' के सम्पादन में श्री बालमुकुन्द गुप्त और पं० प्रतापनारायण मिश्र ने भी सहयोग दिया था। राजा रामपालसिंह के पौत्र कुँवर सुरेशसिंह ने भी १९३८-३९ में कालाकाँकर से 'कुमार' नामक युवकोपयोगी मासिक पत्र प्रकाशित किया था। उनकी प्रेरणा से ही उन्हीं दिनों श्री सुमित्रानन्दन पन्त के सम्पादन में 'रूपाभ' नामक एक साहित्यिक मासिक पत्र भी प्रकाशित हुआ था। अमेठी राज्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(उत्तर प्रदेश) में भी आर्यसमाज का काफी प्रचार था। वहाँ के राजकुमार रणंजयसिंह द्वारा संचालित 'मनस्वी' नामक मासिक पत्र का मैंने सन् १९३९-४० में आठ मास तक सम्पादन किया था। काशी के दैनिक 'आज' और 'ज्ञानमंडल लिमिटेड' के संचालक श्री शिवप्रसाद गुप्त भी आर्यसमाज के सुधारवादी आन्दोलन से पर्याप्त प्रभावित थे और कदाचित् उससे प्रेरित होकर ही उन्होंने बाद में 'आज' दैनिक का प्रकाशन किया था। इसका ज्वलन्त प्रमाण हमें इस बात से मिलता है कि जब वे विदेश यात्रा पर जा रहे थे तब अपने निजी सचिव के रूप में वे श्री हरिशंकर शर्मा (सुपुत्र कविवर नाथूराम शंकर शर्मा) को अपने साथ ले जाना चाहते थे।

इस शताब्दी के प्रारम्भ में एक ओर जहाँ सन् १९०० में आर्य प्रतिनिधि सभा मध्य प्रदेश की ओर से 'आर्य सेवक' नामक पाक्षिक श्री गणेशप्रसाद शर्मा के सम्पादन में प्रकाशित हुआ था, वहाँ आर्यसमाज कलकत्ता की ओर से 'आर्यावर्त' (१९२२) का प्रकाशन हुआ था। इस शती के तीसरे दशक में जहाँ बंगाल-बिहार की आर्य प्रतिनिधि सभा ने सन् १९२४ में श्री जयदेव शर्मा के सम्पादकत्व में 'आर्य जीवन' नामक पत्र का प्रकाशन किया था वहीं आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से भी सन् १९१४ में 'आर्य' नामक मासिक पत्र प्रकाशित हुआ था। इस पत्र के आदिसम्पादक श्री चमूपति एम० ए० थे। बाद में लगभग ६ वर्ष तक श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार ने इसका सम्पादन किया और फिर श्री प्रियव्रत वेद वाचस्पति भी इसके सम्पादक रहे थे। बहुत दिन बाद न जाने किस कारण से प्रतिनिधि सभा की ओर से 'आर्य' की बजाय 'आर्योदय' प्रकाशित होने लगा और इसके सम्पादक कई वर्ष तक श्री भारतेन्द्रनाथ साहित्यालंकार रहे थे। जब प्रतिनिधि सभा का विभाजन हरियाणा और पंजाब के रूप में अलग-अलग हो गया तब एक की ओर से 'आर्य मर्यादा' प्रकाशित होने लगा और दूसरी ने 'आर्य ज्योति' का प्रकाशन प्रारंभ किया। 'आर्य मर्यादा' का सम्पादन श्री जगदेवसिंह 'सिद्धान्ती' किया करते थे और 'आर्य ज्योति' के सम्पादक श्री हरिप्रकाश आयुर्वेदालंकार रहे थे। श्री सिद्धान्ती जी के सम्पादन-काल में 'आर्य मर्यादा' में पर्याप्त सुपुष्ट सामग्री समाविष्ट रहती थी। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि श्री सिद्धान्ती जी ने श्री रघुवीरसिंह शास्त्री के सहयोग से 'सम्राट्' नामक एक साप्ताहिक पत्र भी स्वतन्त्र रूप से दिल्ली से प्रकाशित किया था, जो कई वर्ष तक आर्य जगत् की प्रशंसनीय सेवा करता रहा। आजकल यह पत्र मासिक रूप में श्री चन्द्रमोहन शास्त्री के सम्पादन में अच्छी साज-सज्जा में प्रकाशित हो रहा है। श्री भारतेन्द्रनाथ ने 'आर्योदय' से पृथक् होकर स्वतन्त्र रूप से 'दयानन्द संस्थान' नामक संस्था की स्थापना करके उसकी ओर से 'जनज्ञान' नामक जो मासिक प्रारम्भ किया था उसका सम्पादन श्री भारतेन्द्रनाथ जी की जीवन-संगिनी श्रीमती राकेश रानी कर रही हैं। यदि यहाँ पर 'आर्य सभा' के साप्ताहिक पत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'राजधर्म' का उल्लेख न किया गया तो यह विवरण अधूरा ही रह जायगा। श्री अग्निवेश द्वारा सम्पादित इस पत्र में जहाँ सांस्कृतिक सामग्री प्रचुर परिमाण में रहती थी वहाँ राजनीतिक चेतना जाग्रत करने की दिशा में भी इस पत्र ने प्रशंसनीय भूमिका निबाही थी। इस सन्दर्भ में बिहार प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा के पत्र 'आर्य संकल्प' तथा मध्य दक्षिण आर्य प्रतिनिधि सभा के 'आर्य जीवन' के नाम स्मरणीय हैं। आर्यसमाज फोर्ट बम्बई की ओर से प्रकाशित 'आर्य विजय' (मासिक) भी पिछले २० वर्ष से नियमित रूप से निकल रहा है। गुरुकुल काँगड़ी के प्राचीन स्नातक श्री विनायकराव विद्यालंकार ने १९४६ में हैदराबाद (दक्षिण) से 'आर्यभानु' नामक जो पत्र प्रकाशित किया था वह उस राज्य का पहला हिंदी पत्र था। इस पत्र के सहायक सम्पादक श्री कृष्णदत्त थे। इस सन्दर्भ में सन् १९३८-३९ के आर्य सत्याग्रह के अवसर पर श्री हरिश्चन्द्र विद्यार्थी के सम्पादन में शोलापुर से प्रकाशित 'दिग्विजय' का नाम भी उल्लेख्य है।

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के पत्र 'भारतोदय' (१९०९) का नाम हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता के इतिहास में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। उसके सम्पादन के दिनों में समालोचक-मूर्धन्य पण्डित पद्मसिंह शर्मा ने अनेक साहित्यिक समस्याओं और आन्दोलनों पर व्यापक रूप से प्रकाश डाला था। उन दिनों का हिन्दी का ऐसा कोई प्रमुख साहित्यकार या कवि नहीं था, जो इसमें न लिखता हो। यहाँ पर यह उल्लेख कर देना भी अप्रासंगिक न होगा कि भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद का 'समाज-संशोधन' शीर्षक बिलकुल पहला लेख 'भारतोदय' के सितम्बर, १९२० के अंक में 'राजेन्द्रप्रसाद पाण्डेय' के नाम से प्रकाशित हुआ था। उस अवसर पर उन्होंने पण्डित पद्मसिंह शर्मा को जो पत्र लिखा था उससे उनकी शालीनता और विनम्रता का परिचय मिलता है। उन्होंने लिखा था—" 'सरस्वती' में जो लेख देने की आज्ञा की गयी सो अनुल्लंघनीय न होने पर भी लेखक के असामर्थ्योपहत होने से विलम्बसाध्य होगी।···प्रथम तो ऐसा विषय नहीं सूझता जिस पर हिन्दी-रसिकों का अनुराग हो। द्वितीयत: हिन्दी-लेख में भी सामर्थ्य नहीं। आप कुछ विषय-निर्देश करें तो कुछ यत्न हो। 'समाज-संशोधन' वाला लेख आपको इतना पसन्द होगा, यह मुझे कभी धारणा नही थी, यदि उधर 'भारतोदय' कृतार्थ हुआ तो इधर मैं भी कृतार्थ हुआ।" राजेन्द्र बाबू का वह लेख स्त्रियों की शिक्षा और सामाजिक स्थिति के सम्बन्ध में था। पण्डित पद्मसिंह शर्मा ने जहाँ पत्रकारिता के क्षेत्र में नये मानदण्ड स्थापित किये, वहाँ 'भारतोदय' के माध्यम से उन्होंने जो अनेक लेखक बनाये थे राजेन्द्र बाबू भी उन्हीं में से एक थे। शर्मा जी द्वारा दिये गए इस प्रोत्साहन का उल्लेख उन्होंने सार्वजनिक रूप से सन् १९५९ में उस समय किया था जब वे गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के 'स्वर्ण जयन्ती समारोह' में सम्मिलित होने वहाँ गये थे। उन्होंने तब न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल पद्मसिंह शर्मा के प्रति अपना सम्मान प्रदर्शित किया था, अपितु 'गुरुकुल' को भी अपनी 'मातृ संस्था' मानते हुए यह उद्‌गार प्रकट किये थे, "इस संस्था के अनन्य सूत्रधार पण्डित पद्मसिंह शर्मा ने ही मेरा हिन्दी का सबसे पहला लेख यहाँ के मासिक मुखपत्र 'भारतोदय' में प्रकाशित किया था, अतः इस नाते यह शिक्षण-संस्था मेरी भी है और मैं इस भूमि में आकर अपने को धन्य अनुभव कर रहा हूँ।" कविताकामिनीकान्त नाथूराम शंकर शर्मा-जैसे उत्कृष्ट कवि को हिन्दी-जगत् के समक्ष प्रस्तुत करना पद्मसिंह शर्मा-जैसे गुण-ग्राहक सम्पादक का ही काम था। आचार्य पद्मसिंह शर्मा के सम्पादन में 'भारतोदय' इतना सुन्दर निकलता था कि सम्पादकाचार्य अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी ने अपने 'समाचार पत्रों का इतिहास' नामक ग्रन्थ में यह लिखकर उसकी आशंसा की थी, "मासिक पत्रों में भाषा और विचारों की दृष्टि से ज्वालापुर के गुरुकुल महाविद्यालय का 'भारतोदय' सर्वश्रेष्ठ कहा जा सकता है।" पण्डित पद्मसिंह शर्मा के बाद आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ ने भी इसका सम्पादन किया था। उनके समय में भी वे इसके संयुक्त-सम्पादक रहे थे। यहाँ यह विशेष रूप से उल्लेखनीय तथ्य है कि सुप्रसिद्ध आर्य कवि श्री नाथूराम-शंकर शर्मा के सुपुत्र श्री हरिशंकर शर्मा ने भी 'भारतोदय' का कुछ दिन तक सम्पादन किया था। महाविद्यालय के स्नातक श्री प्रेमचन्द्र शास्त्री काव्यतीर्थ ने उन दिनों इसका सम्पादन किया था जब यह मुरादाबाद के 'शर्मा मैशीन प्रिंटिंग प्रेस' में मुद्रित होता था। इसके बाद यह सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् श्री भीमसेन शर्मा (आगरा वाले) के सुपुत्र डॉ० हरिदत्त शास्त्री के सम्पादन में संस्कृत और हिन्दी में प्रकाशित होना प्रारम्भ हुआ था, जो आजकल केवल संस्कृत में निकल रहा है।

इस प्रकार जहाँ आर्य समाज के लिए कार्य-क्षेत्र तैयार करने का पुनीत कार्य यह सभी पत्र कर रहे थे वहाँ गम्भीर सैद्धान्तिक लेखों के द्वारा वैदिक धर्म के महत्त्व को बढ़ाने और वेदों के अनुशीलन को निरन्तर गतिशील बनाने के लिए मेरठ के सामवेद-भाष्यकार श्री तुलसीराम स्वामी का पत्र 'वेदप्रकाश' (मासिक) अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य कर रहा था। पहले यह साप्ताहिक रूप में कानपुर से सन् १८८४ में श्री राधाकृष्ण गुप्त के सम्पादन में प्रकाशित होता था। मेरठ के 'वेदप्रकाश' के कुल १८० अंक प्रकाशित हुए थे, जिनकी पृष्ठ संख्या ३८७७ है। 'वेदप्रकाश' में यज्ञ, शास्त्रार्थ, मृतक दाह, मृतक श्राद्ध, वेदार्थ, विधवा-विवाह, क्षमा, दया, प्रायश्चित्त, खान-पान, छुआछूत, कर्मकाण्ड, उपासना, भूत-प्रेत, पुराण, तन्त्र तथा भागवत-खण्डन आदि लगभग २०० विषयों पर शोध-सामग्री से परिपूर्ण अत्यन्त प्रामाणिक और गम्भीर लेख प्रकाशित हुए थे। ये लेख आर्य-सिद्धान्त-सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करने के लिए बड़े ही उपयोगी हैं। विरोधियों के प्रश्नों के उत्तर देने तथा सम्पादकीय टिप्पणियों द्वारा आर्य समाज को उपयोगी दिशा-निर्देश देने आदि में इसके सम्पादक श्री तुलसीराम स्वामी बड़ी रुचि लेते थे। आर्य समाज में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यिक चेतना उत्पन्न करना जहाँ 'भारतोदय' का लक्ष्य था वहाँ 'वेदप्रकाश' का उद्देश्य उसमें बौद्धिक तथा वैदिक भावना बढ़ाना था। हर्ष का विषय है कि आजकल भी 'वेदप्रकाश' प्रख्यात आर्य प्रकाशक 'गोविन्दराम हासानन्द' दिल्ली की ओर से प्रकाशित हो रहा है और इसके आदरी सम्पादक श्री स्वामी जगदीश्वरानन्द (जगदीशचन्द्र विद्यार्थी) हैं। इस प्रसंग में गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के वर्तमान कुलपति श्री बलभद्रकुमार हूजा के पिता श्री गोवर्धन बी० ए० द्वारा सम्पादित और सन् १९१५ में दिल्ली से प्रकाशित 'प्रह्लाद' साप्ताहिक का नाम भी विशेष महत्त्व रखता है।

प्रख्यात आर्य पत्रकार श्री विश्वम्भरप्रसाद शर्मा के सम्पादकत्व में 'विकास' नामक जो साप्ताहिक पत्र सहारनपुर से प्रकाशित हुआ था उससे भी विशेषतः पश्चिमोत्तर भारत और सामान्यतः समस्त देश में 'आर्य विचार-धारा' के प्रचार एवं प्रसार में उल्लेखनीय सहयोग मिला था। अजमेर में सन् १९३३ में सम्पन्न हुई 'दयानन्द-निर्वाण अर्ध शताब्दी' के अवसर पर प्रकाशित उसका 'आर्यसमाज अंक' आज भी अपनी विशिष्टता के लिए याद किया जाता है। इस विशेषांक का सम्पादन राज्यरत्न आत्माराम अमृतसरी ने किया था। श्री विश्वम्भरप्रसाद शर्मा बाद में नागपुर चले गए और उन्होंने मध्यप्रदेश को अपनी कर्मभूमि बनाया। कई वर्ष तक वे मध्यप्रदेश की आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री रहे और उसकी ओर से प्रकाशित होने वाले 'आर्य सेवक' का सफल सम्पादन भी किया था। इन्होंने वहाँ से स्वतन्त्र रूप से 'आलोक' नामक एक साप्ताहिक पत्र भी प्रकाशित किया था और आजकल 'भारत गो सेवक समाज' के पत्र 'गोधन' का सम्पादन कर रहे हैं। कई वर्ष तक शर्मा जी ने 'माहेश्वरी' साप्ताहिक और 'आर्यकुमार' का भी सम्पादन किया था। 'आर्यकुमार' का प्रारम्भ उस समय हुआ था जबकि आर्यसमाज के पुराने कर्मठ नेता डॉ० केशवदेव शास्त्री ने अपने घनघोर प्रयत्न से सन् १९०९ में 'आर्यकुमार परिषद्' की स्थापना करके उसका पहला अधिवेशन सहारनपुर में किया था। इस अधिवेशन की अध्यक्षता ला० लाजपतराय ने की थी। डॉ० केशवदेव शास्त्री ही उसके आदिसम्पादक थे। पहले यह पत्र साप्ताहिक रूप में प्रकाशित होता था, कुछ दिन तक द्वैमासिक भी रहा था, और बाद में मासिक हो गया था। मेरठ के श्री विश्वम्भरसहाय 'प्रेमी' और दिल्ली के डॉक्टर युद्धवीरसिंह ने भी कई वर्ष तक 'आर्यकुमार' का सम्पादन किया था। सन् १९१९ में भी फतहपुर (उत्तर प्रदेश) से 'आर्यकुमार' नामक एक और पत्र प्रकाशित हुआ था और इसका सम्पादन श्री मथुराप्रसाद करते थे।

आर्यसमाज की पत्रकारिता के इतिहास में डॉक्टर केशवदेव शास्त्री का नाम विशेष महत्त्व रखता है। उन्होंने आर्य युवकों में वैदिक धर्म के प्रति आस्था जगाकर उनका नैतिक चरित्र उठाने की दृष्टि से सन् १९१० में 'नवजीवन' नामक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक और मासिक पत्र का सम्पादन-प्रकाशन काशी से किया था। वास्तव में शास्त्री जी ने इसका उपयोग धर्मपाल बी० ए० और सुनीति देवी (गुजरानवाला गुरुकुल के हैडमास्टर श्री सुखदयाल एम० ए० की बहन) के विवाह-सम्बन्ध के प्रचार-साफल्य और तत्सम्बन्धी आन्दोलन में बढ़-चढ़कर किया था। इस विवाह-समारोह में देश-विदेश के लगभग ५०० से अधिक आर्य-परिवार सम्मिलित हुए थे। डॉ० केशवदेव शास्त्री के सहसा अमरीका चले जाने के कारण जब इसका प्रकाशन स्टार प्रेस प्रयाग की ओर से होने लगा था तब इसका सम्पादन श्री चन्द्रशेखर वाजपेयी किया करते थे। किन्तु यह उनसे चल नहीं सका और फिर बन्द हो गया। बाद में यह पत्र श्री द्वारकाप्रसाद 'सेवक' के सम्पादन में सन् १९१५ में इन्दौर से बड़ी कई वर्ष तक सफलतापूर्वक प्रकाशित हुआ। सेवक जी बड़े ही कर्मठ और अध्यवसायी पत्रकार थे। उन्होंने अजमेर से भी 'वैदिक सन्देश' नामक एक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित किया था। इसमें बड़े क्रान्तिकारी लेख प्रकाशित होते थे। राज्यरत्न मास्टर आत्माराम अमृतसरी के सम्पादन में सन् १९१९ में कोल्हापुर से प्रकाशित 'वैदिक मार्तण्ड' नामक द्विमासिक पत्र भी अपने समय में अत्यन्त उल्लेखनीय था। किसी समय प्रख्यात आर्य नेता श्री गंगाप्रसाद उपाध्याय के सम्पादन में प्रकाशित 'वेदोदय' नामक मासिक पत्र भी इलाहाबाद से बड़े ठाट-बाट से निकला करता था। बाद में उपाध्याय जी के सुयोग्य पुत्र श्री विश्वप्रकाश के निरीक्षण में यह सन् १९३४ तक बराबर प्रकाशित होता रहा और फिर आर्थिक क्षति के कारण इसे स्थगित कर देना पड़ा। इस पत्र में उपाध्याय जी के अतिरिक्त अनेक आर्य विद्वानों के बड़े गम्भीर लेख प्रकाशित हुआ करते थे। दिल्ली के मासिक 'श्रद्धानन्द' और 'शुद्धि समाचार' भी अच्छी सामग्री देते थे। इन दोनों पत्रों का सम्पादन स्वामी चिदानन्द संन्यासी किया करते थे। काशी के 'श्री सनातन धर्म' नामक पत्र के प्रत्युत्तर में प्रख्यात पत्रकार श्री राधामोहन गोकुलजी ने कलकत्ता से सन् १९०९ में 'सत्य सनातन धर्म' नामक पत्र निकाला था। गोकुल जी ने नागपुर के 'प्रणवीर' साप्ताहिक और आगरा के 'वैभव' नामक दैनिक का भी सम्पादन किया था।

उन दिनों आर्य सिद्धान्तों को व्यापक रूप से जनता के समक्ष प्रस्तुत करने की दिशा में जो अनेक आर्य पत्रकार अपना योगदान दे रहे थे उनमें प्रख्यात वैदिक विद्वान् श्री पाद दामोदर सातवलेकर की सेवाएँ सर्वथा अविस्मरणीय हैं। उन्होंने 'स्वाध्याय मंडल औंध (सातारा)' से 'वैदिक धर्म' नामक मासिक पत्र के द्वारा आर्य जगत् की बहुत सेवा की थी। उनके द्वारा किये गए वेद-भाष्यों और आर्य-साहित्य-सम्बन्धी टिप्पणियों को पढ़ने के लिए लोग लालायित रहा करते थे। यह उल्लेखनीय है कि अनेक विघ्न-बाधाओं से जूझते हुए 'वैदिक धर्म' उसी धूम-धाम से निकला तथा सातवलेकर जी के निधन के बाद भी कई वर्ष तक उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुपुत्र श्री वसन्त श्रीपाद सातवलेकर ने उसे निर्विघ्न रूप से प्रकाशित किया। यह खेद का विषय है कि दिसम्बर १९७५ के अंक में अपनी 'विनम्र निवेदन' शीर्षक पंक्तियों में इसके संचालकों ने उसे बन्द करने की घोषणा इस प्रकार की थी—"आगामी वर्ष से 'वैदिक धर्म' का प्रकाशन प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण बन्द करना पड़ रहा है, इसलिए हम दुःखित हैं।" निरन्तर ५६ वर्ष तक प्रकाशित होने के बाद 'आर्यसमाज स्थापना शताब्दी' के दिनों में इसका बन्द होना निश्चय ही एक भारी आघात है। इसी प्रकार की सामग्री से परिपूर्ण अजमेर के 'वेद संस्थान' की पत्रिका 'सविता' भी अपनी उल्लेखनीय विशेषता रखती है। इसका सम्पादन स्वामी विद्यानन्द 'विदेह' के कनिष्ठ पुत्र श्री अभयदेव शर्मा करते हैं और इसका प्रकाशन अब भी नियमित रूप से हो रहा है। रामलाल कपूर ट्रस्ट वाराणसी की ओर से प्रकाशित होने वाली 'वेद वाणी' नामक पत्रिका का भी अपना उल्लेखनीय स्थान रहा है। इसका सम्पादन पहले श्री ब्रह्मदत्त 'जिज्ञासु' किया करते थे और अब यह पत्रिका श्री युधिष्ठिर मीमांसक के सम्पादन में सोनीपत (हरियाणा) से प्रकाशित होती है, जहाँ पर ट्रस्ट का कार्यालय वाराणसी से स्थानान्तरित हो गया है। श्री गुरुदत्त वैद्य के निरीक्षण में प्रकाशित 'अखिल भारतीय शाश्वत संस्कृति परिषद्' की मासिक पत्रिका 'शाश्वत वाणी' में भी अच्छी सैद्धान्तिक सामग्री रहती है। इसका सम्पादन श्री अशोक कौशिक करते हैं। श्री राजपाल शास्त्री का दिल्ली से प्रकाशित 'मधुर लोक' और श्री ईश्वरीप्रसाद 'प्रेम' का 'तपोभूमि' भी अच्छे मासिक पत्र हैं।

इन पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त मेरे सम्पादन में सन् १९३७-३८ में सहारनपुर से प्रकाशित होने वाला साप्ताहिक 'आर्य' भी अपनी अल्पकालीन जीवन-यात्रा में आर्य जगत् में पर्याप्त समादृत हुआ था। इसके संचालक और आदि-सम्पादक श्री शीतलप्रसाद विद्यार्थी थे, जिन्होंने सन् १९२४ में श्री प्रियरत्न आर्ष (बाद में स्वामी ब्रह्ममुनि) के सहयोग से 'शान्ति' नामक मासिक पत्रिका भी प्रकाशित की थी। इस पत्रिका में वैदिक वाङ्मय और आर्यसमाज से सम्बन्धित प्रचुर प्रेरक सामग्री रहा करती थी। अजमेर से सन् १९३८-३९ में श्री दत्तात्रेय बाब्ले के सम्पादन में प्रकाशित 'अजय' (मासिक) और 'विजय' (साप्ताहिक) का भी आर्यजगत् में अत्यन्त उल्लेखनीय स्थान रहा था। ऐसी ही सामग्री से परिपूर्ण 'आर्य सन्देश' नामक एक साप्ताहिक पत्र आगरा से स्वामी परमानन्द के संरक्षण में सन् १९३९ में प्रकाशित हुआ था, जो ६-७ मास ही जीवित रह सका। इसका सम्पादन श्री हरिशंकर शर्मा किया करते थे। मैं भी इस पत्र में सहकारी सम्पादक रहा था। वास्तव में पं० हरिशंकर शर्मा के निरीक्षण में इस पत्र से ही मैंने पत्रकारिता की विधिवत् दीक्षा ली थी। गुरुवर पद्मसिंह शर्मा के पवित्र सान्निध्य और आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ के आचार्यत्व में 'पत्रकारिता' की जो वर्णमाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने अपने शिक्षण-काल में गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में सीखी थी उसका अभ्यास सहारनपुर में किया और श्री हरिशंकर शर्मा के पुण्य पुनीत निरीक्षण में मैं वहाँ विधिवत् पत्रकार बना। श्री शर्मा जी ने 'आर्यमित्र' से त्यागपत्र देकर उसका सम्पादन करने से पूर्व 'निराला' और 'प्रभाकर' नामक पत्रों का सम्पादन भी किया था। कुछ दिन तक वे आगरा के गयाप्रसाद एण्ड सन्स प्रकाशक की ओर से संचालित एवं प्रकाशित 'साधना' नामक पत्रिका के सम्पादक भी रहे थे। उन्होंने आगरा से प्रकाशित आध्यात्मिक मासिक 'कर्मयोग' का भी सम्पादन किया था।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली की ओर से डॉ० केशवदेव शास्त्री के सम्पादन में सन् १९२७ में प्रकाशित 'सार्वदेशिक' मासिक हिन्दी के उन पत्रों में था, जिसके पाठक भारत के अतिरिक्त विदेशों में भी थे। 'सार्वदेशिक' के एक सम्पादक प्रो० सुधाकर एम० ए० को उनकी 'क्रियात्मक मनोविज्ञान' नामक पुस्तक पर अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' भी प्राप्त हुआ था। श्री रघुनाथप्रसाद पाठक 'सार्वदेशिक' के सहकारी संपादक थे। इन दोनों महानुभावों ने इसे पौष्टिक सामग्री और प्रेरक विचारों से परिपूर्ण करके सर्वांगीण बनाया था। अब यह साप्ताहिक रूप में अत्यंत साधारण कलेवर में प्रकाशित होता है। इसी शृंखला में गुरुकुल विश्वविद्यालय काँगड़ी का मुख पत्र 'गुरुकुल पत्रिका' भी है। पहले यह 'गुरुकुल' नाम से साप्ताहिक रूप में प्रकाशित होता था और अब मासिक है तथा संस्कृत में प्रकाशित होता है। कुछ दिन तक यह 'गुरुकुल समाचार' नाम से भी प्रकाशित हुआ था। गुरुकुल काँगड़ी के स्नातकों के संगठन 'स्नातक मण्डल' की ओर से प्रकाशित 'अलंकार' का नाम भी विशेष महत्त्वपूर्ण है। पहले यह पत्र श्री सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार के सम्पादन में सन् १९२४ में निकला था और बाद में यह श्री देवशर्मा विद्यालंकार के सम्पादन में सन् १९३४ में प्रकाशित हुआ था। यहाँ गुरुकुल के ही स्नातक श्री विश्वनाथ-विद्यालंकार और श्री चन्द्रमणि विद्यालंकार के सम्पादन में सन् १९२१ में प्रकाशित 'वैदिक आदर्श' नामक मासिक का नाम भी उल्लेखनीय है। सन् १९५३ में श्री जे० पी० चौधरी काव्यतीर्थ के सम्पादन में प्रकाशित पत्रिका 'पाखण्ड खण्डिनी पताका' का भी अपनी सामग्री के कारण विशिष्ट महत्त्व था।

इन पत्रों के अतिरिक्त और भी बहुत-से ऐसे पत्र हैं, जिन्होंने अपने उद्देश्यों की पूर्ति के साथ-साथ हिन्दी के प्रचार और प्रसार में बहुत योग दिया। ऐसे पत्रों में 'शंकर' (मुरादाबाद), 'दिवाकर' (आगरा), 'वेद पथ' (ज्वालापुर), 'न्याय' (अजमेर), 'संजय' तथा 'दयानन्द सन्देश' (दिल्ली) और 'आर्य संसार' (कलकत्ता) के नाम विशेष परिगणनीय हैं। इनमें से 'शंकर' का सम्पादन पं० बदरीदत्त जोशी और आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ ने, 'दिवाकर' का सम्पादन सर्वश्री मधुसूदन चतुर्वेदी, श्रीशचन्द्र शुक्ल, विष्णुदत्त कपूर और हरिदत्त शास्त्री ने, 'न्याय' का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादन श्री विश्वदेव शर्मा ने, 'संजय' का सम्पादन श्री भद्रसेन गुप्त ने, 'दयानन्द सन्देश' का सम्पादन आचार्य राजेन्द्रनाथ शास्त्री (आजकल सच्चिदानंद योगी) ने और 'आर्य संसार' का सम्पादन श्री रमाकान्त उपाध्याय ने किया था। 'दिवाकर' ने अपने विशेषांकों के कारण किसी समय हिन्दी-जगत् में बड़ी धूम मचाई थी। इसके 'वेदांक' और 'शिक्षांक' अपनी महत्त्वपूर्ण, सुसम्पादित और सुपुष्ट सामग्री के कारण आज भी याद किये जाते हैं। 'वेदांक' का सम्पादन आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ ने किया था। आचार्य जी ने ही 'शंकर' (मुरादाबाद) के 'दयानंद जन्म शताब्दी अंक' का सम्पादन किया था। 'संजय' का 'महाभारत अंक' और 'दयानन्द सन्देश' का 'कर्मवीर अंक' तथा 'असिधारा अंक' सर्वथा उपादेय सामग्री से परिपूर्ण थे। इन दोनों के संपादक गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के स्नातक हैं। हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश) से प्रकाशित होने वाली अस्तंगत 'कल्पना' और 'अजन्ता' के सम्पादक डॉ० आर्येन्द्र शर्मा और वंशीधर विद्यालंकार भी आर्यसमाज की ही विभूति हैं। इनमें से पहले गुरुकुल बदायूँ के स्नातक हैं और दूसरे गुरुकुल काँगड़ी के। अजमेर का साप्ताहिक 'न्याय' श्री विश्वदेव शर्मा के सम्पादन में २ अक्तूबर, १९६६ से दैनिक हो गया है और उसके प्रथम अंक का विमोचन तथा उद्घाटन मैंने ही किया था। 'न्याय' अब भी बड़ी शान से प्रकाशित हो रहा है।

आर्यसमाज के क्षेत्र में कार्य करने वाले पत्रकारों ने जहाँ वैदिक धर्म के प्रचार, राष्ट्रीय जागरण और समाज-सुधार की दिशा में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया, वहाँ स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में भी वे पीछे नहीं रहे। इसी पावन उद्देश्य को सामने रखकर जहाँ लाला देवराज ने जालन्धर में 'कन्या महाविद्यालय' की स्थापना की वहाँ उन्होंने अपने विद्यालय की ओर से 'पांचाल पण्डिता' नामक पत्रिका भी प्रकाशित की थी। पहले वह आधी अँग्रेज़ी में और आधी हिन्दी में प्रकाशित होती थी, किन्तु बाद में इसे पूर्णतः हिन्दी-पत्रिका ही बना दिया गया था। फिर इसमें अंतिम चार पृष्ठ छोटी बालिकाओं के लिए भी बढ़ा दिए गए और उसका नाम 'सुकुमारी' रख दिया गया। इस प्रकार इस पत्र ने जहाँ नारी-जागरण की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया था वहाँ महिलाओं में लेखन की अभिरुचि भी उत्पन्न की थी। 'पांचाल पण्डिता' से पूर्व लाहौर से 'भारत भगिनी' (१८८८) नामक पत्रिका वहाँ के बैरिस्टर श्री रामरोशनलाल जी की धर्मपत्नी श्रीमती हरदेवी जी कई वर्षों से निकाल रही थीं। श्री हरदेवी जी सुप्रसिद्ध एग्जीक्यूटिव इंजीनियर श्री रामकन्हैया-लाल जी की सुपुत्री थीं। जिनका पुनर्विवाह सुप्रसिद्ध आर्य प्रचारक श्री अलखधारी जी के प्रयत्न से उक्त बैरिस्टर महोदय के साथ सम्पन्न हुआ था। इसी शृंखला में कन्या गुरुकुल कनखल (हरिद्वार) की ओर से सन् १९३८ में प्रकाशित 'उषा' का नाम भी स्मरणीय है। इसकी सम्पादिका श्रीमती शकुन्तला 'जलविद' थीं। इसी नाम की एक पत्रिका सन् १९१३ में गुरुकुल काँगड़ी से भी प्रकाशित हुई थी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो १९२० तक सफलतापूर्वक चली थी। 'आर्य कन्या महाविद्यालय बड़ौदा' की ओर से भी 'आर्य सन्देश' नामक मासिक हिन्दी और गुजराती में निकलता था, जिसका सम्पादन श्री राजेन्द्र पण्डित किया करते थे। 'जात पात तोड़क मंडल' के श्री सन्तराम बी० ए० ने कन्या महाविद्यालय जालन्धर से 'भारती' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन सन् १९२० में किया था और वहाँ से ही सन् १९२२ में 'जलविद सखा' पत्रिका भी प्रकाशित हुई थी। इन्हीं श्री सन्तरामजी ने सन् १९१४ में 'जात पात तोड़क मंडल' की ओर से 'उषा' नामक पत्रिका का प्रकाशन किया था और उन्हीं दिनों में 'आर्य प्रभा' नामक एक और मासिक पत्रिका को भी जन्म दिया था, जो सन् १९१८ में साप्ताहिक हो गई थी। उनके द्वारा सम्पादित 'युगान्तर' नामक मासिक का नाम भी हिन्दी-पत्रकारिता के क्षेत्र में अपना उल्लेखनीय स्थान रखता है। सन् १९२६ में श्री दीनानाथ सिद्धान्तालंकार के सम्पादन में सर गंगाराम ट्रस्ट सोसाइटी लाहौर की ओर से प्रकाशित 'विधवा-बन्धु' (मासिक) भी अपने समय का अच्छा पत्र था।

'विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान' की ओर से सुप्रसिद्ध आर्य विद्वान् श्री विश्वबन्धु शास्त्री के साधु आश्रम होशियारपुर से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका 'विश्व-ज्योति' का नाम भी अपनी शोध-सामग्री के कारण चिरस्मरणीय रहेगा। यह अब भी निरन्तर प्रकाशित हो रही है। इसके विशेषांक हिन्दी-साहित्य की अतुल निधि हैं। 'अमृत धारा' के आविष्कारक वैद्य ठाकुरदत्तजी भी आर्यसमाजी थे। वे अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के १९४१ के दिसम्बर मास में सम्पन्न हुए अबोहर-अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष थे। उन्होंने भी सन् १९१० में 'देशोपकारक' नामक एक पाक्षिक पत्र प्रकाशित किया था। लाहौर से प्रकाशित होने वाली 'खरी बात' मासिक पत्रिका के सम्पादक श्री दुर्गादास भास्कर भी आर्यसमाजी थे। हिन्दी भवन लाहौर की ओर से प्रकाशित 'भारती' पत्रिका की भी किसी समय हिन्दी-जगत् में बड़ी धूम थी। इसका सम्पादन श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द' और हरिकृष्ण 'प्रेमी' करते थे। वहाँ से 'कमल' नाम से बालकों का एक मासिक पत्र भी प्रकाशित हुआ था, जिसका सम्पादन श्री सन्तराम 'विचित्र' किया करते थे। इससे पूर्व 'विचित्र' जी ने अलमोड़ा (उत्तर प्रदेश) से 'नटखट' नाम से एक अन्य बालोपयोगी मासिक पत्र भी सम्पादित किया था। 'विचित्र' जी अपने जीवन के प्रारम्भ में आर्य समाज की अनेक गतिविधियों में बढ़-चढ़कर भाग लिया करते थे और उन दिनों वे 'विचित्र' उपनाम के स्थान पर 'आर्य पथिक' लिखा करते थे। हिन्दी भवन लाहौर के संचालक श्री देवचन्द्र नारंग प्रख्यात इतिहासवेत्ता श्री जयचन्द्र विद्यालंकार के छोटे भाई थे और भारत-विभाजन से पूर्व लाहौर में आततायियों द्वारा कत्ल कर दिए गए थे।

यदि यहाँ श्री खुशहालचन्द 'खुरसन्द' (बाद में आनन्द स्वामी) के लाहौर से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १९२९ में प्रकाशित 'दैनिक हिन्दी मिलाप' और कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले श्री मिहिरचन्द्र धीमान के 'जागृति' (कलकत्ता) का उल्लेख न किया गया तो यह विवरण अधूरा ही रह जायगा। इन दोनों पत्रों ने अपनी-अपनी सीमाओं के अनुरूप आर्य जगत् की उल्लेखनीय सेवाएँ की हैं। 'हिन्दी मिलाप' को चलाने में यद्यपि इसके संचालकों को पर्याप्त आर्थिक हानि उठानी पड़ी है, किन्तु अब भी यह जालन्धर और हैदराबाद से बराबर प्रकाशित हो रहा है। भारत-विभाजन के एकदम बाद यह कुछ वर्ष तक दिल्ली से भी प्रकाशित होता रहा था और इसका सम्पादन श्री लेखराम किया करते थे। अगस्त-क्रांति के दिनों में जब मैं सन् १९४३ में लाहौर में गिरफ़्तार करके नजरबन्द किया गया था तब मैं भी 'दैनिक हिन्दी मिलाप' में सहकारी सम्पादक था। उन दिनों भी इसके सम्पादक श्री लेखराम ही थे, जो मेरे साथ फिरोजपुर जेल में नजरबन्द कर दिए गए थे। 'जागृति' पहले साप्ताहिक रूप में प्रकाशित होता था, परन्तु बाद में वह दैनिक हो गया था। जिन दिनों यह साप्ताहिक था तब मुन्शी नवजादिकलाल श्रीवास्तव भी अपने देहान्त से पूर्व कई वर्ष तक इसका सम्पादन करते रहे थे। उनके बाद इसके सम्पादन का भार श्री जगदीशचन्द्र 'हिमकर' ने सँभाला था। इसी क्रम में पंजाब की सुप्रसिद्ध समाज-सेविका श्रीमती शन्नो देवी की दैनिक 'शक्ति' का उल्लेख भी अत्यन्त आवश्यक एवं अनिवार्य है। 'शक्ति' के माध्यम से शन्नोदेवीजी ने हिन्दी-प्रचार के कार्य के साथ-साथ वहाँ के हिन्दू-समाज में फैले हुए जात-पात के विष को ही सर्वथा निर्मूल नहीं किया, बल्कि वहाँ की जनता में समाज-सुधार की भावनाएँ भी मजबूत कीं। 'शक्ति' का सम्पादन श्री मोहनसिंह सेंगर किया करते थे। पंजाब की जनता में हिन्दी के प्रति निष्ठा जगाने और उसमें विशुद्ध भारतीयता का सन्देश प्रचारित करने की पुनीत भावना से प्रेरित होकर श्री भीमसेन विद्यालंकार ने भी 'हिन्दी सन्देश' नामक मासिक पत्र निकाला था। उन्हीं दिनों उन्होंने शहीदे धर्म महाशय राजपाल की पुण्य स्मृति में राजपाल एंड संस लाहौर की ओर से प्रकाशित 'राजपाल' नामक मासिक पत्र का भी सम्पादन किया था। बाद में इसका नाम बदलकर 'बलिदान' कर दिया गया था। इसका सम्पादन कुछ दिन तक श्री सत्यकाम विद्यालंकार ने भी किया था। पंजाब केसरी लाला लाजपतराय की शहादत के बाद श्री अमरनाथ विद्यालंकार के सम्पादन में प्रकाशित 'पंजाब केसरी' भी अपने समय का उल्लेखनीय साप्ताहिक था। इसी क्रम में महाशय कृष्ण के सुपुत्र श्री वीरेन्द्र के 'वीर प्रताप' तथा के० नरेन्द्र के 'वीर अर्जुन' का नाम भी लिया जा सकता है। सुप्रसिद्ध हिन्दू-नेता भाई परमानन्द द्वारा संचालित और जालन्धर से श्री धर्मवीर एम० ए० के सम्पादन में प्रकाशित 'आकाशवाणी' का नाम भी स्मरणीय है। नई दिल्ली से सन् १९३८-३९ में भाई परमानन्द ने 'हिन्दू' (साप्ताहिक) भी प्रकाशित किया था। इसके सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री हरिश्चन्द्र विद्यालंकार थे। इसके उपरान्त पंजाब के सुप्रसिद्ध आर्यसमाजी नेता लाला जगतनारायण और उनके सुपुत्र श्री रमेशचन्द्र ने जालन्धर से 'पंजाब केसरी' तथा 'हिन्द समाचार' दैनिक अत्यन्त सफलतापूर्वक प्रकाशित किये। यह अत्यन्त सन्ताप का विषय है कि पंजाब में साम्प्रदायिक सौमनस्य स्थापित करने के सराहनीय प्रयास में पिता-पुत्र दोनों ही पंजाब के उग्रवादियों द्वारा शहीद हो गए।

यदि इस प्रसंग में बिहार की अमर विभूति और प्रख्यात हिन्दी-प्रेमी स्वामी भवानीदयाल संन्यासी द्वारा प्रकाशित पत्रों का उल्लेख न किया गया तो भारी भूल होगी। वे अकेले ही हिन्दी के ऐसे अनन्य सेवक थे जिन्होंने भारत से बाहर दक्षिण अफ्रीका के डरबन नगर से 'धर्मवीर' नामक एक साप्ताहिक पत्र सन् १९१७ में प्रकाशित किया था और उसके द्वारा प्रवासी भारतीयों की सेवा करने के साथ-साथ वैदिक सिद्धांतों और आर्य भाषा हिन्दी के प्रचार तथा प्रसार में भी महत्त्वपूर्ण योग दिया था। यह पत्र आर्य पथिक पं० लेखराम की पुण्य स्मृति में प्रकाशित किया गया था। उन्होंने केवल हिन्दी-प्रचार की दृष्टि से 'हिन्दी' नामक एक मासिक पत्रिका भी वहाँ से प्रकाशित की थी। जब वे बिहार में थे तब उन्होंने बिहार प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा का कार्य-भार ही नहीं सँभाला, बल्कि उसकी ओर से प्रकाशित होने वाले मासिक पत्र 'आर्यावर्त' के सम्पादन में भी सहयोग दिया था। जिन दिनों वे लगभग ७-८ वर्ष भारत में रहे थे उन्होंने सबसे पहले बिहार प्रादेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से अपनी पितृभूमि सहसराम में एक वैदिक पाठशाला भी खोली थी। कानपुर में हुई 'अखिल भारतीय कांग्रेस' की अध्यक्षा श्रीमती सरोजिनी नायडू को अपने अध्यक्षीय भाषण का श्रीगणेश हिन्दी में करने की प्रेरणा भी आपने ही दी थी। फलस्वरूप श्रीमती नायडू ने अपने भाषण का प्रारम्भ हिन्दी में करके बाद में अंग्रेजी का भाषण पढ़ा था। नेपाल से उन्होंने 'हिन्दी' के जो 'दीपावली अंक' प्रकाशित किया था उस विशेषांक के लिए अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कानपुर-अधिवेशन में ५०० रुपये का पुरस्कार देकर आपकी हिन्दी-सेवाओं का सम्मान किया गया था। यह पत्रिका उन्होंने अपनी स्वर्गीय सहधर्मिणी श्रीमती जगरानी देवी की प्रेरणा से प्रकाशित की थी। कदाचित् यह बात बहुत कम लोग जानते होंगे कि स्वामी भवानीदयाल का जन्म दक्षिण अफ्रीका में ही हुआ था। बिहार तो उनके पूर्वजों की जन्मभूमि रहा था। 'हिन्दी' के प्रकाशन में उन्हें सर्वश्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, लक्ष्मणनारायण गर्दे और मूलचन्द्र अग्रवाल से भी पर्याप्त सहयोग मिला था। सन् १९२५ में जब वे दक्षिण अफ्रीका छोड़कर भारत में आए थे तो यहाँ के स्वाधीनता-आन्दोलन में भी उन्होंने बढ़-चढ़कर भाग लिया था। जब वे डॉ० राजेन्द्रप्रसाद के साथ हजारी बाग जेल में थे तो उन्होंने जेल में भी एक हस्तलिखित पत्रिका निकाली थी। उस पत्रिका के 'कृष्णांक', 'दिवाली अंक' और 'सत्याग्रह अंक' अपनी विशेष सामग्री के लिए आज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी याद किये जाते हैं। लगभग १२०० पृष्ठ की सामग्री के ये सभी विशेषांक बाद में 'बिहार विद्यापीठ' को दे दिए गए थे। सन् १९३१ में वे अखिल भारतीय हिन्दी सम्पादक सम्मेलन के अध्यक्ष बनाये गए थे और उसी वर्ष देवघर (बिहार) में हुए 'बिहार प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के दशम अधिवेशन की अध्यक्षता भी उन्होंने की थी।

आर्य समाज के अनेक विद्वानों, सुधारकों तथा साहित्यिकारों ने जहाँ अपने अनेक मासिक और साप्ताहिक पत्रों के माध्यम से हिन्दी-पत्रकारिता को एक नवीनतम आलोक प्रदान किया वहाँ 'दैनिक पत्रकारिता' को आधुनिकतम रूप में प्रतिष्ठित और सुनियोजित करने में भी वे पीछे नहीं रहे। उन्होंने जहाँ इसका साहित्यिक रूप निखारा वहाँ इसे एक 'राष्ट्रीय अभिव्यक्ति' भी प्रदान की। इस क्षेत्र में गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के स्नातकों की सेवाएँ सर्वथा अभिनन्दनीय एवं स्तुत्य कही जा सकती हैं। स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने 'सद्धर्म प्रचारक' के द्वारा गुरुकुल के स्नातकों में दैनिक की पत्रकारिता का जो रूप प्रतिष्ठित किया था उसी का प्रयोग उसके सुपुत्र प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति ने अपने 'सत्यवादी' और 'विजय' नामक दैनिक पत्रों में किया। 'विजय' दैनिक के सम्पादन में इन्द्रजी के बड़े भाई हरिश्चन्द्र वेदालंकार का भी बहुत बड़ा सहयोग था। कुछ दिन बाद सन् १९२३ में इन्द्रजी के सम्पादकत्व में दिल्ली से दैनिक 'अर्जुन' का विधिवत् प्रकाशन हुआ। 'अर्जुन' ने अपने समय में सामान्यतः आर्य जगत् और विशेषतः सारे देश की जो उल्लेखनीय सेवा की वह सब पर भलीभाँति प्रकट है। प्रो० इन्द्र ने अपने सम्पादन-काल में इसके माध्यम से जहाँ देश में राष्ट्रीय जागरण किया वहाँ देश को अनेक उच्चकोटि के पत्रकार भी प्रदान किये। आज हिन्दी-पत्रकारिता के क्षेत्र में गुरुकुल काँगड़ी के जितने भी स्नातक कार्य कर रहे हैं उन सबका क्रियात्मक प्रशिक्षण प्रो० इन्द्र के ही निरीक्षण में 'अर्जुन' के द्वारा सम्पन्न हुआ था। प्रो० इन्द्र जहाँ उच्च-कोटि के पत्रकार, लेखक और वक्ता थे वहाँ वे वर्षों तक 'सार्वदेशिक आर्य प्रति-निधि सभा' के प्रधान भी रहे थे। उन्हीं दिनों आपने तीन खण्डों में 'आर्यसमाज का इतिहास' भी लिखा था। इस 'अर्जुन' का नाम ही बाद में बदलकर 'वीर अर्जुन' हो गया था। श्री लेखराम बी० ए० और इन्द्रजी के सुपुत्र श्री जयन्त वाचस्पति ने भी बहुत दिन तक 'वीर अर्जुन' साप्ताहिक का सम्पादन किया था। आर्थिक विषयों की एक-मात्र हिन्दी पत्रिका 'सम्पदा' के यशस्वी सम्पादक श्री कृष्णचन्द्र विद्यालंकार साप्ताहिक 'वीर अर्जुन' के आदिसम्पादक थे। अगस्त-क्रान्ति के अमर शहीद श्री रमेशचन्द्र आर्य ने भी 'वीर अर्जुन' में कार्य किया था। इस प्रसंग में यह भी उल्लेखनीय है कि भारत-विभाजन के उपरान्त जब 'वीर अर्जुन' की आर्थिक स्थिति खराब हो गई तो इन्द्रजी ने उसे बन्द करके 'जनसत्ता' दैनिक का सम्पादन सँभाल लिया था। यही 'वीर अर्जुन' बाद में कुछ वर्ष तक आर्यसमाज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पुराने नेता महाशय कृष्ण के उद्योग से दिल्ली से दैनिक रूप में प्रकाशित होता रहा था। आजकल यह सान्ध्य दैनिक के रूप में निकल रहा है। महाशय कृष्ण ने लाहौर से भी एक बार सन् १९३६ में 'प्रभात' नाम से एक दैनिक पत्र निकालना प्रारम्भ किया था, किन्तु वह कुछ ही दिन में बन्द हो गया था। इसका सम्पादन कानपुर के युवा पत्रकार श्री छैलबिहारी दीक्षित 'कंटक' ने किया था।

गुरुकुल काँगड़ी के पुराने स्नातकों में पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रो० इन्द्र के बाद श्री सत्यदेव विद्यालंकार का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आज हिन्दी में जितने भी उल्लेखनीय दैनिक पत्र हैं उनमें से प्रायः अधिकांश की आधार-शिला रखने में उनका प्रमुख हाथ रहा था। उन्होंने जहाँ दैनिक 'हिन्दुस्तान' का प्रारम्भ किया वहाँ 'नवभारत टाइम्स' के आदिसम्पादक भी वे ही रहे थे। दैनिक 'अमर भारत' और 'विश्वमित्र' के नई दिल्ली-संस्करण भी उन्हींके सम्पादन में प्रकाशित हुए थे। उनके बाद श्री सत्यकाम विद्यालंकार का नाम आता है। श्री सत्यकामजी ने दिल्ली के 'नवयुग' नामक दैनिक का सम्पादन करने के साथ-साथ अनेक और भी पत्रों का सम्पादन किया था। ऐसे पत्रों में ला० देशबन्धु गुप्ता के 'तेज' (उर्दू) की ओर से प्रकाशित होने वाला 'विजय' साप्ताहिक उल्लेखनीय है। साप्ताहिक 'धर्मयुग' के सम्पादक के रूप में उन्होंने जो प्रतिष्ठा अर्जित की थी उसका उदात्त परिष्कार उनके द्वारा सम्पादित 'नवनीत' में देखने को मिला था। गुरुकुल के एक और स्नातक श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार द्वारा सम्पादित 'आजकल' तथा 'विश्व दर्शन' नामक मासिक भी अपनी विशिष्टता के लिए विख्यात हैं। उन्होंने कुछ समय तक प्रख्यात कहानी-पत्रिका 'सारिका' का सम्पादन भी किया था। यहाँ गुरुकुल काँगड़ी से सन् १९२१ में प्रकाशित और सर्वश्री विश्वनाथ विद्यालंकार, चन्द्रमणि विद्यालंकार तथा देवराज सिद्धान्तालंकार द्वारा सम्पादित 'वैदिक सन्देश' का नाम भी स्मरणीय है। इसी प्रकार श्री विश्वनाथ विद्यालंकार के सम्पादन में आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड अजमेर की ओर से सन् १९३३ में प्रकाशित 'वैदिक विज्ञान' (मासिक) का नाम अपनी विशिष्ट सामग्री के कारण अत्यन्त महत्त्व रखता है। श्री नरेन्द्र विद्यावाचस्पति के सम्पादन में नागपुर से प्रकाशित मासिक 'प्रतिभा' भी अपनी विशिष्ट सामग्री और साज-सज्जा के लिए स्मरणीय है। गुरुकुल काँगड़ी के एक और स्नातक श्री प्रताप विद्यालंकार ने मिर्जापुर से जो 'अभियान' नामक साहित्यिक मासिक पत्र निकाला था वह अपनी विशेषता के लिए आज भी याद किया जाता है।

इन पत्रों और पत्रकारों के अतिरिक्त गुरुकुल काँगड़ी के जिन स्नातकों ने पत्रकारिता के माध्यम से जनता की सेवा की उनमें सर्वश्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार, रामगोपाल विद्यालंकार, दीनानाथ सिद्धान्तालंकार, हरिश्चन्द्र विद्यालंकार, युधिष्ठिर विद्यालंकार, यज्ञदत्त विद्यालंकार, आनन्दस्वरूप विद्यालंकार, वेदव्रत विद्यालंकार,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवकुमार विद्यालंकार, क्षितीशकुमार वेदालंकार, ब्रह्मदत्त विद्यालंकार, यशपाल वेदालंकार, सच्चिदानन्द विद्यालंकार, आनन्द विद्यालंकार, सतीश दत्तात्रेय विद्यालंकार और कृष्णचन्द्र मेहता विद्यालंकार आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय कहे जा सकते हैं। 'दैनिक हिन्दुस्तान' से सेवा-निवृत्ति के उपरान्त श्री क्षितीश वेदालंकार आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के पत्र 'आर्य जगत्' का सम्पादन जिस निष्ठा और तत्परता से कर रहे हैं वह सर्वथा स्तुत्य कहा जा सकता है। श्री विद्यासागर विद्यालंकार भी दिल्ली से 'प्रकर' नामक साहित्यिक पत्र का प्रकाशन अत्यन्त सफलता से कर रहे हैं। झाँसी और कानपुर से प्रकाशित होने वाला दैनिक 'जागरण' भी आर्य-परिवार की ही देन है। इसके संचालक श्री पूर्णचन्द्र गुप्त आर्यसमाज के अच्छे कार्यकर्ता हैं। कुछ दिन तक जागरण प्रकाशन की ओर से 'कंचन प्रभा' नामक एक साहित्यिक मासिक पत्रिका भी प्रकाशित हुई थी। इनके अतिरिक्त और भी ऐसे बहुत-से महानुभाव हैं, जिन्होंने आर्य-समाजी क्षेत्र से अलग रहकर भी राष्ट्रभाषा हिन्दी के उन्नयन एवं पत्रकारिता के उत्कर्ष में अपना उल्लेखनीय सहयोग दिया था। ऐसे महानुभवों में सर्वश्री मूलचन्द्र अग्रवाल और मातासेवक पाठक (विश्वमित्र), श्रीराम शर्मा (विशाल भारत), रामशंकर त्रिपाठी (लोकमान्य) तथा 'विद्यार्थी' एवं 'खिलौना' के सम्पादक रामजीलाल शर्मा (हिन्दी प्रेस प्रयाग के संचालक) के नाम विशेष रूप से स्मरणीय हैं। इनमें से श्री रामजीलाल शर्मा हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधान मन्त्री रहे थे और प्रयाग जाने से पूर्व वे अजमेर के 'वैदिक मन्त्रालय' के व्यवस्थापक भी रहे थे। यहाँ सार्वदेशिक प्रकाशन लिमिटेड दिल्ली द्वारा प्रकाशित और श्री ब्रह्मदत्त स्नातक द्वारा सम्पादित 'पुण्यभूमि' (साप्ताहिक) का उल्लेख अत्यावश्यक है। पिछले दिनों दिल्ली से अभिविनय भारथी के सम्पादन में 'वेदोद्धारिणी' नामक जो त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित होनी प्रारम्भ हुई है वह भी शोध तथा अनुसन्धान की प्रचुर सामग्री से परिपूर्ण होती है। इस प्रसंग में गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ से प्रकाशित पाक्षिक 'मन्त्रद्रष्टा' का नाम भी उल्लेखनीय है। इस पत्र का सम्पादन स्वामी शक्तिवेश करते हैं।

'धर्मयुग' के यशस्वी सम्पादक डॉ० धर्मवीर भारती आर्य माता की सुयोग्य सन्तान हैं। उनकी पत्रकारिता में जो प्रखरता, गम्भीरता और निर्भीकता है, उसे आर्यसमाज की ही देन माना जाना चाहिए। 'नवभारत टाइम्स' के भूतपूर्व सम्पादक तथा हिन्दी के मूर्धन्य पत्रकार श्री अक्षयकुमार जैन को उनके आर्य-समाजी पितामह से सदाचार और धार्मिक प्रगतिशीलता के संस्कार विरासत में मिले हैं। इनके पितामह प्रख्यात आर्यकवि श्री नाथूराम शंकर शर्मा के शिष्य थे। 'नवभारत टाइम्स' के युवा सहसम्पादक डॉ० वेदप्रताप वैदिक इन्दौर के कट्टर आर्यसमाजी परिवार की ही देन हैं। 'नवनीत' के वर्तमान सम्पादक श्री नारायणदत्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की प्रारम्भिक शिक्षा भी गुरुकुल काँगड़ी में ही हुई है और उन पर आर्य समाज की गहरी छाप है।

देश के अन्य भू-भागों की भाँति आर्यसमाज का विस्तार विदेशों में भी प्रचुर परिमाण में हुआ है। जहाँ-जहाँ भी आर्यसमाज के कार्यकर्ता गये, यह स्वाभाविक ही था कि उन्होंने वहाँ-वहाँ ही अपनी भाव-धारा तथा सिद्धान्तों के प्रचार तथा प्रसार के लिए पत्र-पत्रिकाओं का सहारा लिया। यदि यहाँ ऐसे पत्रों और पत्रकारों का उल्लेख न किया गया तो यह विवरण अधूरा ही रह जायगा। उत्तर प्रदेश के कालाकाँकर राज्य के राजा रामपालसिंह ने सर्वप्रथम लन्दन से सन् १८८३ में 'हिन्दोस्थान' नामक त्रैमासिक पत्र का प्रकाशन हिन्दी में किया था, जो वहाँ से लगभग दो वर्ष तक बड़ी सफलतापूर्वक प्रकाशित हुआ था। आरम्भ में यह पत्र हिन्दी, उर्दू और अँग्रेजी में निकला था, किन्तु बाद में यह केवल हिन्दी में ही प्रकाशित होने लगा था। स्वदेश लौटने पर इसे उन्होंने दैनिक रूप में प्रकाशित किया था जिसका उल्लेख यथास्थान हो चुका है। दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह में महात्मा गांधी जी के अनन्य सहयोगी स्वामी भवानीदयाल संन्यासी की पत्रकारिता के क्षेत्र में की गई सेवाओं का उल्लेख भी हम पहले कर चुके हैं।

इसी प्रकार सूरिनाम से 'प्रकाश' साप्ताहिक का प्रकाशन हुआ और त्रिनिदाद से 'ज्योति' नामक मासिक पत्र निकला। फीजी के उत्साही आर्यों ने भी इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया और 'वैदिक सन्देश' नामक एक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन किया। बाद में 'फीजी समाचार', 'जय फीजी', 'फीजी सन्देश' और 'जागृति' नामक पत्रों का प्रकाशन भी वहाँ के आर्यजनों के उत्साह से हुआ। मारीशस में वहाँ की आर्य सभा का पत्र 'आर्योदय' अब भी यथाविधि प्रकाशित हो रहा है। सन् १९०८ में वहाँ से डॉ० मणिलाल ने 'हिन्दुस्तानी' नामक पत्र प्रकाशित किया था, जो काफी दिन तक आर्यसमाज के विचारों के प्रसार का माध्यम रहा। मारीशस की हिन्दी-पत्रकारिता के इतिहास में पं० रामअवध और किष्टो पं० काशीनाथ का नाम विशेष उल्लेखनीय है। पं० काशीनाथ ने वहाँ से 'आर्य पत्रिका' तथा 'आर्यवीर' का सम्पादन किया था और पं० रामअवध ने 'मारीशस मित्र' नामक पत्र का प्रकाशन किया था। इस सन्दर्भ में श्री ब्रजनाथ 'माधव' वाजपेयी का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है, जो मूलतः भारतवंशी मारीशियन थे और अपने जीवन के अन्तिम दिनों में पटना आ गए थे और यहाँ 'हिन्दुस्तान समाचार' और 'आर्यावर्त' में कार्य करते थे। मारीशस की पत्रकारिता के क्षेत्र में उनकी देन अनन्य हैं।

उक्त देशों के अतिरिक्त ब्रिटिश गयाना, डच गयाना, पूर्वी अफ्रीका, केनिया, युगाण्डा, जंजीबार, टंगेनिका, बर्मा, पोर्तुगीज, पूर्वी अफ्रीका, स्याम (थाईलैण्ड), मलाया, सुमात्रा, जावा, ईरान और लन्दन आदि अनेक देशों में आर्य समाज का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रान्तिकारी आन्दोलन अनेक दशकों से पहुँच चुका है और इसके अनेक कार्य-कर्ताओं तथा नेताओं ने समय-समय पर वहाँ जाकर अपनी भाव-धारा का प्रसार किया है। इस प्रसंग में बर्मा से श्री रामलाल के सम्पादन में प्रकाशित होने वाली 'आर्य युवक जागृति' पत्रिका का नाम विशेष उल्लेख-योग्य है। प्रायः इन सभी देशों में आर्यसमाज के माध्यम से अनेक शिक्षा-संस्थाएँ और प्रचारक हिन्दी को प्रतिष्ठित करने में संलग्न हैं। यहाँ तक कि सीलोन में भी आर्य समाज के क्रान्ति-कारी आन्दोलन का उद्घोष पहुँच चुका है। अमरीका में तो प्रख्यात आर्य नेता डॉ० केशवदेव शास्त्री और स्वामी सत्यदेव परिव्राजक ने अपनी ओजस्वी वक्तृताओं और लेखों से वहाँ की जनता में वैदिक विचार-धारा का जो प्रचार किया था वह इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा। उक्त दोनों ही महानुभाव हिन्दी के सुलेखक तथा पत्रकार थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामी दयानन्द द्वारा संस्थापित आर्य समाज ने हिन्दी-पत्रकारिता के क्षेत्र में अनन्य और अभूतपूर्व योगदान दिया है। अन्त में हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आर्यसमाज के माध्यम से हिन्दी साहित्य और पत्रकारिता की जो सेवा हुई है, वह इतनी महत्त्व-पूर्ण है कि उसके उल्लेख के बिना साहित्य और पत्रकारिता का इतिहास ही अधूरा रह जाता है। वास्तव में आर्यसमाज ऐसा शानदार भट्टा है, जिसने पिछले सौ वर्षों में हिन्दी-पत्रकारिता के भवन को अगणित चट्टानें, ईंटें और स्वर्णिम कलश-कँगूरे प्रदान किये हैं।

●

R15,BHA-M
150769

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri